उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

MAJY-205

ज्योतिष शास्त्र एवं यात्रा विमर्श

मानविकी विद्याशाखा

ज्योतिष विभाग

तीनपानी बाईपास रोड , ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139

फोन नं0- 05946-288052

टॉल फ्री नं0- 18001804025

Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in

http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम निर्माण समिति एवं अध्ययन समिति

प्रोफेसर एच.पी. शुक्ल
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ. देवश कुमार मिश्र
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी
अध्यक्ष, वास्तुशास्त्र विभाग, श्री लालबहादुर शास्त्री
राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली।

प्रोफेसर चन्द्रमा पाण्डेय
पूर्व अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी।

प्रोफेसर शिवाकान्त झा
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत
विश्वविद्यालय, दरभंगा

डॉ. कामेश्वर उपाध्याय
राष्ट्रिय महासचिव, अखिल भारतीय विद्वत परिषद्
वाराणसी

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी **असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	1	1, 2, 3, 4
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी **असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	2	1,2,3,4,5
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी **असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	3	1,2,3,4,5

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष - 2020 **प्रकाशक -** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

मुद्रक: - सहारनपुर इलैक्ट्रिक प्रेस,बोमनजी रोड, सहारनपुर, उ0प्र0 ISBN NO. -

नोट : - (इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।)

ज्योतिष शास्त्र एवं यात्रा विमर्श **MAJY-205**

अनुक्रम

प्रथम खण्ड – ग्रहराशियों का प्रभाव	**पृष्ठ - 2**
इकाई 1: ग्रहराशि एवं मानव जीवन	3 -15
इकाई 2: ग्रहराशि एवं वानस्पतिक जीवन	16-24
इकाई 3: वृष्टि एवं कृषि विज्ञान	25-38
इकाई 4: ज्योतिष और योग शास्त्र	39-52
द्वितीय खण्ड – यात्रा मुहूर्त्त	**पृष्ठ-53**
इकाई 1: यात्रा मुहूर्त्तादि परिचय	54-66
इकाई 2: तिथि नक्षत्र शुद्धि	67-83
इकाई 3: वार एवं लग्न शुद्धि	84-94
इकाई 4: घात विचार	95-105
इकाई 5: यात्रा में शकुन विचार	106-116
इकाई 6: यात्रा में कृत्याकृत्य विचार	117-127
तृतीय खण्ड – यात्रा में शुद्धि विचार	**पृष्ठ- 128**
इकाई 1: गुरू एवं शुक्र विचार	129-140
इकाई 2: यात्रा में ऋतुशुद्धि विचार	141-149
इकाई 3: यात्रा काल में दिक्शुद्धि विचार	150-163
इकाई 4: त्रिविधयात्रा में शुद्धि विचार	164-181
इकाई 5: यात्रा काल में भावफल	182-194

एम.ए. (ज्योतिष)

द्वितीय वर्ष – पंचम पत्र

ज्योतिष शास्त्र एवं यात्रा विमर्श

MAJY-205

खण्ड - 1

ग्रहराशियों का प्रभाव

इकाई - 1 ग्रहराशि एवं मानव जीवन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 ग्रहराशि और मानव जीवन परिचय

1.3.1 ग्रहपिण्डों का मानव जीवन पर प्रभाव

1.4 ग्रहों का भूमण्डल पर प्रभाव

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -205 के प्रथम खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – ग्रहराशि एवं मानव जीवन। इससे पूर्व आपने संहिता ज्योतिष से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'ग्रहराशि और मानव जीवन' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

मानव जीवन का सम्बन्ध ग्रहपिण्डों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है। इसलिए ग्रहपिण्ड मानव जीवन को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कालानुरोधेन प्रभावित करते रहते हैं। अन्तरिक्ष में व्याप्त ग्रह मानव जीवन को सदैव आकर्षित करते रहे हैं।

आइए इस इकाई में हम लोग 'ग्रहराशि और मानव जीवन' के बारे में जानने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ग्रहराशि को परिभाषित कर सकेंगे।
- ग्रहों के अवयवों को समझा सकेंगे।
- 'ग्रहों का भूमण्डल पर प्रभाव को समझ लेंगे।
- ग्रह और मानव जीवन के सम्बन्धों को समझा सकेंगे।
- मानव जीवन में ग्रहराशियों का क्या योगदान है, बता सकेंगे।

1.3 ग्रहराशि एवं मानव जीवन परिचय

ग्रहराशि शब्द – ग्रह एवं राशि दो शब्दों से मिलकर बना है। ज्योतिष शास्त्र में प्रधान रूप से ९ ग्रहों एवं १२ राशियों का उल्लेख मिलता है, जिससे आप सभी पूर्व परिचित ही होंगे। एक ओर ग्रहराशि का सम्बन्ध अन्तरिक्ष से तो मानव जीवन का सम्बन्ध भूलोक से है। आप सभी को यह समझना चाहिए कि ये दोनों लोकों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। विदित हो कि सौरमण्डल में स्थित प्रत्येक ग्रहों का आपस में कहीं न कहीं परस्पर सम्बन्ध अवश्य ही होता है। यद्यपि भूसापेक्ष ग्रह इतने दूर स्थित होते हैं कि उनका सम्बन्ध हम पूरी तरह से देख और समझ नहीं पाते है। तथापि आप सूर्य का धरती पर प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से देखते ही है। भूलोक के समस्त चराचर प्राणी सूर्य के रश्मियों

(किरणों) से प्रभावित होते हैं और उनका जीवन चक्र भी सूर्य की रश्मियों पर ही आश्रित होता है। इसी तरह सूर्य के अतिरिक्त ग्रह एवं राशियाँ मानव जीवन को यथा कालानुरोधेन निरन्तर प्रभावित करते रहती है। मानव जीवन भूलोक पर स्थित मानवों से जुड़ा है जहाँ प्रत्येक मानव अपना-अपना जीवन काल के सापेक्ष व्यतीत करता है। कभी उसके जीवन में सुख तो कभी दु:ख दोनों अनुभवों का संगम होता है। मानव जीवन आनन्द और सुखानुभूतियों के साथ-साथ संघर्ष और कर्त्तव्यपरायणता का पाठ भी पढ़ाता है। मानव सृष्टि समस्त सृष्टियों में उत्तम कही गयी है। चूँकि ज्योतिष शास्त्रोक्त ग्रहराशि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मानव जीवन से सीधे जुड़ा है इसीलिए ग्रहराशि एवं मानव जीवन का ज्ञान जानने के लिए और भी आवश्यक हो जाता है। राशि का एक अर्थ समूह भी होता है इसलिए ग्रहराशि से तात्पर्य ग्रहों के समूह से भी हो सकता है।

सम्पूर्ण ब्रहमाण्ड में विद्यमान पिण्डों का एक अन्तरंग प्रकाशीय एवं गतीय सम्बन्ध है। इस तथ्य को वेद से लेकर आधुनिक विज्ञान भी स्वीकार करता है। सम्पूर्ण ब्रहमाण्ड में जितने भी सौरमण्डल हैं उनमें सूर्य की उत्पत्ति सर्वप्रथम हुई- ''**आदित्यः ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते''-** (सूर्यसिद्धान्त)। सूर्य की उत्पत्ति के पश्चात् उससे उत्पादित या प्रभावित एवं प्राणित अन्य पिण्ड तत्तद् सौरमण्डलों में उत्पन्न हुए। सर्वप्रथम उत्पन्न होने के कारण 'आदित्य' तथा प्रसूति (उत्पादक) गुण सम्पन्न होने के कारण 'सूर्य' सार्थक नाम पड़ा। इससे एक बात सुस्पष्ट हो गयी कि सूर्य सौरमण्डल के अन्य सभी पिण्डों एवं उनसे जायमान पदार्थों को प्रभावित करता है।

सूर्य के उदित होने से कमल का खिल उठना तथा कुमुदिनी का मुख बन्द हो जाना, सूर्यमुखी पुष्प का सूर्याभिमुख घूमना, चन्द्रमा की किरणों से चन्द्रकान्तमणि का द्रवित होना, सूर्य के कारण दिन का प्रवर्तन होना सिद्ध करता है कि पिण्डों का प्रभाव अन्य पिण्डों पर पड़ता है। एक पिण्ड दूसरे पिण्ड को प्रभावित करता है। ग्रहण के समय, मुख्य रूप से सूर्य ग्रहण के समय जल स्तर तथा वनस्पतियों पर पड़ने वाला प्रभाव प्रत्यक्ष होता है। नए ग्रहों को खोजने में गणितीय शैली सिद्ध करती है कि गति में जब विसंवाद उत्पन्न होता है तो कोई दूसरा पिण्ड उसे प्रभावित कर रहा होता है। इसी विसंवादी गति के ही कारण हर्शल एवं नेप्च्यून का अन्वेषण हो सका। फलतः सुदूर किसी लोक में विद्यमान पिण्ड का प्रभाव उस किसी भी पिण्ड पर पड़ सकता है जहाँ तक प्रकाश का सम्बन्ध बनता है।

1.3.1 ग्रहपिण्डों का मानव जीवन पर प्रभाव

एक पिण्ड का दूसरे पिण्ड पर प्रभाव पड़ता है अथवा प्राणिमात्र के जीवन पर पिण्डों का प्रभाव पड़ता है इसे तीन प्रकार से जाना जा सकता है- (1) भौतिक विधि, (2) चिकित्सा विधि तथा (3) ज्योतिष आगम विधि। भौतिक विधि से पूरे विश्व में वैज्ञानिकों द्वारा अन्वेषण कार्य चल रहा है।

एस्ट्रोफिजिक्स एवं अप्लायडफिजिक्स के प्रविभागों के माध्यम से प्रभाव का अंकन लगातार चल रहा है। वनस्पतियों के भी माध्यम से कुछ सिद्धान्त इंगित करते हैं कि पिण्डेतर प्रभाव वनस्पतिजगत् को प्रभावित करते हैं। चिकित्सा विज्ञान का एक विभाग विशेष रूप से 'आयुर्वेद' के आठ अंगों में- 'ग्रहचिकित्सा' एक विशिष्ट अंग है। आयुर्वेद यह मानता है कि स्त्री में रजोधर्म की प्रवृत्ति प्रकृति द्वारा नियोजित है और इस नियोजन के पीछे चन्द्रमा की शीत किरणें और मंगल की अति ऊष्ण किरणेंर कारणभूत हैं। एक अमावस्या से दूसरी अमावस्या के बीच ऋतुधर्म का प्रवर्तन होता है। यदि स्त्री पर चन्द्र मंगल का प्रभाव पड़ता है तो अन्य प्राणियों पर भी किसी न किसी रूप में पड़ता ही होगा। किरणों का सूक्ष्म प्रभाव आंतरिक होता है। अतः इसे समझाने के लिए प्रयोगों की अपेक्षा होगी। आयुर्वेद में ही माणिक्य भस्म, मुक्ताभस्म, प्रवालभस्म, हीरा, पुखराज एवं गोमेद आदि के भस्म से ही अनेक रोगों का निदान किया जाता है। ये पत्थर शरीर में भस्म के रूप में पहुँचकर तो प्रभावित करते ही हैं साथ ही साथ अंगूठी में धारण करने पर भी विशेष किरणों को शरीर में नियंत्रित करके प्रभाव उत्पन्न करते हैं। इन रत्नों में विभिन्न ग्रहपिण्डों की किरणों को समाहित करने की अपूर्व क्षमता होती है।

ज्योतिष एवं आगमविधि से भी ग्रहपिण्डों का प्राणि पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन कर परिणाम को सुस्थिर किया गया है। विशेष रूप से ज्योतिषशास्त्र प्रकाशीय पिण्डों के प्रभावांकन का विशाल कोषागार है। ज्योतिषशास्त्र ग्रह-नक्षत्र-राशि आदि आकाशीय पिण्डों का गणितीय अध्ययन के साथ-साथ दार्शनिक अध्ययन भी प्रस्तुत करता है। इसी अध्ययन के क्रम में सूर्यादि सिद्धान्त ग्रन्थ में प्रतिपादित है कि काल की अदृश्यमूर्ति ब्रहमाण्ड संस्था में स्थित ग्रहपिण्डों में भगणादि अनेक भेदों में स्थित है। यह अदृश्य काल सभी पिण्डों पर समान रूप से काम करता है, परन्तु पिण्ड अपनी अलग-अलग गुरुता-लघुता के कारण कम या ज्यादा प्रभावित होते हैं। यह काल प्रभाव एक ऐसा विषय है जो सभी पिण्डों को जोड़े हुए है और उन्हें एक दूसरे से सम्प.... भी किये हुए है। अतः एक पिण्ड का दूसरे पिण्ड से एक आंतरिक लगाव है जो प्रभाव उत्पन्न करता है।

ग्रहपिण्ड पृथ्वी पर स्थित मनुष्य एवं प्राणियों को किस रूप में, क्यों और कितना प्रभावित करते हैं यह फलित ज्योतिष का गोचर विषय है। गोचर का अर्थ है इन्द्रिय प्रत्यक्ष यानि किस राशि एवं नक्षत्र में विद्यमान ग्रह कैसा प्रभाव उत्पन्न करता है? अतः ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से बृहत्तर से बृहत्तम विचारों को उपस्थित कर परिणामोन्मुख आँकड़ों को रखा गया है। 'लोमश संहिता' तथा 'बृहत्पराशरहोराशास्त्र' में लोमश एवं पराशर ऋषि ने प्रतिपादित किया है कि सूर्य का अवतार राम के रूप में, चन्द्र का अवतार कृष्ण के रूप में है। सूर्य का बारह अंश या द्वादशादित्य के कारण राम बारह कलाओं के अवतार हैं तथा कृषण् षोडश कलावतार हैं। यह भारतीय अतीन्द्रिय दृष्टि है ग्रहों के संदर्भ

में। यह अदृश्य एवं आंतरिक हेतु विलक्षण होता है।

शतपथब्राहमण में दिया है कि उपांशुग्रहरश्मियों के प्रभाव से अत्यधिक प्रभावित प्राणि औंधे मुख लेटता है, जैसे- मेष (छाग)। भेड़ों में नीचे सिर कर चलने की प्रवृत्ति इसलिए होती है क्योंकि उनमें उपांशुग्रहों की रश्मियों को संचित करने की अपूर्व क्षमता प्रकृतिप्रदत्त है। ऊध्र्व एवं अन्तर्याम ग्रह रश्मियों के प्रभाव से ज्यादा प्रभावित प्राणि ऊध्र्वमुख या सिर होता है, जैसे ऊँट, पुरुष अज (बकरा)। सूर्य की किरणों से पौधों की पत्तियों में हरा, नीला, पीला, लाल, बैगनी आदि जिन रंगों का निर्माण होता है वह भी प्रभाव को रेखांकित करता है। फलतः ग्रहपिण्डों के अदृश्य प्रभावों को आने वाला कल उपकरणों के माध्यम से भी जान सकेगा। विज्ञान जब भी चरम सीमा में प्रवेश करेगा वह प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक परिधि में विद्यमान अतीन्द्रिय कल्पनाओं को सिद्ध करने की क्षमता से युक्त होगा।

ग्रहपिण्डों का, उनकी रश्मियों का प्रभाव प्राणिमात्र पर पड़ता है यदि इस तथ्य को स्वीकार कर लिया जाए तो दो प्रश्न उभरते हैं। (क) क्या ग्रह फल देने की शक्ति से युक्त है? अथवा (ख) ये कर्मफल की सूचना मात्र देते हैं? ये दोनों प्रश्न हजारों वर्ष पूर्व 'सूर्यारुण संवाद' ग्रन्थ में उठाया गया है। इस प्रश्न का उत्तर भी वहीं दिया है कि ग्रह सूचना मात्र देते हैं 'सूर्यारुण संवाद' ग्रन्थ के निर्णय से बाद के अनेक आचार्य एवं ग्रन्थकार सहमत नहीं है। 'शार्ङ्गधर' का कहना है कि ग्रह मनुष्य के प्राग् अर्जित शुभाशुभ फलों को प्रदान करते हैं। लल्लाचार्य ने अपना विचार रखते हुए कहा है कि समस्त नक्षत्र मण्डल भूमि से बंधा है। वसिष्ठ संहिता में ऋषि वसिष्ठ ने उद्घोष करते हुए कहा है कि-

ग्रहा राज्यं प्रयच्छन्ति ग्रहा राज्यं हरन्ति च।
ग्रहैस्तु व्यापितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।।

आशय है ग्रह राज्य देते हैं, राज्य का हरण करते हैं। यह सम्पूर्ण त्रैलोक्य ग्रहों के प्रभाव से व्याप्त है। इसी क्रम में ध्येय है कि अतिवृष्टि एवं दिव्यान्तरिक्ष उत्पात, भूकम्प एवं किरणघात आदि कारणों से जो विनाश उत्पन्न होता है वह पिण्डों के प्रभाव से ही होता है। अतः अनेक पिण्डों के प्रभाव से प्रभावित यह पृथ्वी यदि उथल-पुथल ग्रस्त होती है तो आश्चर्य की बात नहीं है। आचार्य बृहस्पति के मतानुसार सम्पूर्ण कालज्ञान ग्रहों की ही गतिस्थिति पर निर्भर है। क्षण, घंटा, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, वर्ष, युग आदि की संकल्पना ग्रहों के कारण ही सत्ता में है। इसीलिए मनुष्य भी इनसे प्रभावित होता है। ये ग्रह कर्मफल को प्रदान करते हैं। बृहस्पति के विचार सुस्थिर एवं सटीक हैं। इनके अनुसार सृष्टि का रक्षण और संहार जब ग्रह के अधीन है तो मनुष्य की क्या बात? आज यदि सूर्य किसी कारण से नष्ट हो जाय तो पृथ्वी को नष्ट होने में एक सेकेंड भी नहीं लगेगा और यह घटना ब्रहमाण्ड के लिए नगण्य होगी।

बृहस्पति ने इस विवाद को समेटते हुए निर्णय दिया कि ग्रह कर्मफल दाता और कर्मफलषृवक दोनों ही हैं। इन्होंने यह भी कहा है कि ग्रहों का प्रभाव आनुवंशिक होता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार यह बतलाना सरल होता है कि माता एवं पिता से प्राप्त कौन सा रोग या कष्ट शिशु में संक्रमित होगा अथवा नहीं होगा। भारतीय उपासना पद्धति यानी आगम में इन ग्रहों के दुष्प्रभाव को स्थानान्तरित करने या नगण्य करने के लिए दिव्य उपाय भी दिए गये हैं जो गर्भकाल में ही प्रयुक्त होते हैं। विवाहमेलापक की भारतीय प्रक्रिया अब विदेशो में 'जेनेटिक काउन्सलिंग' जैसी वैज्ञानिक प्रक्रिया का रूप धारण करने लगी है। इसके माध्यम से रक्तविकार और रोगों के संक्रमित होने की सूचना मिलती है।

मंगल ग्रह के संदर्भ में पुराणों से लेकर ज्योतिष के ग्रन्थों में वर्णन आया है कि यह भूमिपुत्र है। इसकी प्रकृति भूमि से मिलती है। यह लाल रंग वाला, क्रूर प्रकृतिवाला तथा रुधिर को क्षुब्ध करने वाला है। भूमिपुत्र होने के कारण यह भूमि के अनेक गुणों से युक्त है। संभव है यह पिण्ड अपने शैषव काल में पृथ्वी से टूटा हुआ हो या पृथ्वी निर्माण एवं मंगल निर्माण में एक ही सामग्री प्रयुक्त हुयी हो। यह मंगल मनुष्य में सत्व (ओज) यानी सक्रियता को देता है। वेदान्त का पंचीकरण एवं त्रिवृत्त करण प्रक्रिया भी सिद्ध करती है कि मनुष्य एवं जैव तत्त्वों में पंचतत्त्वों की प्रभावशाली सक्रियता रहती है।

सौरमण्डल का आत्मा ग्रह सूर्य है तथा मन का प्रतीकग्रह चन्द्र है। यह सौरमंडलीय सृष्टि सूर्यचन्द्रात्मिका है। इसीलिए यवनाचार्य कहते हैं कि भूमण्डल पर स्थित प्रत्येक जड़ व चेतन का विकास-ह्रास सूर्य चन्द्र के कारण संभव होता है। प्रातः काल में बुध, गुरु, शुक्र की किरणें ज्यादा प्रभावशाली होती हैं। मध्याह्न में सूर्य तथा मंगल की किरणें प्रचण्ड प्रभावशाली होती हैं। संध्या समय में राहु-शनि की तथा रात्रि में चन्द्र की किरणें अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध होती हैं। ज्येष्ठ की दुपहरी में सूर्य की किरणों का प्रभाव त्वचा पर प्रत्यक्ष सिद्ध है। किन किन राशियों में स्थित ग्रह कितना और कैसा प्रभाव देता है यह ज्योतिषशास्त्र के अनेक ग्रन्थों में विशदता के साथ प्रतिपादित है।

प्राचीन ज्योतिर्विद् वैज्ञानिकों ने आकाशीय वीथि में गुजर रहे ग्रहों के प्रभाव को पृथ्वी पर अंकित किया था। पृथ्वी के किस खण्ड में कौन-सा ग्रह कितना प्रभाव डाल रहा है यह प्रतिपादन इतना अपूर्व तथा वैज्ञानिक है कि इसके आधार पर अनेक भविष्यवाणियाँ सही सिद्ध हो चुकी हैं। ग्रहयोग के आधार पर भौमिक भविष्यवाणी का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

यदारसौरी सुरराजमंत्री यदेकराशौ समसप्तके च।
अयोध्यलङ्कपुरमध्यदेशे भ्रमन्ति लोकाः क्षुधया प्रपीडिताः।। (बृ. दै.)

जब मंगल, शनि तथा बृहस्पति एकत्रित होते हैं अथवा समसप्तक में होते हैं तब अयोध्या से लंका के बीच अन्न का अभाव तथा हाहाकार का दुर्योग होता है। यह स्थिति सन् 1990 में बनी थी।

मात्र बृहस्पति सप्तम में ना होकर षष्ठस्थ हो षडष्टकदुर्योग कर रहा था। अयोध्या में गोली चली थी तथा श्रीलंका में अनेक मान्यताओं की हत्यायें हुई थीं। एक उदाहरण के रूप में इसे प्रस्तुत करने का आशय है भूखण्ड पर ग्रह के प्रभाव का अंकन हो सकता है। इसी प्रकार से सिंह राशि में बृहस्पति जब एक वर्ष तक रहता है तो भारतवर्ष में गंगा नदी के दक्षिण भाग में इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। ग्रह रश्मियों के प्रभाव से अनेक रोगों तथा सामूहिक संहार के लक्षणों का प्रादुर्भाव भी होता है। यदि इस दिशा में शोधकार्य किया जाए तो संभव है आने वाला भविष्य ग्रह-नक्षत्र-तारा पिण्डों की किरणों से अनेक आश्चर्यकारी उपलब्धियों को हासिल कर सके और तब भारतीय विचार 'यत् पिण्डे तद् ब्रहमाण्डे' सफल हो जायेगा।

1.4 ग्रहों का भूमण्डल पर प्रभाव

अनन्त आकाश में विखरे दीप्तिमान तारों के बीच समय-समय पर होने वाले परिवर्तन मानव मस्तिष्क को अनादि काल से आकर्षित करते आ रहे हैं। भारतीय मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने अन्तरिक्ष के अनेक रहस्यों को अपने अन्तर्ज्ञान एवं अपने दीर्घजीवन में किये गये प्रयोगो के आधार पर सुलझाया। फिर भी अनन्त रहस्य यथावत् विद्यमान हैं। मानव जीवन इतना अल्प है कि किसी एक गतिशील तारे का राशि परिवर्तन भी एक जीवन में देख पाना सम्भव नहीं है। फिर भी ऋषियों ने रहस्य भेदन हेतु मार्ग उद्घाटित कर मानव जाति को एक ज्योति प्रदान की है। आज भूमण्डल के विज्ञान वेत्ता अपने-अपने साधनों के अनुसार अन्तरिक्ष एवं सृष्टि के रहस्य को समझने हेतु अहर्निश प्रयत्नशील है।

भारतीय परम्परा में गुणधर्मानुसार आकाशीय ज्योतिष्पिण्डों का जो त्रिधा वर्गीकरण किया गया है वह यद्यपि आधुनिक परिभाषा से कुछ भिन्न है फिर भी व्यवहारिक दृष्टि से पूर्णतया उपयुक्त है। भारतीय ज्योतिष में ज्योतिष्पिण्डों के तीन प्रमुख विभाग हैं 1. ग्रह 2. नक्षत्र 3. तारा। सूर्य और चन्द्रमा को भी ग्रह माना है। पृथ्वी को आधारभूत पिण्ड होने से उसकी गणना उक्त तीनों कोटियों से पृथक की गई है। ''भूधिष्ण्य ग्रह'' (भूमि, नक्षत्र, ग्रह) इस प्रकार के भी तीन भेद मान्य है। यहाँ नक्षत्र और तारा को एक साथ परिगणित किया गया है। भूकेन्द्र मानकर ग्रहों की कक्षाओं का निरूपण किया गया है। किन्तु आचार्य अत्यन्त सावधान थे। इस प्रकार भूकेन्द्रित कक्षा क्रम से किसी को भ्रान्ति न हो जाय, कि वस्तुतः भूमि ग्रहकक्षाओं के केन्द्र में स्थित है। अतः उन्होंने स्पष्ट शब्दों में निर्देश किया कि जिस वृत्त में ग्रह भ्रमण करते हैं उस वृत्त के केन्द्र में पृथ्वी नहीं है।

चन्द्रमा पृथ्वी का निकटवर्ती ग्रह है। इसकी आकर्षण शक्ति का, प्रकाश प्रत्यावर्तन का तथा प्रत्यावर्तन से उत्पन्न अनेक परिणामों का प्रभाव पृथ्वी पर प्रत्यक्ष देखा जाता है। अतः चन्द्रमा ग्रह न होते हुये भी ग्रह कोटि में रखा गया। इसी प्रकार सूर्य भी अपने परिवार का सर्वाधिक शक्तिशाली पिण्ड

है। इसकी शक्ति एवं प्रकाश भूतल पर स्थावर एवं जंगम दोनों सृष्टियों के लिए पोषक स्रोत है। इसके प्रकाश से ही अन्य सभी ग्रह पिण्ड प्रकाशित होते हैं। इसलिए सूर्य को भी ग्रह कोटि में ही नहीं रखा गया अपितु ग्रहराज दिवाकर कहा गया है। सूर्य और चन्द्र की स्थिति एवं गति ग्रहों की अपेक्षा भिन्न होने के कारण इनके साधन की प्रक्रिया भी भिन्न है। शेष पाँच ग्रहों- मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि को पंचतारा ग्रह कहा गया है तथा इनके साधन अर्थात् इनके भोगांश का ज्ञान लगभग समान सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। राहु और केतु दो छाया ग्रह हैं। इनका पिण्डरूप में अस्तित्व नहीं है। इनके आकाशीय नियत स्थान हैं। इन्हें तमोग्रह अथवा पात भी कहा जाता है। नाड़ी वृत्त (आकाशीय मध्यरेखा) तथा चन्द्रकक्षा के दो सम्पात बिन्दुओं को पात अथवा राहु-केतु कहा जाता है। यही कारण है कि राहु और केतु में परस्पर 6 राशि = 1800 का अन्तर होता है। इस प्रकार नव ग्रह एवं एक पृथ्वी सब मिलाकर 10 इकाइयाँ ग्रह कोटि की हुई।

तारा और नक्षत्र मूलतः एक है। भौतिक दृष्टि से इनमें कोई अन्तर नहीं है। ये सभी प्रकाशमान हैं तथा अत्यन्त स्वल्प गति से गतिमान है। अन्तर इतना ही है कि क्रान्ति वृत्त के क्षेत्र में आने वाले तारों को चन्द्रमा की गति के आधार पर 27 भागों में विभक्त कर दिया गया है। एक भाग में आने वाले (क्रान्ति वृत्त के 27वें भाग में स्थित) तारे अथवा तारों के समूह को एक नक्षत्र कहा
गया है। इससे भिन्न इस कोटि के ज्योतिष्मान् पिण्डों को तारा कहा जाता है।

इन समस्त खगोलीय पिण्डों के रचना की दृष्टि से कुछ अंशों मेंर समानता होती है, किन्तु अनेक अंशों में वैषम्य भी होता है। प्रत्येक ग्रह एवं नक्षत्रों में सामान्य धर्म के अतिरिक्त कुछ विशेष धर्म भी होते हैं, जिनके कारण इन ग्रहों और नक्षत्रों के परस्पर सम्बन्ध से प्रकृति में अनेक परिवर्तन एवं प्रतिक्रियायें होती रहती हैं। ग्रहों का निरूपण करते हुये सूर्य सिद्धान्तकार ने लिखा है।

अग्निषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्वङ्गारकादयः।

तेजो-भू-खाम्बुवातेभ्यः क्रमशः पंचजज्ञिरे।। (सूर्य सिद्धान्त 12.24)

अर्थात् सूर्य का अग्नि तत्व, चन्द्रमा का सोमतत्व, भौमका तेजस् (अग्नि), बुध का पृथ्वी तत्व, गुरु का आकाशतत्व, शुक्र का जल तत्व, तथा शनि का वायु तत्व है। अर्थात् इन ग्रहों में पृथक्-पृथक् तत्वों की प्रधानता है। इसी प्रकार नक्षत्रों में भी ग्रहों के अनुरूप गुणधर्म होते हैं, जिनका आधिदैवत्य इनका स्वामित्व कहलाता है। ग्रहों का अपने अनुरूप नक्षत्रों में रहना अनुकूल प्रभावोत्पादक होता है, किन्तु प्रतिकूल नक्षत्रों में रहना प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करता है। ग्रहों में भी परस्पर मित्र भाव एवं शत्रु भाव होता है। अग्नि तत्व वाले ग्रहों का साम्य अग्नि तत्व वाले ग्रहों के साथ तथा अनुकूल तत्व वालों के साथ मित्र भाव होता है। यथा- अग्नि और जल का विपरीत स्वभाव है। अग्नि तत्व का जल तत्व के

साथ शत्रु भाव होगा तथा अग्नि तत्व और वायु तत्व का सख्य भाव होगा। इसी प्रकार सभी तत्वों के परस्पर संख्य एवं शत्रु भाव के आधार पर ग्रहों में भी शत्रु, मित्र और सम भाव निरूपित किया गया है।

सर्वविदित है कि सूर्य रश्मि से ही सभी ग्रह प्रकाशित होते हैं। सूर्य ही स्वयं प्रकाशमान है। सूर्य को सप्त रश्मि और सहस्त्ररश्मि भी कहा गया है। आज भी वर्णक्रम; द्वारा सप्त वर्ण एवं उनकी प्रतिनिधि सप्त रश्मियों को ही पहचाना गया है। हमारे मनीषियों ने इन सप्त रश्मियों को सात नामों से व्यवहृत किया है। उन रश्मियों का प्रभाव स्थावर-जंगम एवं समस्त वायुमण्डल पर पड़ता है। परिणामतः यह प्रभाव वायु-वर्षा-ग्रीष्म-शरद आदि समस्त प्राकृतिक परिवर्तनों पर भी पड़ता है। जिस वर्ष का अधिपति जो ग्रह हो जाता है उसके प्रकृति के अनुसार ही पृथ्वी का वातावरण होता है। यथा संवत् 2047 का अधिपति मंगल ग्रह था। मंगल का स्वभाव उग्र है। युद्ध, अग्नि और उत्पात का प्रतिनिधि ग्रह मंगल माना जाता है। अतः शास्त्रकारों ने वर्षेश मंगल का परिणाम इस प्रकार बतलाया है-

''जिस वर्ष का स्वामी मंगल होता है उस वर्ष पृथ्वी पर धन एवं अन्न का अभाव होता है। सर्वत्र युद्ध और रोग की विभीषिका बनीर रहती है। मंगल के अधिपति होने पर पृथ्वी का कल्याण नहीं होता। आकाश में ग्रह नक्षत्रों के योग से विश्व सम्बन्धी अनेक शुभाशुभ घटनाओं के संकेत मिलते हैं-

यथा-

यदा क्रूरग्रहो वक्री शुभश्चैवातिचारगः।
तदा भवति दुर्भिक्षं राज्ञां युद्धं परस्परम्।

इसी प्रकार अनेक योग है जिने विश्व की परिस्थितियों का ज्ञान होता है। प्रत्येक वर्ष के वर्षेश, मन्त्री, मेघेश, रसेश आदि ग्रहों के आधार पर भी शुभाशुभ का निर्णय होता है।

सूर्य और चन्द्रमा के प्रभाव को तो हम प्रत्यक्ष रूप से पृथ्वी पर अनुभव करते हैं। सर्वाधिक स्थूल उदाहरण ज्वार-भाटा है। यह सूर्य-चन्द्रमा की स्थिति विशेष से, उनकी आकर्षण शक्तियों के फलस्वरूप होता है। जिन परिस्थितियों में समुद्र में ज्वार-भाटा उत्पन्न होता है, उन परिस्थितियों में सर्वत्र जहाँ जहाँ जलांश होता है वहाँ वहाँ भी हलचल होती है। यहाँ तक कि मनुष्य के शरीर में, रक्त में तथा वनस्पतियों के अन्दर स्थित रसों में भी उद्रेक होता है। एक रूसी वैज्ञानिक ने लिखा है ''ज्वार भाटा के समय पशुओं एवं वनस्पतियों में भी प्राकृतिक आकर्षण शक्ति का प्रभाव अनुभव किया जाता है।'' चन्द्रमा अनेक निकटस्थ होने के कारण भूतल एवं भूतल वासियों के लिए विशेष प्रभावोत्पादक है। वैदिक वाङ्मय में चन्द्रमा को मन का कारक माना गया है। चन्द्रमा की उत्पत्ति ही ब्रह्मा के मन से हुई है। इसीलिए कहा गया है ''चन्द्रमा मनसो जातः''। हम प्रत्यक्ष अनुभव भी करते है कि चन्द्रमा का सर्वाधिक प्रभाव मन पर पड़ता है। ज्योतिषशास्त्र में भी मनुष्य के विभिन्न तत्वों एवं अंगों का सम्बन्ध

ग्रहों से दर्शाया गया है। आत्मा का सम्बन्ध रवि से, मन का चन्द्रमा से, शक्ति का मंगल से, वाणी का बुध से, ज्ञान का गुरु से, काम का शुक्र से तथा कष्ट का सम्बन्ध शनि से हैं।

शास्त्रकारों ने गर्भाधान काल से ही शुभाशुभ का विवेचन किया है। गर्भस्थ शिशु का विकास ग्रहस्थिति के अनुसार ही होता है। आचार्य वराह मिहिर ने लिखा है कि प्रथम मास में रक्त संचय, द्वितीय मास में पिण्ड निर्माण, तृतीय मास में अवयव, चतुर्थ मास में अस्थि, पंचम मास में चर्म, षष्ठ मास में रोम तथा सप्तम मास में चेतना का संचार होता है। सातवें मास में शिशु पूर्ण हो जाता है। अष्टम और नवम मास गर्भस्थ शिशु के पोषण का होता है। प्रत्येक मास के स्वामी ग्रह जिन परिस्थितियों में होते हैं उन मासों के गर्भ की स्थिति भी उसी प्रकार होती है। यदि गर्भ स्वामी शुभ एवं बलवान है तो गर्भ पुष्ट होगा। ग्रह निर्बल एवं पापाक्रान्त है तो गर्भ में विकार आ सकता है। ग्रह से सम्बन्धित मासों में गर्भपात भी हो सकता है।

गर्भस्थ शिशु का विकास, उसकी मानसिक एवं शारीरिक स्थिति आदि का निर्माण ग्रहों के तत्व एवं प्रकृति के अनुसार ही होता है। हीनांग, विकलांग, अधिकांश, क्रोधी, सौम्य, पराक्रमी, दुर्बल आदि स्थितियाँ ग्रहों की स्थिति पर ही निर्भर करती है जिनका ज्ञान गर्भाधार काल एवं जन्म काल के आधार पर किया जा सकता है।

जब हम देश विशेष के सम्बन्ध में अथवा ऋतु परिवर्तन-वृष्टि एवं भूकम्प आदि के सम्बन्ध में ज्ञान करना चाहते हैं तो संहिताओं के अनुसार ग्रहचार का अवलोकन करना पड़ता है तथा कूर्म चक्र के आधार पर देश विशेष पर घटित होने वाली घटनाओं का ज्ञान कर पाते हैं। कूर्म चक्र में भूमण्डल को कूर्म के रूप में मानकर उसके शरीर में नक्षत्रों का न्यास किया जाता है। ग्रहचार नक्षत्रों में होता है। जिस प्रकार के ग्रहों का चार जिन नक्षत्रों में होगा उनसे सम्बन्धित शुभाशुभ परिणाम सम्बन्धित देशों में होंगे। यथाश्लेषा, मघा पूर्वाफल्गुनी ये तीन नक्षत्र कूर्म के अग्निकोण में स्थित है। इन नक्षत्रों में शनि के प्रवेश से अंग, बंग, कलिंग, कोशल आदि देशों में उत्पात होते हैं।

इसी प्रकार चन्द्र नक्षत्र में सूर्य और चन्द्रमा दोनों स्थित हों तो आंधी तूफान का भय होता है। सूर्य नक्षत्र में यदि दोनों हों तो न वायु न वृष्टि तथा यदि सूर्य नक्षत्र में चन्द्र तथा चन्द्र नक्षत्र में सूर्य हो तो सुवृष्टि होती है।

इसके अतिरिक्त अनेक अन्य विधियाँ भी हैं जिनसे हम वातावरण का ज्ञान कर सकते हैं। परन्तु समस्त विधियों का विवेचन एक लघु निबन्ध में सम्भव नहीं है। संक्षेप में केवल दिग्दर्शन मात्र कराते हुये इस आशय से अवगत करा देता ही उचित होगा कि सभी ग्रह पिण्ड एक दूसरे को अपने प्रभाव से

प्रभावित करते हैं। हम भू-वासियों के लिए ग्रहों के साथ-साथ भूमण्डल का भी प्रभाव महत्वपूर्ण होता है। हमारे सौर परिवार में पृथ्वी अपने ढंग का अकेला ग्रह पिण्ड है। जैसा कि भूमि की आकर्षण शक्ति का विवेचन करते समय भास्कराचार्य ने संकेत किया है-

''कोई भी वस्तु ऊपर से नीचे गिरती हुई प्रतीत होती है। वस्तुतः वह गिरती नहीं है अपितु पृथ्वी उसे अपनी ओर आकृष्ट करती है। इसी आकर्षण शक्ति के प्रभाव से एक व्यक्ति सीधे पृथ्वी पर स्थित है उससे 1800 की दूरी पर दूसरा व्यक्ति प्रथम की अपेक्षा उल्टा अर्थात् नीचे सिर और ऊपर पैर कर स्थित है। जैसे जल के किनारे मनुष्य की छाया दिखती है। उसी प्रकार मनुष्य पृथ्वी पर अनाकुल भाव से स्थित रहता है। इसका कारण पृथ्वी की आकृष्ट शक्ति ही है। जो पृथ्वी हमें इतनी शक्ति से अपनी ओर आकर्षित किये हुये हैं उसका प्रभाव हमारे शरीर पर अनेक प्रकार से पड़ता रहता है। इसका ज्ञान हमें सामान्य रूप से नहीं हो पाता।

निष्कर्ष रूप से यही कहा जा सकता है कि कोई भी पिण्ड स्वतन्त्र नहीं है। सभी एक दूसरे से आकृष्ट हैं तथा एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। अतः भूतल पर सभी प्रकार के परिवर्तनों का प्रभाव जानने के लिए सभी ग्रहों एवं नक्षत्रों का ज्ञान आवश्यक है।

बोध प्रश्न

1. सर्वप्रथम सौरमण्डल में किसकी उत्पत्ति हुई।

   क. सूर्य ख. चन्द्र ग. मंगल घ. बुध

2. निम्न में आदित्य किसका पर्याय है।

   क. चन्द्र ख. सूर्य ग. ग्रह घ. राशि

3. भारतीय ज्योतिष शास्त्रानुसार ग्रहों की संख्या कितनी है।

   क. ५ ख. ६ ग. ८ घ. ९

4. राशियाँ कितनी है?

   क. १२ ख. १० ग. ९ घ. ५

5. प्रसूति का शाब्दिक अर्थ क्या है।

   क. ग्रह ख. पिण्ड ग. उत्पादक घ. ब्रह्माण्ड

6. निम्न में कुमुदिनी किसे कहते है।

   क. कमल ख. गेंदा ग. सूर्यमुखी घ. चमेली

7. जिस वर्ष का स्वामी मंगल होता है उस वर्ष पृथ्वी पर किसका अभाव होता है।

क. अन्न एवं धन का   ख. वर्षा का   ग. खाद्यान्न का   घ. कोई नहीं

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विद्यमान पिण्डों का एक अन्तरंग प्रकाशीय एवं गतीय सम्बन्ध है। इस तथ्य को वेद से लेकर आधुनिक विज्ञान भी स्वीकार करता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जितने भी सौरमण्डल हैं उनमें सूर्य की उत्पत्ति सर्वप्रथम हुई- **आदित्यः ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते-** 'सूर्यसिद्धान्त'। सूर्य की उत्पत्ति के पश्चात् उससे उत्पादित या प्रभावित एवं प्राणित अन्य पिण्ड तत्तद् सौरमण्डलों में उत्पन्न हुए। सर्वप्रथम उत्पन्न होने के कारण 'आदित्य' तथा प्रसूति (उत्पादक) गुण सम्पन्न होने के कारण 'सूर्य' सार्थक नाम पड़ा। इससे एक बात सुस्पष्ट हो गयी कि सूर्य सौरमण्डल के अन्य सभी पिण्डों एवं उनसे जायमान पदार्थों को प्रभावित करता है।

सूर्य के उदित होने से कमल का खिल उठना तथा कुमुदिनी का मुख बन्द हो जाना, सूर्यमुखी पुष्प का सूर्याभिमुख घूमना, चन्द्रमा की किरणों से चन्द्रकान्तमणि का द्रवित होना, सूर्य के कारण दिन का प्रवर्तन होना सिद्ध करता है कि पिण्डों का प्रभाव अन्य पिण्डों पर पड़ता है। एक पिण्ड दूसरे पिण्ड को प्रभावित करता है। ग्रहण के समय, मुख्य रूप से सूर्यग्रहण के समय जल स्तर तथा वनस्पतियों पर पड़ने वाला प्रभाव प्रत्यक्ष होता है। नए ग्रहों को खोजने में गणितीय शैली सिद्ध करती है कि गति में जब विसंवाद उत्पन्न होता है तो कोई दूसरा पिण्ड उसे प्रभावित कर रहा होता है। इसी विसंवादी गति के ही कारण हर्शल एवं नेप्च्यून का अन्वेषण हो सका। फलतः सुदूर किसी लोक में विद्यमान पिण्ड का प्रभाव उस किसी भी पिण्ड पर पड़ सकता है जहाँ तक प्रकाश का सम्बन्ध बनता है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

आदित्य – सूर्य

प्रसूति - उत्पादक

कुमुदिनी – कमल

उदित – उगना

दिशा – प्राच्यादि १० दिशायें होती है।

विदिशा – चार कोण को विदिशा के रूप में जानते है।।

सृष्टि – समस्त चराचर जगत्।

पुष्प – फूल

विसंवाद – विशेष संवाद

1.7 बोध प्रश्न के उत्तर

1. क
2. ख
3. घ
4. क
5. ग
6. क
7. क

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय ज्योतिष – शंकरबालकृष्ण दीक्षित

2. सूर्यसिद्धान्त – आर्ष ग्रन्थ, टीका – कपिलेश्वर शास्त्री/ प्रोफे. रामचन्द्र पाण्डेय

3. प्राच्यविद्यानुशीलनम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

4. वशिष्ठ संहिता – मूल लेखक – महात्मा वशिष्ठ

5. ग्रहगति का क्रमिक विकास – पं. श्रीचन्द्र पाण्डेय

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. सिद्धान्तशिरोमणि
2. सूर्यसिद्धान्त
3. सिद्धान्ततत्वविवेक
4. ज्योतिष शास्त्र

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रहों के भूमण्डल पर प्रभाव का वर्णन कीजिये।
2. ग्रहराशि और मानव जीवन के सम्बन्ध का उल्लेख कीजिये।
3. सूर्य एवं चन्द्रमा का मानव जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है। स्पष्ट कीजिये।
4. ग्रहराशि से क्या तात्पर्य है?

इकाई - 2 ग्रहराशि एवं वानस्पतिक जीवन

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 ग्रहराशि एवं वानस्पतिक जीवन परिचय
2.4 ग्रहराशि एवं वानस्पतिक जीवन का अन्त:सम्बन्ध
2.5 सारांश
2.6 पारिभाषिक शब्दावली
2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक पाठ्यसामग्री
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-205 के प्रथम खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – ग्रहराशि एवं वानस्पतिक जीवन। इससे पूर्व आपने ग्रहराशि एवं मानव जीवन से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'ग्रहराशि एवं वानस्पतिक जीवन' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

वानस्पतिक जीवन से तात्पर्य वनस्पतिक जीव-जगत, वृक्षों तथा पर्यावरण आदि से है। कैसे ज्योतिष मानव जीवन के साथ-साथ पर्यावरण से भी सम्बन्ध रखता है? वानस्पतिक जीवन में उसकी क्या भूमिका है? इन सभी विषयों का अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे।

आइए इस इकाई में हम लोग 'ग्रहराशि एवं वानस्पतिक जीवन' के बारे में जानने का प्रयास करते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- वानस्पतिक जीवन को परिभाषित कर सकेंगे।
- ग्रहराशि एवं वानस्पतिक जीवन के अवयवों को समझा सकेंगे।
- 'ग्रहराशि एवं वानस्पतिक जीवन के सम्बन्ध को समझ लेंगे।
- ग्रहराशि एवं वानस्पतिक जीवन का महत्व को जान लेंगे।

2.3 ग्रहराशि एवं वानस्पतिक जीवन

आपने पूर्व की इकाई में ग्रहराशि का मानव जीवन से सम्बन्ध के बारे में अध्ययन किया। अब आप ग्रहराशि एवं वानस्पतिक जीवन का बोध करने जा रहे है। वानस्पतिक जीवन से तात्पर्य पेड़-पौधे वनस्पतियों तथा पर्यावरण आदि से है। ग्रहराशि वानस्पतिक जीवन को भी प्रभावित करते हैं। इसमें संशय नहीं। ग्रह प्रभाव के लिए तो ऋषियों ने कहा है –

'ग्रहाधीनं जगत् सर्वं ग्रहाधीनं तु देवता।'

इसलिए एकमात्र वानस्पतिक ही नहीं, अपितु समस्त जगत् ही ग्रहाधीन है। यहाँ तक की देवता भी ग्रहाधीन है। प्रस्तुत इकाई में ग्रहराशि एवं वानस्पतिक जीवन का तादात्म्य सम्बन्ध क्या है। इस पर दृष्टिपात करते है तो सर्वप्रथम हमको यह समझना चाहिए कि भारतीय संस्कृति में स्थावर-जंगम-जड़ चेतन आदि सृष्टि की समस्त कोटियों से सम्बन्धित सभी इकाइयों को स्थान एवं काल के अनुसार

उचित सम्मान देने की व्यवस्था है। यही संस्कृति है जो सर्वप्रथम विश्वबन्धुत्व और समस्त प्राणियों के कल्याण की कामना उन्मुक्त भाव से करती है-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।

यह सूक्ति सर्वविदित है। परन्तु यह कल्पना सर्वसाधन सम्पन्न किसी विशाल नगर में नहीं की गई। यह कल्पना प्रकृति के बीच हरे-भरे जंगलों में बिहार करने वाले ईर्ष्या-द्वेष-लोभ-मात्सर्य आदि दुर्गुणों से रहित चित्त वाले मनीषियों के मस्तिष्क की उपज है। वे ही स्वस्थ चिन्तन कर सकते हैं क्योंकि वे प्रकृति को भी समझते हैं और मानव मन को भी। आज विज्ञान ने मानव के मन को समझा और उसकी अभिलाषाओं की पूर्ति में लग गया। प्रकृति की सर्वथा उपेक्षा कर दी परिणाम सबके सामने हैं। जबकि हमारी परम्परा इससे भिन्न रही है। हम कभी एकपक्षीय चिन्तर करने के पक्ष में नहीं रहे। यहाँ तक कि यदि हम किसी के अभिवादन का उत्तर भी देते है तो उसे भी प्रकृति से जोड़ देते हैं ''शतं जीवेम शरदः'' सौ शरद ऋतुओं तक जीओ। सीधे भी कह सकते हैं ''सौ वर्ष जीओ'' किन्तु इसमें कोई परम्परा नहीं है। शरद और बसन्त ऋतुओं के साथ जीवनकाल जोड़ने की हमारी परम्परा रही है। इन परम्पराओं के साथ विश्वमंगल की कामना की गई है। सभी लोग मानसिक एवं शारीरिक रूप से निरोग रहेंगे तभी सुखी रहेंगे। शरीर स्वस्थ रहते हुए अनेक अभावों से ग्रस्त रहेंगे तो मानसिक स्वास्थ्य अनुकूल नहीं रह सकेगा। जब प्रत्येक व्यक्ति सबके कल्याण के विषय में सोचेगा तो संसार में कोई दुःखी नहीं रहेगा। इन्हीं आदर्शों के साथ चलने वाला व्यक्ति ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की कल्पना कर सकता है। इससे भिन्न जीवन पद्धति का व्यक्ति यदि ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का नारा देता है या इसके सन्दर्भ में बात करता है तो वह केवल भाषण मात्र होगा। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम बाह्य पर्यावरण शुद्धि के साथ-साथ आन्तरिक पर्यावरण शुद्धि पर विशेष ध्यान दें। जब हमारा मन शुद्ध रहेगा तो हमारे आचरण शुद्ध होंगे। हमारा धर्म यही सिखलाता है। आज धर्म का नाम सुनते ही हमारे देश के राजनैतिक वर्ग के कान फटने लगते हैं जिह्वा कड़वी होने लगती है लेकिन धर्म की परिभाषा एवं उसके लक्षणों पर विचार करे तो देखें उनमें कौन सी कड़वाहट है जो समाज के लिए घातक है। धर्म का लक्षण है-

धृतिक्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्यसत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।

धैर्य, क्षमा, दम (आत्म संयम), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (मन की शुद्धि), इन्द्रियों पर नियन्त्रण, धीः (विवेक), विद्या (शिक्षा) सत्यवादिता, अक्रोध (क्रोध न करना) ये दस धर्म के लक्षण

हैं।

इनमें से प्रत्येक लक्षण मानव के जीवन स्तर को ऊपर उठाने में सहायक हैं। अतः धर्म के परित्याग से समाज संगठित नहीं होगा, अपितु धर्म का अनुपालन करने से पारस्परिक सौहार्द्र बढ़ेगा। धार्मिक भावनाओं का अभाव ही सामाजिक प्रदूषण को अहर्निश बढ़ा रहा है। अतः हमें केवल बाह्य वातावरण में उत्पन्न प्रदूषण से ही भय नहीं है, अपितु व्यक्तिगत एवं सामाजिक प्रदूषण से भी भय है। आज बाह्य प्रदूषण की अपेक्षा आभ्यन्तर सामाजिक प्रदूषण ही मानव जाति के लिए अधिक घातक दृष्टिगत हो रहा है। अतः हमें प्रयत्नपूर्वक अपनी परम्परा, अपनी संस्कृति का पुनः अवलोकन एवं उसके अनुसार आचरण करना चाहिए।

हमारी प्राच्यसंस्कृति ने जो जीवन पद्धति दी है इसमें भूमि को माता तथा सभी जीव-जन्तु एवं वनस्पतियों में प्राणी ही नहीं, अपितु देवत्व का भाव भी प्रदर्शित किया है-

पशवः पक्षिणः सर्वे मातरः पितरश्च नः।
पालनीयाः प्रयत्नेन श्रुतिरेषा सनातनी।।

हम वनस्पतियों का आवश्यकतानुसार उपयोग भी करते हैं परन्तु उनके प्रति हम आदरभाव भी रखते हैं। सामान्य तृण 'दूर्वा' से लेकर विशाल वृक्ष पीपल-वट आदि तक सभी न केवल हमारे लिए आदरणीय है अपितु हम इनकी समय-समय पर पूजा भी करते हैं। कोई भी भारतीय संस्कृति का अनुयायी व्यक्ति 'पीपलवृक्ष' काटने का अनायास साहस नहीं करेगा। यदि किसी परिस्थिति में उसे काटना अपरिहार्य हो जाता है तो उसके अभाव की पूर्ति के लिए उसे काटने से पूर्व एक पीपल वृक्ष का रोपण करता है। पंच वृक्षों (पीपल-वट-प्लक्ष-जम्बू-आम्र) के प्रति विशेष सम्मान का भाव है। इसके साथ-साथ निम्ब-कदम्ब-अर्जुन-सर्ज-आमलक प्रभृति वृक्षों को भी धार्मिक स्तर से सम्मान दिया गया है। भारतीय वास्तु शास्त्र में गृहनिर्माण के साथ-साथ विशिष्ट वृक्षों के रोपण को भी महत्व दिया गया है। यथा-

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दशचिंचरीकम्।
कपित्थविल्वामलकत्रयंच पंचाम्रवापी नरकं न पश्येत्।।

अर्थात् एक अश्वत्य (पीपल), एक पिचुमन्द (निम्ब), एक न्यग्रोध (वट), दश चिंचरीक (इमली), तीन कपित्थ (कैंथ), तीन विल्व (बेल), तीन आमलक (आँवला) तथा पाँच आम्र (आम) के वृक्षों का रोपण करने वाला व्यक्ति नरक को नहीं देखता है अर्थात् स्वर्ग में ही जाता है। इस प्रकार अनेक प्रेरणाप्रद प्रसंग उपलब्ध होते हैं, जिनसे यह स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है कि प्राकृतिक सम्पदा का संरक्षण हमारे अस्तित्व के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसी प्रकार कूप-वापी एवं नदियों के प्रति

भी देवत्व की भावना है। इसमें मूत्रपुरीष आदि के विसर्जन का घोर निषेध किया है। इतना ही नहीं प्रदूषण करने पर दण्ड का भी विधान था। मनु ने लिखा है-

समुत्सृजेत् राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनागपि।
स द्वौ कर्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत्।

अर्थात् जो सड़क (सार्वजनिक मार्ग) पर मलमूत्र का त्याग करता है उसे 2 कर्ष (प्राचीन मुद्रा) दण्ड लेकर उसी से तत्काल साफ कराना चाहिये। यदि इस प्रकार का दण्ड विधान हो तो आज सर्वत्र स्वच्छता ही दिखेगी। आज विदेशों में इस प्रकार के प्रदूषण पर दण्डविधान हैं, किन्तु भारत में नहीं है। परिणाम भी सबके समक्ष है।

जब तक गंगा माँ थी तब तक स्वच्छ एवं पवित्र थी। आज जब भौतिकवाद ने उसे सामान्य नदी समझ लिया तो वह प्रदूषित हो गई। पवित्र भावना के अभाव में प्रदूषणमुक्ति के सभी प्रयास व्यर्थ सिद्ध हो रहे हैं।

किसी भी प्रकार से इनके जल-दूषित एवं अपवित्र करने को घोर पातक के रूप में कहा गया है। केवल अपने पीने वाले जल को ही शुद्ध रखने की धारणा न रखकर समस्त जलाशयों को शुद्ध एवं स्वच्छ रखने की भावना ही पर्यावरण शुद्ध रखने में सक्षम होगी। भावना में शुद्धि निम्नलिखित आधारों पर ही सम्भव है।

1. पर्यावरण सम्बन्धी समग्रज्ञान एवं इसके संरक्षण के प्रति विवेकपूर्ण दायित्व।
2. धार्मिक भावना तथा
3. प्रकृति के प्रति मातृवत् आस्था।

इन्हीं आधारों पर हम प्रकृति से प्राप्त होने वाले अजस्त्र ऊर्जा स्त्रोतों को सुरक्षित रख सकते हैं, तथा उनका यथेष्ट लाभ ले सकते हैं।

हमारी प्राचीन संस्कृति में वृक्ष-नदी एवं जलाशयों को जीवन्त माना गया है। आदि काव्य वाल्मीकि रामायण में इस भावना का सजीव चित्रण किया गया है। सीता का हरण कर जब रावण ले जा रहा था। तब सीता ने अपने को असहाय पाकर अपना सन्देश वृक्षों, नदियों एवं पक्षियों द्वारा देने का प्रयास किया। सीता ने कहा इस वन के वृक्षों में रहने वाले सभी देवताओं को मेरा नमस्कार है। आप लोग मेरे पति को मेरे अपहरण की सूचना दे दें। मैं कर्णिकार आदि सभी पुष्पों को आमन्त्रित करती हूँ। आप शीघ्र ही राम को सूचित करें कि रावण सीता का हरण कर रहा है। मैं हंस कारण्डव से व्याप्त गोदावरी नदी से कह रही हूँ कि राम को मेरे हरण की सूचना दें।

देवतानि च यान्यस्मिन् वने विविध पादपे।

नमस्करोम्यहं तेभ्यो भर्तुः शंसत माम् हृताम्।
आमन्त्रये जनस्थाने कार्णिकाराँश्च पुष्पितान्।
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः।।
हंससारससंघुष्टां वन्दे गोदावरीं नदीम्।
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः।

(बा. रा. 3.49.31-33)

आज भौतिक सुख साधनों की लिप्सा ने हमें प्रकृति से दूर ले जाकर ऐसे स्थान पर खड़ा कर दिया है, जहाँ हम कृत्रिम एवं प्रदूषित अन्न-जल एवं वायु ग्रहण करने हेतु बाध्य होते जा रहे हैं। इस प्रकार का प्रदूषण अब न केवल शहरों को ही प्रदूषित किया है अपितु स्वच्छ एवं शुद्ध वातावरण वाले ग्रामीण क्षेत्रों को भी बुरी तरह प्रभावित करता जा रहा है। अब आवश्यकता है सभी स्तरों से प्रदूषण पर नियन्त्रण करने की अन्यथा प्राकृतिक प्रकोप के घातक परिणाम आगामी पीढ़ियों को झेलने पड़ेंगे। अतः इस वेदवाणी को सार्थक करने के प्रयास में कृत संकल्प होने की आवश्यकता है-

ऊँ0 द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष .... .शान्तिः पृथ्वीशान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः।

वेदवाणी शाश्वत् सत्य का प्रतिपादन करती है। किसी व्यक्ति जाति या देश विशेष के लिए यहाँ कोई उपदेश नहीं है बल्कि यहाँ पृथ्वी ही नहीं अपितु समस्त ब्रह्माण्ड में शान्ति एवं कल्याण की कामना की गई है। ब्रह्माण्ड का कोई भी भाग प्रदूषित होगा तो पृथ्वी भी अवश्य प्रभावित होगी। अतः हमें व्यक्ति से ब्रह्माण्ड तक के शुद्धीकरण हेतु जागरूक होना आवश्यक है। तभी हम प्रदूषण मुक्त हो सकते हैं।

बोध प्रश्न -

1. निम्न में जगत् किसके अधीन कहा गया है?
   क. ग्रह   ख. वृक्ष   ग. देवता   घ. ऋषि
2. शतम् का शाब्दिक अर्थ क्या है।
   क. ५०   ख. १००   ग. ७०   घ. ८०
3. पंचवृक्षों में क्या नहीं आता है।
   क. पीपल   ख. वट   ग. आम्र   घ. निम्ब
4. निम्नलिखित में किस वृक्ष का धार्मिक स्थान दिया गया है।
   क. निम्ब   ख. कदम्ब   ग. अर्जुन   घ. सभी

5. क्षिप्रं शब्द का अर्थ है।
   क. शीघ्र   ख. विलम्ब   ग. यथासंभव   घ. हरण

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि वानस्पतिक जीवन से तात्पर्य पेड़-पौधे एवं वनस्पतियों से है। ग्रहराशि वानस्पतिक जीवन को भी प्रभावित करते हैं। इसमें संशय नहीं। तभी तो कहा है –

ग्रहाधीनं जगत् सर्वं ग्रहाधीनं तु देवता।

एकमात्र वानस्पतिक ही नहीं, अपितु समस्त जगत् ही ग्रहाधीन है। यहाँ तक की देवता भी ग्रहाधीन है। प्रस्तुत इकाई में ग्रहराशि एवं वानस्पतिक जीवन का तादात्म्य सम्बन्ध क्या है। इस पर दृष्टिपात करते है तो सर्वप्रथम हमको यह समझना चाहिए कि भारतीय संस्कृति में स्थावर-जंगम-जड़ चेतन आदि सृष्टि की समस्त कोटियों से सम्बन्धित सभी इकाइयों को स्थान एवं काल के अनुसार उचित सम्मान देने की व्यवस्था है। यही संस्कृति है जो सर्वप्रथम विश्वबन्धुत्व और समस्त प्राणियों के कल्याण की कामना उन्मुक्त भाव से करती है-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।

यह सूक्ति सर्वविदित है। परन्तु यह कल्पना सर्वसाधन सम्पन्न किसी विशाल नगर में नहीं की गई। यह कल्पना प्रकृति के बीच हरे-भरे जंगलों में बिहार करने वाले ईर्ष्या-द्वेष-लोभ-मात्सर्य आदि दुर्गुणों से रहित चित्त वाले मनीषियों के मस्तिष्क की उपज है। वे ही स्वस्थ चिन्तन कर सकते हैं क्योंकि वे प्रकृति को भी समझते हैं और मानव मन को भी। आज विज्ञान ने मानव के मन को समझा और उसकी अभिलाषाओं की पूर्ति में लग गया। प्रकृति की सर्वथा उपेक्षा कर दी परिणाम सबके सामने हैं। जबकि हमारी परम्परा इससे भिन्न रही है। हम कभी एकपक्षीय चिन्तर करने के पक्ष में नहीं रहे। यहाँ तक कि यदि हम किसी के अभिवादन का उत्तर भी देते है तो उसे भी प्रकृति से जोड़ देते हैं ''शतं जीवेम शरदः'' सौ शरद ऋतुओं तक जीओ। सीधे भी कह सकते हैं ''सौ वर्ष जीओ'' किन्तु इसमें कोई परम्परा नहीं है। शरद और बसन्त ऋतुओं के साथ जीवनकाल जोड़ने की हमारी परम्परा रही है। इन परम्पराओं के साथ विश्वमंगल की कामना की गई है। सभी लोग मानसिक एवं शारीरिक रूप से निरोग रहेंगे तभी सुखी रहेंगे। शरीर स्वस्थ रहते हुए अनेक अभावों से ग्रस्त रहेंगे तो मानसिक स्वास्थ्य

अनुकूल नहीं रह सकेगा। जब प्रत्येक व्यक्ति सबके कल्याण के विषय में सोचेगा तो संसार में कोई दुःखी नहीं रहेगा।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

जगत् – संसार

धैर्य - धीरज रखना

अस्तेय – चोरी न करना

धी – विवेक

अक्रोध – क्रोध नहीं करना

शतम् – १००

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ख
3. घ
4. घ
5. क

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जातकपारिजात – मूल लेखक – वैद्यनाथ
2. बाल्मीकी रामायण – आदिकवि बाल्मीकी
3. प्राच्यविद्यानुशीलनम् – आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय
4. मनु स्मृति – आचार्य मनु
5. वृहत्संहिता – आचार्य वराहमिहिर

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. नारद संहिता –

2. वशिष्ठ संहिता –

3. भृगु संहिता –

4. रामचरितमानस

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वानस्पतिक जीवन का वर्णन कीजिये।
2. पर्यावरण का महत्व बतलाइये।
3. बाल्मीकी रामायण के आधार पर वानस्पतिक चित्रण कीजिये।
4. धर्म का महत्व बतलाते हुए मानव जीवन में उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालिये।
5. ज्योतिषशास्त्र के अनुसार वानस्पतियों का उल्लेख कीजिये।

इकाई - 3 वृष्टि एवं कृषि विज्ञान

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 वृष्टि परिचय

3.3.1 वृष्टि प्रकार

3.3.2 वृष्टि काल

3.4 कृषि विज्ञान

3.5 सारांश

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -205 के प्रथम खण्ड की तीसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – वृष्टि एवं कृषि विज्ञान। इससे पूर्व आपने ग्रहराशि एवं मानव जीवन, ग्रहराशि और वानस्पतिक जीवन से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'वृष्टि एवं कृषि विज्ञान' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'वृष्टि' का शाब्दिक अर्थ है – वर्षा। कृषि वर्षा पर ही आधारित होती है। अत: वृष्टि एवं कृषि का सम्बन्ध अन्योन्याश्रय है। एक दूसरे के पूरक हैं दोनों। अत: वृष्टि एवं कृषि दोनों का ज्ञान हमें होना चाहिए।

अत: आइए इस इकाई में हम लोग 'वृष्टि एवं कृषि' के बारे में अध्ययन करते हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- वृष्टि को परिभाषित कर सकेंगे।
- वृष्टि के अवयवों को समझा सकेंगे।
- वृष्टि के प्रकार एवं कारक को बता सकेंगे।
- कृषि विज्ञान को बता पायेंगे।
- वृष्टि एवं कृषि विज्ञान को समझ लेंगे।

3.3 वृष्टि परिचय

हम सब जानते है कि व्याकरण शास्त्र के बिना हम किसी भी शब्द की सिद्धि नहीं कर सकते है। अत: वृष्टि शब्द की सिद्धि हेतु हम यदि व्याकरण की दृष्टि से विचार करे तो ''वृषु सेचने' धातु से ''स्त्रिया क्तिन्'' इस सूत्र से क्तिन् प्रत्यय करने पर वर्षण अर्थ में **वृष्टि** शब्द निष्पादित होता हैं। यदि पौराणिक दृष्टिकोण से विचार करे तो कूर्मपुराण के अनुसार सूर्य की किरणों से पिया हुआ जल बादलों में ठहरता हैं फिर वह जल समय आने पर भूमि पर गिरता है और उससे समुद्र भरता हैं। इसी प्रकार ब्रहमाण्ड पुराण में उल्लिखित हैं कि तेज (सूर्य) सब भूतों (भौतिक वस्तुओं) से किरणों के द्वारा जल ले लेता हैं। समुद्र (पारमेष्ठय समुद्र) के अम्भ नामक जल के योग से किरणें आप् नामक सांसारिक जल को ले जाती हैं। अपनी गति के कारण हटा हुआ सुर्य भौतिक वस्तुओं से उठाये हुए उस जल को फिर

श्वेत और कृष्ण किरणों द्वारा मेघ में बांधता हैं। मेघों के अन्दर आया हुआ वह जल वायु से प्रेरित होकर फिर वापिस भूमि पर बरस जाता हैं। तेज किरणों से तपते हुए और मन्दनवल वाले मेघ वर्षाकाल में क्रुद्ध हुए की तरह बड़ी-बड़ी धाराओं से बरसते हैं।

आधुनिक विचारधारा के अनुसार जब आर्द्रवायु की अपार मात्रा किसी कारणवश ऊपर उठती हैं तो उसके तापमान में गिरावट आती रहती है और अंत में एक ऊँचाई पर जाकर जाकर उसमें संघनन की प्रकिया सम्पन्न होने लगती हैं। ऊपर उठती वायु में संघनन प्रकिया से मेघों की उत्पत्ति होती हैं। मेघ जल की महीन-महीन बूँदों अथवा छोटे-छोटे हिमकणों अथवा दोनों ही से निर्मित होते हैं। मेघों में अपनी वायु व्यवस्था होती हैं। जलबूदें तथा हिमकण मेघों के अंदर उपस्थित पवन प्रवाह के साथ ऊपर नीचे होते रहते हैं। ये जलबूदें आपस में संयुक्त होकर बड़ी बूँदों में परिवर्तित हो जाती हैं तो उनका भार इतना अधिक हो जाता हैं कि वे मेघों को त्यागकर भूमि पर बरसने लगती हैं। इस प्रकार मेघकणों के आकार वृद्धि की क्रियाविधि को ही वर्षण या वृष्टि प्रक्रम कहते हैं।

३.३.१ वृष्टि के प्रकार -

वृष्टि के कई प्रकार हैं। जिनमें वर्षा, करका एवं हिम का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में मिलता हैं। प्राचीन काल में वृष्टि का अभिप्राय जल वृष्टि अथवा वर्षा से लिया जाता था। ओले, जो सामान्यतया वर्फ के शुष्क बड़े गोले के समान होते हैं, के 12 प्रभेद निम्न हैं- धाराङ्कुर, राधारङ्कुर, वर्षेपल, घनोपल, मेघोपल, मेघास्थि, मटची, पुंजिका, बीजोदक, घनकफ, वार्चर एवं करका। सम्भवतः उपर्युक्त भेद ओलों की आकृति के आधार पर कहे गये हैं। ओले को 'करका' भी कहा जाता हैं। अधिक ओलों के गिरने से दुर्भिक्षभय रहता हैं। करकोत्पत्तिका के विषय में बृहत्संहिता में वर्णित हैं कि यदि धारण हुआ समय में आकार करका वृष्टि अथवा करकर मिश्रित जलवृष्टि करता हैं।

३.३.२ वृष्टि काल -

प्राचीन भारतीय मतानुसार शीतकाल में वृष्टि के बादलों वाष्पीकरण की प्रक्रिया द्वारा निर्माण होना प्रारम्भ होता है अतः इसे धारणकाल कहा जाता हैं। उष्णकाल हो उस मेघगर्भ का पोषण होता हैं वर्षाकाल में प्रसव अर्थात् प्रवर्षण होता हैं। यह जलचव पूरे 1 वर्ष का हैं। मेघ के गर्भकाल, दोहद (पुष्टिकाल) एवं प्रसवकान के विषय में अनेक मतान्तर हैं। किसी का मत है कि -मार्गशीर्ष से चार महीने फाल्गुन शीतकाल, चैत्र से चार महीने आषाढ़ तक उष्णकाल तथा श्रावण से चार महीने तक वर्षाकाल होता हैं। सम्प्रति- कार्तिक से माघ तक शीतकाल, फालगुन से ज्येष्ठ तक उष्णकाल तथा आषाढ़ से आश्विन तक वर्षाकाल माना जाता हैं। किसी का अभिमत ज्येष्ठ नक्षत्र के आस पास जब अमावस्या (मार्गशीर्ष अमावस्या) होवे तब गर्भकाल और ज्येष्ठ नक्षत्र के आसपास जब पूर्णिमा (ज्येष्ठ पूर्णिमा)

हो तो प्रसवकाल अर्थात् वर्षाकाल समझना चाहिए। कुछ विद्वान मानते हैं कि मूलनक्षत्र के उतरार्ध में सूर्य के आने से (पौषमाह) गर्भकाल तथा आर्द्रा नक्षत्र पर सूर्य के आने से 4 मास तक प्रसवकाल समझना चाहिए। वराहमिहिरादि आचार्यों का मत है कि जिस नक्षत्र पर चन्द्रमा के रहते हुए गर्भस्थिति हुई हो, उसी नक्षत्र पर आठवीं बार चन्द्रमा के आने से अर्थात् 195 दिन में, उस दिन की गर्भस्थिति का जल बरस जाता हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्राचीनाचार्यों के मतानुसार प्रायः आषाढ़मास से आश्विन मास तक वर्षाकाल होना चाहिए। वस्तुतः वृष्टिकाल का ज्ञान करना अत्यन्त जटिल प्रक्रिया हैं। क्योंकि वृष्टि का तात्पर्य मात्र वर्षा से न होकर हिमपात, ओलावृष्टि इत्यादि से भी होता हैं। साथ ही वृष्टि शीतकाल एवं उष्णकाल में होती रहती हैं। यहाँ प्राचीनचार्यों का वृष्टिकाल से तात्पर्य मानसूनी पवनों द्वारा होने वाली वर्षा से हैं जो प्रायः उपर्युक्त मासों में अर्थात् वर्षाकाल में ही होती हैं। साथ ही जिस पर भारत की कृषि अवलम्बित हैं।

३.४ कृषि विज्ञान

भारतवर्ष में कृषिकर्म को अत्यधिक महत्व दिया जाता रहा है संस्कृत वाङ्मय इसका साक्षी है। अनेक प्रसंगों में कृषि कर्म का, विविध धान्यों, फलों एवं वृक्षों का उल्लेख इंगित करता है कि भारतीय मनीषी कृषि क्षेत्र में चिरकाल से ही जागरूक रहे हैं। महर्षि पराशर ने तो कहा है- अन्न ही प्राण है, अन्न ही बल है, अन्न से ही सभी प्रयोजनों की सिद्धि है अन्न पर ही देवता-असुर और मनुष्य का जीवन है। अतः सभी कुछ त्याग कर कृषि कर्म करना चाहिये-

''अन्नं प्राणा बलं चान्नमन्नं सर्वार्थसाधनम।
देवासुरमनुष्याश्च सर्वे चान्नोपजीविनः।।''
अन्नं हि धान्यसंजातं धान्यं कृष्ध विना न च।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य कृषिं यत्नेन कारयेत्।। (कृ. पा. 6, 7)

इतना ही नहीं व्यावहारिक पक्ष को भी स्पर्श करते हुये महर्षि ने कहा है'' धन से क्षुधा शान्त नहीं होती क्षुधा शान्ति के लिये अन्न ही सक्षम होता है। कण्ठ, कर्ण और हाथों में यदि स्वर्ण के आभूषण हो तो भी अन्न के अभाव में उपवास ही करना होगा।

''कण्ठे कर्णे च हस्ते च सुवर्णं विद्यते यदि।
उपवासस्तथापि स्याद् अन्नाभावेद देहिनाम्।। (कृ. पा. 1. 5।)

यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में संस्कारों के साथ व्रत-पर्वों एवं पूजन विधानों के साथ भी कृषि

कर्म की झलक मिलती रहती है। उदाहरण के लिए विवाह संस्कार को देखें, विवाह मण्डल में मुख्य स्तम्भ के साथ ईषादण्ड, जिसे लोकभाषा में 'हरीश' कहते हैं स्थापित किया जाता है। चूल्हा, चक्की आदि उपकरण रखे जाते हैं। नवरात्रि के दुर्गापूजन प्रसंग में यव बीज का वपन किया जाता है। उसकी अङ्कुरण प्रक्रिया तथा रंगों के आधार पर शुभाशुभ का विचार किया जाता है। इत्यादि अनेक प्रसंग ऐसे आते हैं जिनसे कृषि से सीधा सम्बन्ध झलकता है। यह हमारा भावनात्मक पक्ष है। अब कृषि कर्म और उसी की प्रायोगिक विधि की ओर उन्मुख होते हैं-

मुख्य रूप से कृषि को भारतीय मनीषियों ने चार भागों में विचारार्थ एवं प्रयोगार्थ विभक्त किया है।

1. समय, 2. उपकरण, 3. बीज, 4. संरक्षण।

1. समय का ज्ञान दो प्रकार से किया जाता है पहला किस प्रकार के अन्न के लिए कौन सी ऋतु उपयुक्त होती है। दूसरा उपयुक्त ऋतु में भी कौन-सा समय शुभ होगा। इस सन्दर्भ में ज्योतिष शास्त्र में हल प्रबहण, बीजवपन, धान्यच्छेदन, कणमर्द आदि के लिए शुभ तिथि-वार-नक्षत्रादि का विवेचन कर मुहूत्त का निर्धारण किया गया है।

दूसरा भाग 'उपकरण' बहुत विस्तृत है। कृषि में सर्वाधिक आवश्यकता जल की होती है। कहा भी गया है-

वृष्टिमूला कृषिः सर्वा वृष्टिमूलं च जीवनम्।
तस्मादौ प्रयत्नेन वृष्टि-ज्ञानं समाचरेत्।। कृ. पा. 2.1।

अतः कृषि कर्म का विवेचन करते समय वृष्टि विज्ञान का भी विवेचन किया गया है। जो कृषि शास्त्र के साथ-साथ ज्योतिष शास्त्र में भी विस्तार के साथ उपलब्ध हैं।

वृष्टि विचार के अनन्तर क्षेत्र कर्षण हेतु बैल और हल की आवश्यकता होती है। हलकर्षण हेतु किस प्रकार के बैल उपयुक्त होते हैं इनका भी विस्तृत वर्णन है। इन्हीं शास्त्रीय सन्दर्भों को लेकर प्रादेशिक भाषाओं में अनेक सूक्तियाँ प्रचलित हैं जिन्हें किसान अच्छी तरह जानते हैं। इस क्षेत्र में घाघ भ्डरी तथा बंगाल उड़ीसा में 'खनार वचन, प्रचलित हैं जिनमें कृषि सम्बन्धी समस्त सूचनायें उपलब्ध हैं बैल की उत्तम जाति के लिए घाघ ने लिखा है-

सींग मुड़े माथ उठा मुँह का होवे गोल।
रोम नरम चंचल करण तेज बैल अनमोल।।

बैलों की समुचित देखभाल का भी निर्देश दिया गया है। महर्षि पराश ने लिखा है कि बैलों को पीड़ित

कर कृषि नहीं करनी चाहिये अन्यथा अधिक उपज होनेपर भी उसकी निःश्वास से सब नष्ट हो जायेगा। अतः बैल की क्षमता से अधिक कार्य नहीं लेना चाहिये। बैल के बांधने का स्थान स्वच्छ होना आवश्यक है यदि पोषक आहार न मिले तो भी स्वच्छ वातावरण में रहने वाला पशु स्वस्थ और शक्तिमान होता है। गन्दगी से युक्त स्थान में बैल या अन्य पशु को रखकर उसे पुष्ट आहार दें तो भी वह स्वस्थ नहीं रह सकता।

गोशकृन्मूत्रलिप्तांगा वाहा यत्र दिने दिने।

निःसरन्ति गवां स्थानात् तत्र किं पोषणादिभिः।। कृ. पा. 310

बाहक (बैल) के वर्णन के बाद 'खाद' का वर्णन किया गया है। माघ महीने में गोबर को इकट्ठा कर उसे धूप में सुखाकर चूर्ण बना ले फिर उसे फाल्गुन मास में खेत में गड्ढा खोद कर गाड़ दे। बीज वपन के पूर्व गड्ढे से बाहर निकाल कर खेत में फैलाकर हल प्रबहण करने से उन्नत फसल होती है। इस प्रक्रिया को गोमय कूटोद्धार कहा गया है।

इस भाग का प्रमुख उपकरण 'हल' है। हल में आठ भाग होते हैं। जो इस प्रकार कहे गये हैं-

''ईषा-युग-हलस्थाणुर्निर्योलस्तस्य पाशिकाः।

अडचल्लश्च शौलश्च पच्चनी च हलाष्टकम्।। कृ. पा. 112।

अर्थात् ईषा (हरीश), युग (जुआ), हल, स्थाणु, लागन, पाट, मूँठ तथा लूगा ये आठ भागों से मिलकर हल तैयार होता है। इनमें सभी भागों के प्रमाण पृथक्-पृथक् बताये गये हैं।

तीसरा प्रमुख भाग 'बीज' है। बीज की गुणवत्ता पर ही कृषि निर्भर करती है। बीज का चयन करते समय ध्यान रखना चाहिये कि बीज एक आकार के हो उनमें मिश्रण न हो, अन्नका छिलका (भूसी) न हो।

''एकरूपं तु यजं फलं फलति निर्भरम्।'' कृ. पा. 3.79

बीज को सुरक्षित रखने की भी एक विधि है-

बीज को पोटली में बांधकर सुरक्षित और शुद्ध स्थान में रखना चाहिये। बीज का स्पर्श भी अधिकारी व्यक्ति को करना चाहिये। जूठें हाथों से बीज का स्पर्श नहीं करना चाहिये। रजस्वला, वन्ध्या और गर्भिणी स्त्रियों को भी बीज स्पर्श का निषेध किया गया है-

नोच्छिष्टं स्पर्शयेद् बीजं न च नारीं रजस्वलाम्।

न बन्ध्यां गर्मिणीं चैव न च सद्यः प्रसूतिकाम्।। कृ. पा. 382

बीज के ऊपर घी-तेल-नमक आदि रखना भी हानिकारक होता है-

घृतं तैलं च तक्रं च प्रदीपं लवणं तथा।।

बीजोपरि भ्रमेणापि कृषको नैव कारयेत्।। कृ. पा. 3.83

इस प्रकार सभी दृष्टियों से सावधानीपूर्वक बीजवपन करने के बाद फसल के संरक्षण का समय आता है। कृषि शास्त्रज्ञों का कहना है कि कृषि का निरीक्षण स्वयं करना चाहिये-

''फलत्यवेक्षिता स्वर्णं दैन्यं सैवानवेक्षिता।''

अर्थात् सम्यक् देखभाल की गई कृषि स्वर्ण उत्पन्न करती है और अनदेखी दैन्य को उत्पन्न करती है। महर्षि गर्ग ने लिखा है-

पितुरन्तः पुरं दद्यात् मातुर्दद्यान्महानसम्।

गोषु चात्मसमं दद्यात् स्वयमेव कृषिं व्रजेत्।। कृ. पा. 3.2

अर्थात् पिता को अन्तःपुर गृहकी सुरक्षा का भार, माता को रसोई का कार्य, तथा अपने समान व्यक्तियों (भाईयों) को पशुओं की देखभाल का दायित्व देना चाहिये किन्तु कृषि हेतु स्वयं खेत में जाना चाहिये। वहाँ आवश्यकतानुसार निस्तृणीकरण आदि कर फसल के संरक्षण हेतु सावधान रहना चाहिये। फसल के लिए घातक कौन होते हैं? उनकी तरफ भी शास्त्रकार ने संकेत किया है-

शांखी-गान्धी-पाण्डरमुण्डी-धूली-श्रृंगारी-कुमारी मडकादयः।

अजा-चटक-शुक-शूकर-मृगमहिष बराहपतंगादयश्च सर्वे सस्योप-घातिनः।।''

कृषि कर्म में प्रसंगवश देवी-देवताओं के पूजन तथा बाधाओं से निवृत्ति हेतु मन्त्रों का भी विधान किया गाय है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कृषि के सभी अंगों पर सूक्ष्म प्रकाश डाला गया है। इस प्रसंग में वराहमिहिर के कुछ अद्भुत प्रयोगों का उल्लेख अप्रसांगिक नहीं होगा-

वराहमिहिर ने ऐसे अनेक चैकाने वाले प्रसंग प्रस्तुत किये हैं जिस पर आज अनुसन्धान करने की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ-जामुन के वृक्ष को देखकर अनुमान किया जा सकता है कि गेहूँ की फसल कैसी होगी। इसी प्रकार शिरीष वृक्ष से उड़द मूंग एवं मसूर आदि का ज्ञान किया जा सकता है। इससं यह संकेत मिलता है गेहूँ को प्रभावित करने वाला वातावरण जामनु को भी प्रभावित करता है। भारतीय संस्कृति में वृक्षों और वनस्पतियों को सम्मानित स्थान दिया गया है। क्योंकि उनका सीधा सम्बन्ध मानव जीवन से है। आज वैज्ञानिक भी जीवन के सन्दर्भ में इनकी आवश्यकता का अनुभव करने लगे हैं। पीपल सर्वाधिक आक्सीजन विसर्जित करता है तथा रात्रि में भी उसके नीचे सोना हानिकारक नहीं है। नवग्रहों के वृक्ष उनसे सम्बन्धित वनस्पतियाँ सभी किसी न किसी रूप में जीवन से जुड़ी हुई हैं। वातावरण इन वनस्पतियों एवं वृक्षों पर ही आधारित है। वायु के साथ उड़ने वाले रजकणों को शोधित कर वायु को शुद्ध करने की क्षमता वृक्ष में ही है। इसीलिए हमारी संस्कृति में दूर्वा से लेकर बरगत तक

का महत्त्व दर्शाया गया है।

इसके अतिरिक्त प्राचीन भारतीय नागरिक जिन्हें आर्य कहा जाता था वो भी कृषि कार्य से पूर्णत: परिचित थे, यह वैदिक साहित्य से स्पष्ट परिलक्षित होता है। ऋगवेद और अर्थर्ववेद में कृषि संबंधी अनेक ऋचाएँ है जिनमें कृषि संबंधी उपकरणों का उल्लेख तथा कृषि विधा का परिचय है। ऋग्वेद में क्षेत्रपति, सीता और शुनासीर को लक्ष्य कर रची गई एक ऋचा (४.५७-८) है जिससे वैदिक आर्यों के कृषि विषयक के ज्ञान का बोध होता है-

शुनं वाहा: शुनं नर: शुनं कृषतु लागलम्।
शनुं वरत्रा बध्यंतां शुनमष्ट्रामुदिगय।।
शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद् दिवि चक्रयु: पय:।
तेने मामुप सिंचतं।
अर्वाची सभुगे भव सीते वंदामहे त्वा।
यथा न: सुभगासिसि यथा न: सुफलासिसि।।
इन्द्र: सीतां नि गृह् णातु तां पूषानु यच्छत।
सा न: पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्।।
शुनं न: फाला वि कृषन्तु भूमिं।।
शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहै:।।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभि:।
शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम्

एक अन्य ऋचा से प्रकट होता है कि उस समय 'जौ' हल से जुताई करके उपजाया जाता था-

एवं वृकेणश्विना वपन्तेषं
दुहंता मनुषाय दस्त्रा।
अभिदस्युं वकुरेणा धमन्तोरू
ज्योतिश्चक्रथुरार्याय।।

अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि जौ, धान, दाल और तिल तत्कालीन मुख्य शस्य थे-

व्राहीमतं यव मत्त मथो
माषमथों विलम्।
एष वां भागो निहितो रन्नधेयाय
दन्तौ माहिसिष्टं पितरं मातरंच।।

अथर्ववेद में खाद का भी संकेत मिलता है जिससे प्रकट है कि अधिक अन्न पैदा करने के लिए लोग खाद का भी उपयोग करते थे-

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन्
गोष्ठं करिषिणी।
बिभ्रंती सोभ्यं।
मध्वनमीवा उपेतन।।

गृह्य एवं श्रौत सूत्रों में कृषि से संबंधित धार्मिक कृत्यों का विस्तार के साथ उल्लेख हुआ है। उसमें वर्षा के निमित्त विधिविधान की तो चर्चा है ही, इस बात का भी उल्लेख है कि चूहों और पक्षियों से खेत में लगे अन्न की रक्षा कैसे की जाए। पाणिनि की अष्टाध्यायी में कृषि संबंधी अनेक शब्दों की चर्चा है जिससे तत्कालीन कृषि व्यवस्था की जानकारी प्राप्त होती है।

भारत में ऋग्वैदिक काल से ही कृषि पारिवारिक उद्योग रहा है और बहुत कुछ आज भी उसका रूप है। लोगों को कृषि संबंधी जो अनुभव होते रहें हैं उन्हें वे अपने बच्चों को बताते रहे हैं और उनके अनुभव लोगों में प्रचलित होते रहे। उन अनुभवों ने कालांतर में लोकोक्तियों और कहावतों का रूप धारण कर लिया जो विविध भाषाभाषियों के बीच किसी न किसी कृषि पंडित के नाम प्रचलित है और किसानों जिह्वा पर बने हुए हैं। हिंदी भाषा भाषियों के बीच ये घाघ और भड्डरी के नाम से प्रसिद्ध है। उनके ये अनुभव आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों के परिप्रेक्ष्य मे खरे उतरे हैं।

वर्तमान समय में कृषि -

भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की लगभग 65% जनसंख्या कृषि कार्य पर निर्भर है। और कुल राष्ट्रीय आय का 27.4% भाग कृषि से होता है। भारतीय कृषि मुख्य रूप से वर्षा पर निर्भर रहती है तथा एक वर्ष के अंतर्गत भारत में मुख्यतः रबी, खरीफ एवं जायद की फसलें रोपित की जाती हैं। आज देश की अर्थव्यवस्था को मज़बूत बनाने मे अगर सबसे ज्यादा भागीदारी किसी की है तो उसमे सबसे पहला नाम कृषि क्षेत्र का ही आता है। अथवा यदि यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि, कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। कुछ इतिहासकारों के आधार पर भारत में कृषि सिंधु घाटी सभ्यता के दौर से की जाती रही है। १९६० के बाद कृषि के क्षेत्र में हरित क्रांति के साथ नया दौर आया। एक सर्वेक्षण के आधार पर सन् २००७ में भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि एवं सम्बन्धित कार्यो (जैसे वानिकी) का सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में हिस्सा 16.6% था। उस समय सम्पूर्ण कार्य करने वालों का 52% कृषि में लगा हुआ था। इससे कृषि की महत्ता राष्ट्रीय स्तर पर समझी जा सकती है।

भारत में कृषि कार्य हेतु परंपरागत औजारों जैसे फावड़ा, खुरपी, कुदाल, हँसिया, बल्लम, के साथ ही आज अत्याधुनिक मशीनों का प्रयोग भी किया जाता है। किसान जुताई के लिए ट्रैक्टर, कटाई के लिए हार्वेस्टर तथा गहाई के लिए थ्रेसर का प्रयोग करते हैं। अब तो कई नवीन अनुसंधान पर आधारित कृषि कार्य सम्पन्न किया जाता है।

भारत में सिंचाई का मतलब खेती और कृषि गतिविधियों के प्रयोजन के लिए भारतीय नदियों, तालाबों, कुओं, नहरों और अन्य कृत्रिम परियोजनाओं से पानी की आपूर्ति करना होता है। भारत जैसे देश में, ६४% खेती करने की भूमि, मानसून पर निर्भर होती है। भारत में सिंचाई करने का आर्थिक महत्व है - उत्पादन में अस्थिरता को कम करना, कृषि उत्पादकता की उन्नति करना, मानसून पर निर्भरता को कम करना, खेती के अंतर्गत अधिक भूमि लाना, काम करने के अवसरों का सृजन करना, बिजली और परिवहन की सुविधा को बढ़ाना, बाढ़ और सूखे की रोकथाम को नियंत्रण में करना।

उत्पादन में भारत का स्थान

पहला स्थान : गन्ना, बाजरा, जूट, अरंडी, आम, केला, अंगूर, कसाबा, मटर, अदरक, पपीता और दूध।

दूसरा स्थान : गेहूँ, चावल, फल और सब्जियाँ, चाय, आलू, प्याज, लहसुन, चावल, बिनौला।

तीसरा स्थान : उर्वरक।

भारत के प्रमुख कृषि संस्थान -

- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
- जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर
- इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर
- गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पन्तनगर
- चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर
- चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार
- लाला लाजपतराय पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार
- यशवन्त सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सोलन
- राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पूसा

- बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, काँके
- राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर।

इस प्रकार कृषि क्षेत्र में भी भारतवर्ष समृद्ध रहा है। वृष्टि और कृषि दोनों एक-दूसरे के बिना अपूर्ण है। यदि वृष्टि होगी तभी कृषि कार्य समुचित तरह से सम्पन्न किया जा सकेगा, अन्यथा नहीं। नवीनतम तकनीकी माध्यमों के बावजूद हमें कृषि के लिए वृष्टि की आवश्यकता यथावत् पड़ेगी। सिंचाई के साधन तो नवीन हो सकते है, किन्तु वृष्टि नवीन या पुरातन नहीं होती। जिस फसल के लिए जितनी वृष्टि अथवा जल की आवश्यकता होती है, उतनी किसी भी माध्यम से चाहिए ही होगी। इसलिए वृष्टि एवं कृषि दोनों अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक है।

बोध प्रश्न -

1. वृष्टि शब्द की व्युत्पत्ति में कौन सा धातु है।

   क. वृषु सेचने   ख. वृष   ग. वर्षा   घ. वर्षण

2. किस पुराण के अनुसार कहा जाता है कि सूर्यकिरणों के द्वारा सभी भौतिक वस्तुओं द्वारा जल ले लिया जाता है।

   क. कूर्म पुराण   ख. ब्रह्माण्ड पुराण   ग. नारद पुराण   घ. मत्स्य पुराण

3. प्राचीन आचार्यो के अनुसार वर्षाकाल क्या माना जाता है।

   क. आषाढ़ से आश्विन   ख. श्रावण से आश्विन   ग. श्रावण- भाद्रपद   घ. आषाढ़-कार्तिक

4. 'अन्न ही प्राण है।' निम्न में किसका वचन है।

   क. पराशर   ख. नारद   ग. गर्ग   घ. विश्वामित्र

5. प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार मुख्यत: वृष्टि के कितने प्रकार बतलाये गये हैं।

   क. ३   ख. ४   ग. ५   घ. ६

6. नवीन मत में भारत की कितनी प्रतिशत जनता कृषि पर निर्भर है।

   क. ६४   ख.६६   ग.६५   घ.७०

7. गन्ना उत्पादन में भारत का विश्व में कौन सा स्थान है।

   क. पहला   ख. दूसरा   ग. तीसरा   घ. चौथा

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ''वृषु सेचने' धातु से ''स्त्रिया क्तिन्'' इस सूत्र से क्तिन् प्रत्यय करने पर वर्षण अर्थ में **वृष्टि** शब्द निष्पादित होता हैं। यदि पौराणिक दृष्टिकोण से विचार करे तो कूर्मपुराण के अनुसार सूर्य की किरणों से पिया हुआ जल बादलों में ठहरता हैं फिर वह जल समय आने पर भूमि पर गिरता है और उससे समुद्र भरता हैं। इसी प्रकार ब्रहमाण्ड पुराण में उल्लिखित हैं कि तेज (सूर्य) सब भूतों (भौतिक वस्तुओं) से किरणों के द्वारा जल ले लेता हैं। समुद्र (पारमेष्ठय समुद्र) के अम्भ नामक जल के योग से किरणें आप् नामक सांसारिक जल को ले जाती हैं। अपनी गति के कारण हटा हुआ सुर्य भौतिक वस्तुओं से उठाये हुए उस जल को फिर श्वेत और कृष्ण किरणों द्वारा मेघ में बांधता हैं। मेघों के अन्दर आया हुआ वह जल वायु से प्रेरित होकर फिर वापिस भूमि पर बरस जाता हैं। तेज किरणों से तपते हुए और मन्दनवल वाले मेघ वर्षाकाल में क्रुद्ध हुए की तरह बड़ी-बड़ी धाराओं से बरसते हैं। आधुनिक विचारधारा के अनुसार जब आर्द्रवायु की अपार मात्रा किसी कारणवश ऊपर उठती हैं तो उसके तापमान में गिरावट आती रहती है और अंत में एक ऊँचाई पर जाकर जाकर उसमें संघनन की प्रकिया सम्पन्न होने लगती हैं। ऊपर उठती वायु में संघनन प्रकिया से मेघों की उत्पत्ति होती हैं। मेघ जल की महीन-महीन बूँदों अथवा छोटे-छोटे हिमकणों अथवा दोनों ही से निर्मित होते हैं। मेघों में अपनी वायु व्यवस्था होती हैं। जलबूदें तथा हिमकण मेघों के अंदर उपस्थित पवन प्रवाह के साथ ऊपर नीचे होते रहते हैं। ये जलबूदें आपस में संयुक्त होकर बड़ी बूँदों में परिवर्तित हो जाती हैं तो उनका भार इतना अधिक हो जाता हैं कि वे मेघों को त्यागकर भूमि पर बरसने लगती हैं। इस प्रकार मेघकणों के आकार वृद्धि की क्रियाविधि को ही वर्षण या वृष्टि प्रक्रम कहते हैं।

भारतवर्ष में कृषिकर्म को अत्यधिक महत्व दिया जाता रहा है संस्कृत वाङ्मय इसका साक्षी है। अनेक प्रसंगों में कृषि कर्म का, विविध धान्यों, फलों एवं वृक्षों का उल्लेख इंगित करता है कि भारतीय मनीषी कृषि क्षेत्र में चिरकाल से ही जागरूक रहे हैं। महर्षि पराशर ने तो कहा है- अन्न ही प्राण है, अन्न ही बल है, अन्न से ही सभी प्रयोजनों की सिद्धि है अन्न पर ही देवता-असुर और मनुष्य का जीवन है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

वृष्टि – वर्षा या बारिश

कृषि - खेती या कृषक सम्बन्धित कार्य कृषि कहलाता है।

कूर्मपुराण – १८ पुराणों में एक पुराण। कूर्म का अर्थ कच्छप होता है।

हिमकण – बर्फ का कण

कृषक – जो कृषिकार्य करता है।

अन्न – खाद्य पदार्थ जिससे क्षुधा की तृप्ति होती है। जैसे- चावल, दाल, रोटी, सब्जी आदि।

भौतिक – शारीरिक

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ख
3. क
4. क
5. क
6. ग
7. क

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कूर्म पुराण – मूल लेखक – वेदव्यास

2. अष्टाध्यायी – पाणिनी

3. कृषि पराशर – मूल लेखक – पराशर, टीका – आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय

4. वृहत्संहिता – वराहमिहिर

5. प्राच्यविद्यानुशीलनम् - आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय

6. भारतीय वृष्टिविज्ञान अनुशीलनम् – आचार्य देवीप्रसाद त्रिपाठी

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. वृहत्संहिता
2. नारद संहिता
3. वशिष्ठ संहिता
4. आधुनिक कृषि विज्ञान
5. कृषि पराशर

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वृष्टि को परिभाषित करते हुए उसके प्रकारों का उल्लेख कीजिये।
2. वृष्टि काल का निरूपण कीजिये।
3. प्राचीन कृषि विज्ञान का वर्णन कीजिये।
4. नवीन मत में कृषि कार्य का प्रतिपादन कीजिये।
5. वृष्टि एवं कृषि की महत्ता पर प्रकाश डालिये।

इकाई – 4 ज्योतिष और योग शास्त्र

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 ज्योतिष एवं योग परिचय
4.4 ज्योतिष शास्त्र में निहित योग शास्त्र
4.5 सारांश
4.6 पारिभाषिक शब्दावली
4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 सहायक पाठ्यसामग्री
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -205 के प्रथम खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – ज्योतिष और योगशास्त्र। इससे पूर्व आपने वृष्टि एवं कृषि विज्ञान का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'ज्योतिष एवं योग' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

ज्योतिष शास्त्र इतना विंहगम है, कि इसमें समस्त चराचर जीव-जगत समाहित हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं। इसी क्रम में ज्योतिष और योग का क्या सम्बन्ध है अथवा ज्योतिष शास्त्र में निहित योग का अध्ययन आप इस इस इकाई में करने जा रहे हैं।

आइए इस इकाई में हम लोग 'ज्योतिष और योग' के बारे में जानने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- योग को परिभाषित कर सकेंगे।
- ज्योतिष में निहित योग के अवयवों को समझा सकेंगे।
- ज्योतिष और योग के अन्त:सम्बन्ध को समझ लेंगे।
- ज्योतिष और योग के महत्व को प्रतिपादित कर सकेंगे।

4.3 ज्योतिष और योग शास्त्र

ज्योतिष एवं योग का अत्यन्त प्राचीन सम्बन्ध रहा है। यदि देखा जाय तो ज्योतिष के ग्रन्थों में हमें बहुधा योग शब्द लिखे मिलते है। कहीं गणितीय परिदृश्य में, तो कहीं फलित पक्ष अथवा संहितादि में भी योग शब्द का वर्णन हमें बारम्बार मिलता है। परन्तु प्रसंगवश उनका अर्थ भी अलग-अलग होता है। यहाँ ज्योतिष और महर्षि पतंजलि का योग शास्त्र का चिन्तन किया जा रहा है। जो एक महत्वपूर्ण एवं ज्ञानवर्धक विषय है। आयुर्वेद, योग और ज्योतिष प्राचीन काल से ही अपने ज्ञान-विज्ञान से मानव जीवन को उपकृत करते रहा है। ये सभी अत्यन्त प्राचीनतम सिद्धान्त है ये तो आप सभी जानते ही होंगे।

सृष्टि में योग शास्त्र के आदि प्रणेता स्वयं भगवान कृष्ण है। गीता में योग का उल्लेख करते हुए वो कहते है कि 'कर्मों में कुशलता ही योग है', यथा – **योग: कर्मसु कौशलम्**। इसी प्रकार महर्षि पतंजलि का योग 'योगश्चित्वृत्तिनिरोध:' की बात कहता है। सांख्यदर्शन के अनुसार

पुरुषप्रकृत्योर्वियोगेपि योगइत्यमिधीयते। अर्थात् पुरुष एवं प्रकृति के पार्थक्य को स्थापित कर पुरुष का स्व स्वरूप में अवस्थित होना ही योग है। आप देखेंगे तो गीता में भगवान कृष्ण द्वारा उक्त सभी तथ्य उपदेशित किये गये हैं। अब आइए विस्तारपूर्वक ज्योतिष और योग शास्त्र का अध्ययन करते और समझते है।

योग शब्द की व्युत्पत्ति –

'योग' शब्द 'युज समाधौ' आत्मनेपदी दिवादिगणीय धातु में 'घं' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। इस प्रकार 'योग' शब्द का अर्थ हुआ- समाधि अर्थात् चित्त वृत्तियों का निरोध। वैसे 'योग' शब्द 'युजिर योग' तथा 'युज संयमने' धातु से भी निष्पन्न होता है किन्तु तब इस स्थिति में योग शब्द का अर्थ क्रमशः योगफल, जोड़ तथा नियमन होगा।

विज्ञान भैरव में लिखा है -

यथालोकेन दीपस्य किरणैर्भास्करस्य च।
ज्ञायते दिग्विभागादि तद्वच्छक्त्या शिवः प्रिये।। (विज्ञान भैरव 21)

ज्योतिषशास्त्र के साथ यदि योग की चर्चा करनी हो तो 'योग' शब्द के साथ 'शास्त्र' लिखना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि 'योग' ज्योतिष का पारिभाषिक शब्द भी है जो योगशास्त्र से सर्वथा भिन्न है। चर स्थिर दो भेदों के साथ पंचांग का अंगभूत भी योग है। ग्रहों की युति को भी योग कहा जाता है तथा शुभाशुभ सूचक ग्रहों की विभिन्न स्थितियाँ भी योग सूचक होती हैं। यथा- राजयोग, अरिष्टयोग, नाभसयोग आदि किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत विशिष्ट रूप से वर्णित योगशास्त्र के कुछ अंशों पर प्रकाश डालने का प्रयास करूँगा, जो ज्योतिष के उक्त परिभाषित योगों से भिन्न हैं।

योग की परिभाषा बतलाते हुये योग सूत्र के आरम्भ में महर्षि पतंजलि ने लिखा है। ''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'' अर्थात् चित्तवृत्तियों का नियमन ही योग है। श्रीमद्भगवत्गीता में भी श्रीकृष्ण ने अनेक प्रकार से योग की परिभाषा दी है किन्तु सबका केन्द्रीभूत आधार मन ही सिद्ध होता है। गीता में तो मन को प्रमादी और दुर्निग्रह भी बताया है जो व्यवहार में भी प्रतिक्षण दृश्य है। ज्योतिषशास्त्र में 'मन' का कारक चन्द्रमा को माना गया है। भगवती श्रुति भी इसे पुष्ट करती है ''चन्द्रमा मनसो जातः।'' ज्योतिषशास्त्र में सूर्य और चन्द्रमा की भूमिका अन्य ग्रहों की अपेक्षा अधिक होती है। इसका मूल कारण है कि सभी ग्रह सूर्य की प्रमुख सात रश्मियों से प्रकाशित होते हैं उनमें अपना स्वतः प्रकाश नहीं होता। अतः किसी भी ग्रह से परावर्तित रश्मि उस ग्रह के प्रभाव के साथ सूर्य के भी गुणों का वहन

करती है। चन्द्रमा हमारी पृथ्वी का निकटतम अपना उपग्रह है अतः उसका गहन प्रभाव यहाँ की समस्त सृष्टि पर पड़ता है। वेद ने तो स्पष्ट रूप से कह दिया है ''अग्निसोमात्मकं जगत्'' यह समस्त सृष्टि ही अग्नि (सूर्य) और सोम (चन्द्र) मय है। पुराणों ने भी इसे दुहराया है-

''नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठायोनिरेव च।
चन्द्रऋक्षग्रहा सर्वे विज्ञेया सूर्यसम्भवाः।।''

अर्थात् समस्त ब्रहमाण्ड की उत्पत्ति का कारण एक मात्र सूर्य ही है। सूर्य की सात रश्मियों में प्रथम रश्मि 'सुषुम्ना' चन्द्र को प्रकाशित करती है तथा सुषुम्ना के माध्यम से चन्द्रमा अमृत स्राव पृथ्वी पर करता है जिससे जीव-जन्तु एवं लता वृक्षादि में जीवन-संचार होता है ''यत् पिण्डे तद् ब्रहमाण्डे'' के सिद्धान्तानुसार इसी सुषुम्ना के माध्यम से योगीजन अपने कपालकुहर में जिहा प्रवेशकर अमृत पान करते हैं। इसका विवेचन हठयोग प्रदीपिका में स्पष्ट रूप से किया गया है। इनमें इडा, पिंगला और सुषुम्ना ये नाडियाँ ही प्रधान है। इडा का सम्बन्ध चन्द्रमा से, पिंगला का सम्बन्ध सूर्य से तथा सुषुम्ना का सम्बन्ध शम्भु से हैं। यहाँ शम्भु को हंस स्वरूप बताया गया है। हंस उस वायु को कहते हैं जिससे श्वसन क्रिया संचालित होती है।

सुषुम्ना रश्मि का सम्बन्ध सीधा चन्द्र से है किन्तु सुषुम्ना नाडी का सम्बन्ध चन्द्रमा के साथ प्रकारान्तर से हैं। हमारे शरीर में दश नाडियाँ तथा दश वायु परस्पर अन्योन्याश्रित भाव से स्थित है। प्रत्येक नाडी एवं उससे सम्बन्धित वायु का विवरण इस प्रकार है-

क्र.	**नाडी**	**सम्बन्धित वायु**
1.	इडा	प्राण
2.	पिङगला	अपान
3.	सुषम्रा	समान
4.	गान्धारी	उदान
5.	हस्तिजिहिका	व्यान
6.	पूषा	नाग
7.	यशा	कूर्म
8.	व्यूषा	कृक
9.	कुहू	देवदत्त
10.	शंखिनी	धनंजय

इन्हीं तीनों नाडियों से शरीरस्थ वायु का ज्ञान किया जाता है किन्तु इन तीनों का ज्ञान कैसे हो इसके लिए ज्योतिष का स्वरशास्त्र कहता है -

‘‘इडानाडी स्थितश्चन्द्रः पिङगला भानुवाहिनी।
सुषुम्ना शम्भुरूपेण, शम्भुर्हंसस्वरूपकः।।‘‘

यहाँ सुषुम्ना के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये कहा गया हैर कि सुषुम्ना शम्भुरूप है तथा शम्भु हंस स्वरूप है। हंस का अभिप्राय श्वास की निर्गम औश्र प्रवेश की क्रिया से है। ‘ह‘कार निर्गम को (श्वास का नासिकारन्ध्र से बाहर आना) तथा ‘स‘कार प्रवेश को (श्वास का नासिकारन्ध्र से भीतर प्रवेश करना) व्यक्त करता है। यही ‘हंस‘ है तथा यहीं अजपाजप भी है। यह सुषुम्ना ‘ह‘कार रूप में शम्भु तथा ‘स‘कार रूप में शक्ति का परिचायक है। इन दोनों का सम्बन्ध इडा और पिंगला नाडियों से हैं। अर्थात् इडा नाडी चन्द्र शक्ति (वायु) को धारण कर नासिका के वामरन्ध्र से प्रवाहित होती है तथा पिंगला नाडी सूर्य वायु को लेकर नासिका के दक्षिणरन्ध्र से प्रवाहित होती है। इन दोनों रन्ध्रों से प्रवाहित होने वाली वायु शम्भुरूप हकार एवं शक्तिरूपी सकार से युक्त होती है। अतः स्पष्ट है कि इडा और पिंगला (चन्द्र-सूर्य) दोनों नाडियाँ सुषुम्ना के सहयोग से ही प्रवाहित होती हैं।

इन स्वरों का प्रवाह भी सूर्य और चन्द्र की गति के अनुसार ही होता है। सर्वविदित है कि सूर्य और चन्द्रमा के आधार पर ही तिथियों की गणना होती है तथा तिथि के अनुसार चन्द्रकलाओं में ह्रास और वृद्धि का क्रम निरन्तर चलता रहता है। अतः तिथियों के अनुसार प्रत्येक चान्द्र मास के शुक्ल प्रतिपदा से तृतीया पर्यन्त प्रातः काल चन्द्र स्वर नासिका के वाम रन्ध्र से वायु का संचार करता है तथा चतुर्थी से षष्ठी पर्यन्त प्रातः प्रथम सूर्य स्वर द्वारा नासिका के दक्षिण रन्ध्र से वायु का संचार होता है। इसी प्रकार सप्तमी से नवमी तक प्रथम चन्द्रस्वर, दशमी से द्वादशी तक सूर्य तथा त्रयोदशी से पूर्णिमा तक चन्द्र स्वर चलता है। कृष्ण पक्ष में शुक्लपक्ष के विपरीत स्वरों का उदय होता है। ज्योतिषशास्त्र में यात्रा, पथिक, जय-पराजय, आदि अनेक प्रश्नों के उत्तर इन्हीं स्वरों के माध्यम से भी देने का विधान है। यथा-

चन्द्रोदये यदा सूर्यश्चन्द्रः सूर्योदये यदा।
अशुभं हानिरुद्वेगस्तद्दिने जायतेर धु्रवम्।।
यात्राकाले विवाहे च वस्त्रालङ्कारभूषणे।
शुभकर्मणि सन्धौ च प्रवेशे च शशी शुभः।।

इत्यादि स्वर संचार के साथ तथा सभी ग्रहों के साथ पंच महाभूतों का भी घनिष्ट सम्बन्ध है। इन महाभूतों के अनुसार व्यक्ति के स्वास्थ्य का परीक्षण किया जाता है। ग्रहों के महाभूतों का उल्लेख

करते सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है-

अग्निषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्त्वङगारकादयः।
तेजो भूखाम्बुवातेभ्यः क्रमशः पंच जज्ञिरे।।

सूर्य अग्नि तथा चन्द्र सोम है। इनके अतिरिक्त भौमादि पाँच ग्रह क्रम से तेज (अग्नि), भू (पृथ्वी), आकाश, जल एवं वायु तत्वों से युक्त होते हैं। ये पाँच तत्व उक्त तीन नाडियों का आश्रय कर श्वास के साथ प्रवाहित होते हैं। इन महाभूतों के संचरण का विवेचन समर सार में, अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा कुछ भिन्न किन्तु विशिष्ट रूप से किया गया है। हृदय में अष्टदल कमल की कल्पना की गई है तथा प्रत्येक पंखुड़ी के दो भाग किये गये हैं। पंखुड़ी के एक भाग में आरोह क्रम से 30 स्वर आकाश तत्व का चलता है अनन्तर 30-30 की वृद्धि से क्रमशः वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी तत्व चलते हैं। पंखुड़ी के दूसरे भाग में अवरोह क्रम से उतनी ही संख्या में स्वरों का संचार होता है। अर्थात् आरोह क्रम से आकाश 30 $ वायु 60 $ अग्नि 90 $ जल 120 $ पृथ्वी 150 कुल योग 150 स्वर। इसी प्रकार अवरोह क्रम से 150 पृथ्वी $ 120 जल $ 90 अग्नि $ 60 वायु $ 30 आकाश कुल योग 150 स्वर। यही क्रम आठों पंखुड़ियों में ईशानादि क्रम से होता है। उक्त क्रम से एक पंखुड़ी के आरोह 150 $ अवरोह 150 स्वरों का योग 900 स्वर (श्वास) के तुल्य होता है। आठों पंखुड़ियों में स्वर संख्या = 900 ग 8 = 7200 आठों दलों में स्वर की एक परिक्रमा 7200 स्वरों के साथ पूर्ण होती है। 24 घण्टों (एक अहोरात्र) में अष्टदलों में श्वास (स्वर) की तीन आवृत्ति होती हैं। अतः एक अहोरात्र में स्वरों (श्वासों) की संख्या = 7200 ग 3 = 21600। यहीं संख्या योगशास्त्र ने बतलाई है। प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य की 1 अहोरात्र में 21600 श्वसन क्रिया होनी चाहिये। इससे न्यूनाधिक क्रिया पंचमाहभूतों में विकृति की सूचक है जो अस्वस्थता का संकेत माना जाता है। स्पष्टता हेतु श्वास चक्र (हंस चार) के चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा रहा है।

चित्र

जन्मकालिक ग्रहों की स्थिति एवं बलाबल के आधार पर पंच महाभूतों की प्रकृति एवं विकृति का ज्ञान सरलता से किया जाता है किन्तु स्वरों (श्वासों) के आधार पर महाभूतों (तत्त्वों) को पहचानना सतत् अभ्यास पर निर्भर करता है। श्वास की दिशा और वेग के आधार पर तत्त्वों का ज्ञान सम्भव हो पाता है। आकाश तत्त्व की श्वास का वेग अत्यन्त अल्प तथा जल तत्त्व का वेग सर्वाधिक होता है।

नासिका रन्ध्र से एक अंगुल तक आकाश तत्त्व तथा 16 अंगुल तक जल तत्त्व का वेग प्रतीत होता है।

सभी तत्वों के स्वर को ज्ञात करने के लिए विधि बताई गई है। 16 अंगुल की सीधी लकड़ी

लेकर उसे एक-एक अंगुल पर चिन्हित कर लें। पुनः उस लकड़ी को नासिका रन्ध्र के पास रख कर श्वास के वेग का अवलोकर करें। 16 अंगुल तक वेग होने पर जल तत्त्व, 4 अंगुल तक तेजस् तत्व, 12 अंगुल तक वायु तत्त्व, 7 अंगुल तक पृथ्वी तत्त्व तथा 1 अंगुल तक आकाश तत्त्व सिद्ध होता है।

इन तत्वों के परिणाम बतलाते हुये समरसार कहता है -

धराम्बुनी शुभे महो विमिश्रितं फलं भवेत्।
मरुन्नभश्च दुःखदे मते स्वरार्थवेदिभिः।।

अर्थात् पृथ्वी और जलतत्त्व शुभफलदायक, अग्नि तत्व मिश्रित (शुभ $ अशुभ) फलदायक, तथा वायु और आकाश तत्त्व दुःखदायक होते हैं। ऐसा स्वरशास्त्रियों का कथन है। अतः कोई भी शुभाशुभ कार्य करना हो तो तदनुकूल स्वर देख कर कार्य करने से कार्य सिद्धि होती है।

सूर्य और चन्द्र की नाड़ियाँ अष्टदल कमल के दो-दो पंखुड़ियों का भोग पाँच-पाँच घटियों तक करती है। इस अवधि में दो-दो बार विहित प्रमाणानुसार पंचमहाभूतों के स्वरों की भी आवृत्ति आरोह एवं अवरोह क्रम से होती है। इनका सम्यग् अभिज्ञान होने के बाद इनके द्वारा अपना तथा प्रश्नकत्र्ता के सभी शुभाशुभ समयों एवं परिणामों का ज्ञान सरलतया होता है। यथा कहा गया है-

अर्केऽग्नितत्ववहने हरिहेलया यद् एकोऽपि हन्ति सुबहून किमुतात्रचित्रम्।
शून्ये रिपून् स्वपृतनामपि वाहपक्षे निक्षिप्य विक्षिपति लक्षमरीन् क्षणेन।।

आशय यह कि सूर्यनाड़ी में अग्नि तत्त्व का प्रवाह होने से अकेले व्यक्ति भी अनेक शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार अनेक योगों तथा स्वरों से मिलने वाले संकेतों के उल्लेख ग्रन्थों में मिलते हैं साथ ही प्रश्नों के फलादेश हेतु स्वरों एवं नाड़ियों के अनुसार विचारणीय विषयों का उल्लेख किया गया है-

चन्द्रे वहे नृपविलोकनगेहवेश पट्टाभिषेकमुखकर्ममनेच्छुभं यत्।।
सौरे तु मज्जनवधूरतिभुक्तियुद्धमुख्यं भवेदशुभकर्मफलाय सत्यम्।।

इस प्रकार योग की एक धारा स्वरशास्त्र से जुड़ जाती है, तथा दूसरी धारा ग्रहों से सम्बन्धित योग और ज्योतिष दोनों का साथ-साथ प्रतिपादन करती है। यौगिक क्रियाओं के मूल में जब हम दृष्टिपात करते हैं तो शरीरस्थ षट्चक्रों का ज्ञान होता है। ये षट्चक्र ही योग के आधार है तथा इनका भेदन ही योग की चरम परिणति है। इनका भेदन तत्तद् चक्रों से सम्बन्धित ग्रहों की अनुकूलता पर निर्भर करता है। षट्चक्र और उनसे सम्बन्धित ग्रहों के उल्लेख के पूर्व मैं स्पष्ट करना चाहूँगा कि ब्रहमाण्डस्थ ग्रहकक्षा का क्रम तथा शरीरस्थ ग्रहकक्षा का क्रम किंचित अन्तरित होता है। श्रीमद्भागवत् में वर्णित ग्रहकक्षा का क्रम प्रत्यक्षतः विरुद्ध लगता है। यथा-

''एवं चन्द्रमा अर्कगभस्तिभ्य उपरिष्टाल्लक्षयोजनतः।।''

सूर्य की कक्षा से 1 लाख योजन ऊपर चन्द्रमा की कक्षा है। जबकि भारतीय ज्योतिष में चन्द्रमा की कक्षा से ऊपर सूर्य की कक्षा कही गई है। क्योंकि भारतीय ज्योतिष में ग्रहों की कक्षा भूकेन्द्रित वर्णित है। जब हम सूर्य केन्द्रित कक्षा का विचार करेंगे तब सूर्य से ऊपर चन्द्र की कक्षा स्वतः सिद्ध हो जाती है और श्रीमदभागवत का वचन यथार्थ लक्षित होता है। योगशास्त्र में भी नाभि मण्डल में सूर्य का स्थान ब्रहमा रन्ध्र में अमृत का स्थान कहा गया है। आयुर्वेद में भी केन्द्र में सूर्य और सूर्य से ऊपर चन्द्रमा का वर्णन है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों की स्थिति में भी कुछ मतान्तर दिखलाई पड़ता है जिसका समाधान सामान्य दृष्टि से नहीं दिखता है सम्भव है कोई योगी ही उचित समाधान दे सकेगा। यह अन्तर षट् चक्रों के साथ ग्रहों के सम्बन्धों को देखने से प्रतीत होता है। (अध्यात्म ज्योतिष के अनुसार तालिका)

क्र. सं.	**षट्चक्र**	**अधिष्ठाता देवता**	**प्रभावी ग्रह**
1.	मूलाधार	गणेश	बुध/राहु
2.	स्वाधिष्ठान	विष्णु	शुक्र
3.	मणिपुर	रुद्र	रवि
4.	अनाहत	रुद्र	मंगल
5.	विशुद्ध	रुद्र	चन्द्र
6.	आज्ञा	रुद्र	गुरु
7.	सहस्त्रार	रुद्र	शनि

छठें चक्र (आज्ञा चक्र) का भेद कर सहस्त्रार में योगी प्रविष्ट होकर परम योगेश्वर रुद्र से साक्षात्कार करते हैं। इस यात्रा में ग्रहों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। गर्भस्थ शिशु के विकास क्रम में मासानुसार ग्रहों की स्थिति जिस प्रकार साधक एवं बाधक होती है ठीक उसी प्रकार योगी के मार्ग में ग्रह सहयोग एवं बाधक होते हैं। ''सद्सद् ग्रह संयोगात् पुष्टाः सोपद्रवास्ते च'' नियम सर्वत्र लागू होता है। योगी के लिए स्वाधिष्ठान और विशुद्ध चक्र भेदन करना अत्यधिक कठिन होता है। दोनों के नियामक ग्रह क्रमशः शुक्र और चन्द्र शीघ्रगामी हैं अतः मन का नियन्त्रण कठिन हो जाता है। इन दोनों के कारण वासनाओं और मानसिक चा...ल्य में वृद्धि हो जाती है। अतः इन ग्रहों की अनुकूलता योगी के लिए आवश्यक होती है। आचार्य वराहमिहिर ने प्रव्रज्या योग का निरूपण करते हुये कहा है-

एकस्थैश्चतुरार्दिभिर्बलयुतैर्जाताः पृथग् वीर्यगैः
शाक्याजीविकभिक्षुवृद्धचरका निग्र्रन्थवन्याशनाः।

माहेयज्ञगुरुक्षपाकरसितप्राभाकरीनैः क्रमात्
प्रव्रज्या बलिभिः समा परिजितैस्तत् स्वामिभिः प्रच्युतिः।।

अर्थात् यदि जन्म समय में चार या चार से अधिक ग्रह एक ही राशि में बलवान होकर स्थित हों तो प्रव्रज्या योग होता है। उन सभी ग्रहों में जो सर्वाधिक बलवान होता है उसी के अनुसार प्रव्रज्या होती है। यथा- यदि मंगल बलवान हो तो शाक्य (बौद्ध साधक), बुध बली हो तो आजीविक (लोकायत), गुरु बलवान हो तो भिक्षु (यति), चन्द्रबली हो तो वृद्धश्रावक (कपाली), शुक्र बलवान हो तो चरक (वैदिक), शनि बली हो तो निग्र्रन्थ (दिगम्बर) तथा रवि बलवान हो तो वन्याशन (कनदमूल भक्षी) तपस्वी होता है।

इनमें प्रव्रज्या होने पर भी योगी होना आवश्यक नहीं है। ग्रहों की .... आदि विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार योग में प्रवृत्ति होती है, यदि ग्रह बलवान न हो तो प्रव्रज्या भंग भी हो जाती है। निष्कर्ष रूप में यह स्पष्ट है कि जब ग्रह की अनुकूलता होगी तभी योग साधना में प्रवृत्ति होगी अन्यथा नहीं।

आचार्य वराहमिहिर ने एक सामान्य नियम बताया है। विशेष स्थिति में बिना चार ग्रहों की युति के भी एक-दो बलवान ग्रह भी स्थान विशेष में स्थित होकर योगी बनाने में सक्षम होते हैं। ग्रहों के स्वभावानुसार ही मनुष्य साधन के विभिन्न मार्गों में से कोई एक मार्ग चुनता है। कोई शैव परम्परा, कोई शक्ति परम्परा तथा कोई अघोर परम्परा का अनुसरण करता है।

साधना विधि विवेचन में मतान्तर होने से भी साधक भटक जाता है। यथा साधना के उपकरणों में पंच मकार की चर्चा आती है। कहा गया है-

''मद्यं मासं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पंचमकराः स्युः मोक्षदायि युगे युगे।।''
पीत्वा पीत्वा पुनर्पीत्वार यावत् पतति भूतले।
पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।

इसका सामान्य अर्थ मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा तथा मैथुन ही ग्रहण किया जाता है। किन्तु ग्रन्थान्तरों में इसके विशेष अर्थ उपलब्ध होते हैं। यथा-

मद्य	=	चन्द्रमा से प्राप्त अमृत
मांस	=	खेचरी मुद्रा द्वारा कपाल कुहर से जिहाग्र में प्राप्त होने वाला अमृत
मीन (मत्स्य)	=	चैरासी आसन
मुद्रा	=	खेचरी, षण्मुखी, शाम्भवी आदि दस मुद्रायें।
मैथुन	=	प्राण और अपान वायु का मूलाधार में मिलन

(कुर्याच्चन्द्रार्क योगे युगपवनगते मैथुनं नैव योनौ)

इडा और पिङगला नाड़ी जो क्रमशः चन्द्र और सूर्य की वाहिका हैं इनके माध्यम से इडा द्वारा प्राण वायु तथा पिङगला द्वारा अपान वायु मूलाधारचक्र में मिलती है, इसी को मैथुन कहा गया है। यहीं से साधना का श्रीगणेश होता है। इसके अधिष्ठातृ देव भी गणेश है। यहाँ चन्द्र और सूर्य का नाड़ियों के माध्यम से तथा बुध और राहु का कारकत्व के माध्यम से सम्मिलन होता है। यदि उक्त ग्रहों की सर्वथा अनुकूलता रही तो मूलाधार की सिद्धि (भेदन) सहन में हो जाती हैं। इस प्रकार योगशास्त्र का सम्बन्ध दो धाराओं में ज्योतिष के साथ जुड़ा हुआ है। इनमें स्वरशास्त्र वाली धारा आज भी प्रवहमान है। दूसरी धारा गहन होने के कारण तथा दैनिक व्यवहार में न होने के कारण बहुत प्रचलित नहीं है। स्वरशास्त्र का उपयोग राजाओं के समय में अधिक होता था। उस समय प्रायः युद्ध हुआ करते थे। राजा अपनी जीत सुनिश्चित करने के लिए स्वरों का प्रयोग किया करते थे। अतः स्वरशास्त्र में सामान्य शुभाशुभों के साथ-साथ युद्ध में जय-पराजय का विशेष उल्लेख मिलता है। स्वरशास्त्र की प्रशंसा में ग्रन्थाकारों ने लिखा है-

''पत्त्यश्वगजभूपालैः सम्पूर्णा यदि वाहिनी
तथापि भंगमायाति नृपो हीनस्वरोदयी।।''

सभी प्रकार से हाथी, घोड़े तथा सैनिकों से सम्पन्न राजा भी यदि हीन स्वरों वाला है तो उसका पतन हो जाता है। इसी प्रकार आगे कहा है कि वे वीर सैनिक तभी तक अपनी भुजाओं के बल से युद्धरूपी समुद्र में तैरते है जब तक वे स्वरचक्र के वडवानल में नहीं पड़ते।

''तावत्तरन्ति ते धीरा दोभ्र्यामाहवसागरम्।
यावत्पतन्ति नो चक्रे स्वरास्ते बडवानले।।''

इतना ही नहीं यदि कोई राजा बिना स्वर का ज्ञान किये यदि किसी प्रकार युद्ध जीत जाता है तो उसे घुणाक्षरन्याय ही समझना चाहिये या अन्धे के हाथ जैसे कोई चिड़िया लग गई हो।

''कथाचद् विजयी युद्धे स्वरज्ञेन विना नृपः।
घुणवर्णोपमं तत्तु यथान्धचटकग्रहः।।''

राजा के लिए यहाँ तक कह दिया है कि जिस राजा के घर में एक भी स्वर शास्त्रज्ञ नहीं है उस राजा का राज्य केले के खम्भे पर टिका होता है।

''यस्यैकोऽपि गृहे नास्ति स्वरशास्त्रस्य पारगः।
रम्भास्तम्भोपमं राज्यं निश्चितं तस्य भूपतेः।।''

वस्तुतः ज्योतिषशास्त्र सृष्टि प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। अतः सृष्टि के जीव-जन्तु, मनुष्य एवं

लता वृक्षादि सभी अंशों से इसका गहन सम्बन्ध है। हम किसी भी पक्ष में विचार करेंगे तो किसी न किसी रूप में ज्योतिष का स्पर्श होगा ही। अध्यात्म का चिन्तन हो, या योग या समाधि का चिन्तन हो अथवा संसारिक व्यवहार हो सर्वत्र ज्योतिष की सत्ता विद्यमान है। जब आधान से प्रसव तक तथा प्रवकाल से शरीर के अवसान तक प्रतिक्षण जब ज्योतिष के प्रभाव से प्रभावित हैं तो मनुष्य शरीर से जुड़ी हुई योग या भोग की सभी अवस्थायें भी निःसन्देह प्रभावित होगी ही। अपवाद के रूप में ह. ने. काटवे ने अपने अध्यात्म-ज्योतिष नामक ग्रन्थ में योगी की कुण्डली का अत्यन्त रोचक स्वरूप उद्धृत किया है, जिसका आशय है कि दशमभाव में धैर्य रूपी पिता, चतुर्थभाव से क्षमा रूपी माता, सप्तमभाव से शान्ति रूपी पत्नी, पंचमभाव से सत्यरूपी पुत्र, नवमभाव से दया रूपी भगिनी, तृतीयभाव से मन संयम रूपी भ्राता, द्वादशभाव से सोने के लिए भूमि, तथा आकाश रूपी वसन तथा द्वितीय (धन) भाव से ज्ञानामृत रूपी भोजन जिसे प्राप्त हो या जिसके ऐसे पारिवारिक सदस्य हों उस योगी को षष्ठ और अष्टम से सम्बन्धित (रोग, शत्रु तथा मृत्यु) किससे भय हो सकता है? जैसा कि कहा भी गया है -

''धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चरं गेहिनी।
सत्यं सूनुरयं दया च भगिनी भ्राता मनः संयमः।।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनम्।
एते यस्य कुटुम्बिनः वद सखे कस्माद् भयं योगिनः।।''

इस प्रकार ज्योतिष और योग शास्त्र का सम्बन्ध चिरकाल से ही रहा है। दोनों एक दूसरे के साथ समन्वय स्थापित कर लोककल्याण में अपनी-अपनी भूमिका का निर्वाह करते रहे हैं।

बोध प्रश्न -

1. कर्मों में कुशलता ही योग है। यह किसका कथन है।
   क. श्रीकृष्ण   ख. राम   ग. विष्णु   घ. शिव
2. 'योग: समत्वमुच्यते' कहाँ की उक्ति है।
   क. पांतजल योग सूत्र की   ख. भगवद्गीता   ग. सांख्यदर्शन   घ. बौद्धों की
3. मूलाधार चक्र के अधिष्ठाता देवता कौन है।
   क. गणेश   ख. विष्णु   ग. शिव   घ. कार्तिक
4. विशुद्ध चक्र को प्रभावित करने वाला ग्रह कौन है?
   क. सूर्य   ख. चन्द्रमा   ग. मंगल   घ. बुध
5. सहस्रार चक्र के अधिष्ठाता देवता कौन है?

क. रूद्र ख. विष्णु ग. गणेश घ. ब्रह्मा

6. प्रधान रूप से साधना के कितने उपकरण कहे गये है।

क. ४ ख.५ ग.६ घ. ७

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ज्योतिष एवं योग का अत्यन्त प्राचीन सम्बन्ध रहा है। यदि देखा जाय तो ज्योतिष के ग्रन्थों में हमें बहुधा योग शब्द लिखे मिलते है। कहीं गणितीय परिदृश्य में, तो कहीं फलित पक्ष अथवा संहितादि में भी योग शब्द का वर्णन हमें बारम्बार मिलता है। परन्तु प्रसंगवश उनका अर्थ भी अलग-अलग होता है। यहाँ ज्योतिष और महर्षि पतंजलि का योग शास्त्र का चिन्तन किया जा रहा है। जो एक महत्वपूर्ण एवं ज्ञानवर्धक विषय है। आयुर्वेद, योग और ज्योतिष प्राचीन काल से ही अपने ज्ञान-विज्ञान से मानव जीवन को उपकृत करते रहा है। ये सभी अत्यन्त प्राचीनतम सिद्धान्त है ये तो आप सभी जानते ही होंगे।

सृष्टि में योग शास्त्र के आदि प्रणेता स्वयं भगवान कृष्ण है। गीता में योग का उल्लेख करते हुए वो कहते है कि 'कर्मों में कुशलता ही योग है', यथा – **योग: कर्मसु कौशलम्**। इसी प्रकार महर्षि पतंजलि का योग 'योगश्चित्वृत्तिनिरोध:' की बात कहता है। सांख्यदर्शन के अनुसार **पुरुषप्रकृत्योर्वियोगेपि योगइत्यमिधीयते।** अर्थात् पुरुष एवं प्रकृति के पार्थक्य को स्थापित कर पुरुष का स्व स्वरूप में अवस्थित होना ही योग है। आप देखेंगे तो गीता में भगवान कृष्ण द्वारा उक्त सभी तथ्य उपदेशित किये गये हैं। अब आइए विस्तारपूर्वक ज्योतिष और योग शास्त्र का अध्ययन करते और समझते है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

योग – कर्मों में कुशलता ही योग है।

कर्मसु - कर्मों में

कौशलम् – कुशलता

चित्त – मन

आदि – सर्वप्रथम

पतंजलि – योग शास्त्र के आचार्य

सृष्टि – समस्त चराचर जगत्।

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ख
3. क
4. ख
5. क
6. ख

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भगवद्गीता – भगवान श्रीकृष्ण
2. सांख्यदर्शन – मूल – महर्षि कपिल
3. सूर्यसिद्धान्त – आर्ष ग्रन्थ, टिका – कपिलेश्वर शास्त्री/ प्रोफे. रामचन्द्र पाण्डेय
4. हठयोगप्रदीपिका
5. प्रश्नमार्ग -
6. वृहत्संहिता – वराहमिहिर

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. श्रीमद्भगवद्गीता
2. सूर्यसिद्धान्त –
3. शकुन शास्त्र
4. लीलावती
5. पातंजलयोगसूत्र

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ज्योतिष और योग का क्या समबन्ध है।
2. ज्योतिष में वर्णित योग का उल्लेख कीजिये।
3. पुराणों में वर्णित योग का वर्णन कीजिये।
4. ज्योतिष एवं योग एक दूसरे के पूरक है। कैसे सिद्ध किया जा सकता है।
5. योग की महत्ता बतलाइये।

खण्ड - 2
यात्रा मुहूर्त्त

इकाई - 1 यात्रा मुहूर्त्तादि परिचय

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 यात्रा परिचय

1.4 यात्रा मुहूर्त्त के विविध सोपान

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -205 के द्वितीय खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – यात्रा मुहूर्त्तादि परिचय। इससे पूर्व ज्योतिष से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'यात्रा मुहूर्त्तादि' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

यात्रा मानव जीवन का अभिन्न अंग है। प्रत्येक मनुष्य अपनी जीवन में कई बार यात्रा करता है। ज्योतिष शास्त्र में ऋषियों द्वारा प्रणीत यात्रा मुहूत्तादि का अध्ययन आप इस इकाई में करने जा रहे हैं। फलस्वरूप आपके जीवन में यात्रा सम्बन्धित कई समस्यायें स्वत: ही समाप्त हो जायेगी।

आइए इस इकाई में हम लोग 'यात्रा मुहूर्त्त' के बारे में जानने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- यात्रा को परिभाषित कर सकेंगे।
- ज्योतिष में निहित यात्रा मुहूर्त्त को समझा सकेंगे।
- यात्रा के विविध सोपान से परिचित हो जायेंगे।
- यात्रा में कृत्याकृत्य को जान लेंगे।

1.3 यात्रा परिचय

यात्रा प्रत्येक प्राणी के जीवन से जुड़ा अभिन्न अंग है। यात्रा मुख्य रूप से दो प्रकार से की जाती है – एक सामान्योद्देश्य तथा दूसरा विशेषोद्देश्य। अपने-अपने जीवन काल में प्राणी मुख्यत: इन्हीं दो उद्देश्यों के साथ अवश्य ही यात्रा करता है। यद्यपि देखा जाय तो यात्रा के भी विभिन्न रूप होते हैं। कई आचार्य त्रिविध यात्रा की भी बात करते हैं।

सामान्यतया यात्रा का अभिप्राय किसी विशेष उद्देश्य से एक स्थान से दूसरे स्थान में प्रस्थान करने अर्थात् जाने से है। जन सामान्य के व्यवहार हेतु विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए की जाने वाली यात्रा 'सामान्य यात्रा' होती है। किसी राज्य पर विजय प्राप्ति के उद्देश्य से अथवा किसी शत्रु के दमन के उद्देश्य से की जाने वाली यात्रा विजय-यात्रा होती है। यह विशेष रूप से राजाओं तथा राज्ञपुरूष के लिए होती है।

परविषये विजयार्थं गन्तुर्यात्रा तु समरविजयाख्या।
निखिला परयात्रा या सामान्या सा भवेद्द्विधा।।

सामान्य यात्रा का विचार जन साधारण के लिए ही किया जाता है। परन्तु पूर्वकाल में ज्योतिष शास्त्र में प्रतिपादित मुहूर्त्त प्राय: राजा को ही उद्देश्य करके लिखे गये है। आचार्य रामदैवज्ञ जी ने मुहूर्त्तचिन्तामणि के यात्राप्रकरण में यात्रामुहूर्त्तविधान की बात करते हुए कहते है कि –

यात्रायां प्रविदितजन्मनां नृपाणां दातव्यं दिवसमबुद्धजन्मनां च।
प्रश्नाद्यैरूदयनिमित्तमूलभूतैर्विज्ञाते ह्यशुभशुभे बुध: प्रदद्यात्।।

अर्थात् जिन राजाओं का जन्म समय विधिवत् ज्ञात हो उनकी यात्रा के लिए मुहूर्त्त बताना चाहिये। जिन राजाओं का जन्म आदि का ज्ञान न हो उनके प्रश्न लग्नकालिक शकुन आदि के आधार पर दैवज्ञ को शुभ- अशुभ का निश्चय पूर्वक ज्ञान कर यात्रा का मुहूर्त्त बतलाना चाहिये।

यात्रा करने की विधि

नारदपुराण में यात्रा करने की विधि का निर्देश करते हुए कहा गया है कि प्रज्वलित अग्नि में तिलों से हवन करके जिस दिशा में जाना हो, उस दिशा के स्वामी को उन्हीं के समान रंगवाले वस्त्र, गन्ध, तथा पुष्प आदि उपचार अर्पण करके उन दिक्पालोंर के मन्त्रों द्वारा विधिपूर्वक पूजन करे। फिर अपने इष्टदेव और ब्राहमणों को प्रणाम करके ब्राहमणों से आशीर्वाद लेकर राजा को यात्रा करनी चाहिए।

हुताशनं तिलैर्हुत्वा पूजयेत् दिगीश्वरम्।
प्रणम्य देवभूदेवानाशीर्वादैर्नृपो व्रजेत्।।
यद्वर्णवस्त्रगन्धाद्यैस्तन्मन्त्रेण विधानतः।।

वहाँ यात्रा के समय दिक्पालों के स्वरूप औ ध्यान की विधि भी दी गयी। विशेष जिज्ञासु जन नारदपुराण का अवलोकन करें।

प्रस्थान रखने की विधि

नारदपुराण में बतलाया गया है कि यदि किसी आवश्यक कार्यवश निश्चित यात्रा-लग्न में राजा स्वयं न जा सके, तो छत्र, ध्वजा, शस्त्र, अस्त्र या वाहन में से किसी एक वस्तु को यात्रा के निर्धारित समय में घर से निकाल कर जिस दिशा में जाना हो, उसी दिशा की ओर दूर रखवा दे। अपने स्थान से निर्गम स्थान (प्रस्थान रखने की जगह) 200 दण्ड (चार हाथ की लग्गी) से दूर होना उचित है। अथवा चालीस या कम से कम बारह दण्डउ की दूरी होनी आवश्यक है। राजा स्वयं प्रस्तुत होकर जाय तो, किसी एक स्थान में सात दिन न ठहरे। अन्य (राज-मन्त्री तथा साधारण) जन भी प्रस्थान करके एक स्थान में छः या पाँच दिन न ठहरे। यदि इससे अधिक ठहरना पड़े, तो उसके बाद दूसरा शुभ मुहूर्त्त और उत्तम लग्न विचार कर यात्रा करे।

अप्रयाणेर स्वयं कार्या प्रेक्षया भूभुजस्तथा।
कार्यं निगमनं छत्रं ध्वजशस्त्रास्त्रवाहनैः।।
स्वस्थानान्निर्गमस्थानं दण्डानां च शतद्वयम्।
चत्वारिंशद्द्वादशैव प्रस्थितः स स्वयं गतः।।
दिनान्येकत्र न वसेत्सत्पषट् वा परो गतः।
पंचरात्रं च पुरतः पुनर्लग्नान्तरे व्रजेत्।।

वहाँ यह भी निर्देश दिया गया है किर असमय में (पौष से चैत्रपर्यन्त) बिजली चमके, मेघ की गर्जना हो या वर्षा होने लगे तथा त्रिविध (दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम) उत्पात होने लग जाय, तो राजा को सात दिन रात तक अन्य स्थानों की यात्रा नहीं करनी चाहिए।

अकालजेषु नृपतिर्विद्युद्गर्जितवृष्टिषु।
उत्पातेषु त्रिविधेषु सप्तरात्रं तु न व्रजेत्।।

यात्रा में निषिद्ध तिथि एवं विहित नक्षत्र

नारदपुराण में कहा गया है कि षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा और शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा-इन तिथियों में यात्रा करने से दरिद्रता तथा अनिष्ट की प्राप्ति होती है।

षष्ट्यष्टमीद्वादशीषु रिक्तामापूर्णिमासु च।
यात्रा शुक्लप्रतिपदि निर्धनाय क्षयाय च।।

यात्रा के लिए विहित नक्षत्र का उल्लेख करते हुए वहाँ कहा गया है कि अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, रेवती, अश्विनी, श्रवण, पुष्प और धनिष्ठा-इन नक्षत्रों में यदि अपने जन्म नक्षत्र से सातवीं पाँचवीं तारा न हो, तो यात्रा अभीष्ट फल को देने वाली होती है।

मैत्रादितीन्द्वर्कान्त्याश्विहरितिष्यवसूडुषु।
असप्तपंचत्र्याद्येषु यात्राभीष्टफलप्रदा।।

वहाँ सर्वदिग्गमन नक्षत्रों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि अनुराधा, हस्त, पुष्य और अश्विनी-ये चार नक्षत्र सब दिशाओं की यात्रा में प्रशस्त हैं।

सर्वद्वाराणि मित्रार्केज्याश्वभानि च।

दिग्द्वार नक्षत्रों का उल्लेख करते हुए नारदपुराण में कहा गया है कि कृत्तिका से आरम्भ करके सात-सात नक्षत्र समूह पूर्वादि दिशाओं में रहते हैं तथा अग्निकोण से वायुकोण तक परिघदण्ड रहता है। अतः इस प्रकार यात्रा करनी चाहिए, जिससे परिघदण्ड का लग्न न हो।

क्रमाद्दिग्द्वारभानि स्युः सप्तसप्ताग्निधिष्ण्यतः।

पुग्धिं लग्नयेद् दण्डं नाग्निश्वसनर्दिग्गमम्।।

अग्नि आदि कोणों के लिए विहित नक्षत्रों का विचार करते हुए नारदपुराण का वचन है कि पूर्व के नक्षत्रों में अग्निकोण की यात्रा करे। इसी प्रकार दक्षिण के नक्षत्रों में नैऋत्य कोण, पश्चिम के नक्षत्रों में वायव्यकोण तथा उत्तर के नक्षत्र में ईशान कोण की यात्रा की जा सकती है।

आग्नेयं पूर्वदिग्धिष्ण्यैर्विदिशश्चैवमेव हि।

दिग्राशयस्तु क्रमशो मेषाद्याश्च पुनः पुनः।।

दिशाओं की राशियों का कथन करते हुए कहा गया है कि पूर्व आदि चार दिशाओं में मेष आदि बारह राशियाँ पुनः पुनः तीन आवृत्ति से आती हैं।

निम्न चक्र से समझा जा सकता है-

पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
मेष	वृष	मिथुन	कर्क
सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक
धनु	मकर	कुम्भ	मीन

दिशाशूल का विचार

यात्रा के लिए दिक्शूल का विचार करते हुए नारदपुराण में कहा गया है कि शनि एवं सोमवार के दिन पूर्व दिशा की ओर न जाय, गुरुवार को दक्षिण न जाय, शुक्र और रविवार को पश्चिम न जाय तथा बुधवार और मंगलवार को उत्तर दिशा की यात्रा नहीं करनी चाहिए।

न मन्दून्दुदिने प्राचीं न व्रजेद् दक्षिणं गुरौ।

सितार्कयोर्न प्रतीचीं नोदीचीं ज्ञारयोर्दिने।।

इसी प्रकार ज्येष्ठा, पूर्वाभाद्रपद, रोहिणी और उत्तराफाल्गुनी-ये नक्षत्र क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में शूल होते हैं।

इन्द्राजपदचतुरास्यार्यमर्क्षाणि पूर्वतः।

शूलानि ....।।

यात्रा में योगनी वास का फल

गरुडपुराण में विविध मुहूर्त्तों का कथन करते हुए यात्रा के लिए योगिनी विचार पर बल दिया गया है। वहाँ कहा गया है कि प्रतिपदा तथा नवमी तिथि में ब्राहमणी नाम की योगिनी पूर्व दिशा में

अवस्थित रहती है। द्वितीया तथा दशमी तिथि में माहेश्वरी नामक योगिनी उत्तर दिशा में रहती है। पंचमी तथा त्रयोदशी तिथि में वाराही नामक योगिनी दक्षिण दिशा में स्थित रहती है। षष्ठी और चतुर्दशी तिथि में इन्द्राणी नाम की योगिनी का वास पश्चिम में होता है। सप्तमी और पौर्णमासी तिथि में चामुण्डा नाम से अभिहित योगिनी का निवास वायुगोचर अर्थात् वायव्यकोण में रहता है। अष्टमी तथा अमावस्या में महालक्ष्मी नाम की योगिनी ईशानकोण में रहती है। एकादशी एवं तृतीया तिथि में वैष्णवी नाम की योगिनी अग्निकोण में वास करती है। द्वादशी और चतुर्थी तिथि में कौमारी नाम वाली योगिनी का निवास नैर्ऋत्यकोण में रहता है। योगिनी के सम्मुख रहने पर यात्रा नहीं करनी चाहिए।

ब्रह्माणी संस्थिता पूर्वो प्रतिपन्नवमीतिथौ।
माहेश्वरी चोत्तरे च द्वितीयादशमीतिथौ।।
पंचमा च त्रयोदश्यां वाराही दक्षिणे स्थिता।
षष्ठ्यां चैव चतुर्दश्यामिन्द्राणी पश्चिमे स्थिता।।
सप्तम्यां पौर्णमास्यां च चामुण्डा वायुगोचरे।।
अष्टम्यमावास्ययोगे महालक्ष्मीशूगोचरे।
एकादशां तृतीयायामग्निकोणे तु वैष्णवी।।
द्वादशां च चतुर्थ्यां तु कौमारी नैर्ऋते तथा।
योगिनीसम्मुखनैव गमनादि न कारयेत्।।

वहाँ यात्रा के लिए प्रशस्त नक्षत्रों का कथन करते हुए कहा गया है कि अश्विनी, अनुराधा, रेवती, मृगशिरा, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त और ज्येष्ठा नक्षत्र प्रस्थान (यात्रा) के लिए प्रशस्त हैं।

पौराणिक ज्योतिष

अश्विनीमैत्ररेवत्यों मृगमूलपुनर्वसु।
पुष्या हस्ता तथा ज्येष्ठा प्रस्थाने श्रेष्ठमुच्यते।।

जिस प्रकार से यात्रा करने पर राजा तथा अन्यजनों के लिए अभीष्ट सिद्धि होती है, उस विधि का वर्णन करते हुए नारदपुराण में कहा गया है कि जिनके जन्म समय का ठीक-ठीक ज्ञान है, उन राजाओं तथा अन्य जनों को उस विधि से यात्रा करने पर उत्तम फल की प्राप्ति होती है। जिन मनुष्यों का जन्म समय अज्ञात है, उनको तो घुणाक्षर न्याय से ही कभी फल की प्राप्ति हो जाती है, तथापि उनको भी प्रश्नलग्न से तथा निमित्त और शकुन आदि द्वारा शुभाशुभ देखकर यात्रा करने से अभीष्ट फल का लाभ होता है।

अज्ञातजन्मनां नृणां फलाप्तिर्घुवर्णवत्।

प्रश्नोदयनिमित्ताद्यैस्तेषामणि फलोदयः।।

यात्रा में लालाटिक योग

नारदपुराण में कहा गया है कि जिस दिशा में यात्रा करनी हो, उस दिशा का स्वामी ललाटगत (सामने) हो, तो यात्रा करने वाला लौटकर नहीं आता है। पूर्व दिशा में यात्रा करने वाले के लग्न में यदि सूर्य हो, तो वह ललाटगत मान जाता है। यदि शुक्र लग्न से ग्यारहवें या बारहवें स्थान में हो, तो अग्निकोण में यात्रा करने से, मंगल दशम भाव में हो, तो दक्षिण यात्रा करने से, राहु नवें और आठवें भाव मं हो, तो नैर्ऋत्यकोण की यात्रा से, शनि सप्तम भाव में हो, तो पश्चिम यात्रा से, चन्द्रमा पाँचवें या छठे भाव में हो, तो वायुकोण की यात्रा से बुध चतुर्थ भाव में हो, तो ईशान कोण की करने से ललाटगत होते हैं।

जो मनुष्य जीवन की इच्छा रखता हो, वह इस ललाटयोग को त्याग कर यात्रा करे।

द्वित्रिस्थानगतो जीव ईशान्यां वै ललाटगः।
ललाटं तु परित्यज्य जीवितेच्छुर्व्रजेन्नरः।।

वहाँ यह भी कहा गया है कि लग्न में वक्रगति ग्रह या उसके षड्वर्ग (राशि होरादि) हों, तो यात्रा करने वाले राजा की पराजय होती है। जब जिस अयन में सूर्य और चन्द्रमा दोनों हो, उस समय उस दिशा की यात्रा शुभ फल देने वाली होती है। यदि दोनों भिन्न अयन में हों, तो जिस अयन में सूर्य हो, उधन दिन में तथा जिस अयन में चन्द्रमा हो, उधन रात्रि में यात्रा शुभ होती है। अन्यथा यात्रा करने से यात्री की पराजय होती है।

रवीन्द्वयनयोर्यातमनुकूलं शुभप्रदम्।
तदभावे दिवरात्रौ या यायाद्यातुर्वधोऽन्यथा।

यात्रा में अभिजित् मुहूर्त्त

यात्रा के लिए अभिजित् मुहूर्त्त का कथन करते हुए नारदपुराण का कहना है कि दिन का मध्यकाल = 12 बजे से एक घटी आगे और एक घटी पीछे अभीष्ट फल सिद्ध करने वाला अभिजित् मुहूर्त्त कहलाता है। यह दक्षिण दिशा की यात्रा को छोड़कर अन्य दिशाओं की यात्रा में शुभ फल देता है। इस अभिजित् मुहूर्त्त में तिथि वारादि पंचांग शुभ न हो, तो भी यात्रा में वह उत्तम फल देने वाला होता है।

याम्यादिग्गमनं त्यक्त्वा सर्वकाष्ठासु यायिनाम्।
अभिजित् क्षणयोगोऽयमभीष्टफलसिद्धिदः।।
पंचांगशुद्धिरहिते दिवसेऽपि फलपंदः।।

यात्रा के लिए विशेषयोग

लग्न और ग्रहों की स्थिति से नाना प्रकार के यात्रा-योग होते हैं, राजाओं (क्षत्रियों) को योगबल से ही अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। ब्राहमणों को नक्षत्रबल से तथा अन्य मनुष्यों को मुहूर्त्तबल से इष्टसिद्धि होती है। इसी प्रकार तस्करों को शकुल बल से अपने अभीष्ट की प्राप्ति होती है। जैसा कि नारदपुराण में कहा है-

यात्रायोग विचित्रास्तान् योगान् वक्ष्ये यतस्ततः।
फलसिद्धिर्योगलग्नाद्राज्ञां विप्रस्य धिष्ण्यतः।
मुहूर्त्तशक्तितोऽन्येषां शकुनैस्तस्करस्य च॥

नारदपुराण में यात्रा योग का कथन करते हुए कहा गया है कि शुक्र, बुध और बृहस्पति-इन तीनों में कोई भी यदि केन्द्र या त्रिकोण में हो, तो 'योग' कहलाता है। यदि उनमें दो ग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हो, तो 'अधियोग' कहलाता है और यदि तीनों ग्रह केन्द्र (1, 4, 7, 10) या त्रिकोण (9, 5) में हो, तो योगाधियोग कहलाता है। योग में यात्रा करने वालों का कल्याण होता है। अधियोग में यात्रा करने से विजय प्राप्त होती है और योगाधियोग में यात्रा करने वाले को कल्याण, विजय तथा सम्पत्ति का भी लाभ होता है।

केन्द्रत्रिकोणे ह्येकेन योगः शुक्रज्ञसूरिणाम्।
अभियोगो भवेद् द्वाभ्यां त्रिभिर्योगाधियोगकः॥
योगेऽपि यायिनां क्षेममधियोगे जयो भवेत्।
योगाधियोगे क्षेमं च विजयार्थविभूतयः॥

अन्य योगों का वर्णन करते हुए वहाँ कहा गया है कि लग्न से दसवें स्थान में चन्द्रमा, षष्ठ स्थान में शनि और लग्न में सूर्य हों, तो इस योग में यात्रा करने वाले राजा को विजय तथा शत्रु की सम्पत्ति भी प्राप्त होती है। इसी प्रकार अनेक योगों का वर्णन प्राप्त होता है।

यात्रा में प्रतिबन्ध

नारदपुराण में कहा गया है कि यदि घर में उत्सव, उपनयन, विवाह, प्रतिष्ठा या सूतक उपस्थित हो, तो जीवन की इच्छा रखने वालों को बिना उत्सव को समाप्त किये यात्रा नहीं करनी चाहिए।

उत्सवोपनयोद्वाहप्रतिष्ठाशौचसूतके।
असमाप्ते न कुर्वीत यात्रां मर्त्यो जिजीविषुः॥

दिशा, वार तथा नक्षत्र दोहद

यात्रा आदि सभी कार्यों में निमित्त, शकुन, लग्न एवं ग्रहयोग की अपेक्षा भी मनोजय अर्थात्

मन को वश में तथा प्रसन्न रखना प्रबल है। इसलिए मनस्वी पुरुषों के लिए यत्पूर्वक फलसिद्धि में मन की प्रसन्नता ही प्रधान कारण होता है। मन के प्रसन्न होने पर जो कार्य किया जाता है, वह सफल होता है। जैसा कि नारदपुराण में कहा गया है-

निमित्तशकुनादिभ्यः प्रधानं हि मनोदयः।
तस्मान्मनस्विनां यत्नात्फलहेतुर्मनोजय।।

जिसे जिस वस्तु की विशेष चाह होती है, जिसकी प्राप्ति से मन प्रसन्न हो जाता है, वह उसका 'दोहद' कहलाता है। पूर्व दिशा की अधिष्ठात्री देवी चाहती है कि लोग घृतमिश्रित अन्न खायँ। रविवार का अधिपति चाहता है कि लोग रसाला (सिखरन-मिसिरी और मसाला मिला हुआ दही) खायँ। इसी प्रकार अन्यवारादि में भी जानना चाहिए। दोहद भक्षण करने से उस वार आदि का दोष नष्ट हो जाता है। इसलिए नारदपुराण में दिशा, वार तथा नक्षत्र आदि का दोहद बतलाते हुए कहा गया है कि यदि राजा घृतमिश्रित अन्न खाकर पूर्व दिशा की यात्रा करे, तिलचूर्ण मिलाया हुआ अन्न खाकर दक्षिण दिशा को जाय और घृतमिश्रित खीर खाकर उत्तर दिशा की यात्रा करे, तो निश्चय ही वह शत्रुओं पर विजय पाता है।

घृतान्नं तिलपिष्टान्नं मत्स्यानां घृतपायसम्।
प्रागादिक्रमशो भुक्त्वा याति राजा जयत्यरीन्।।

इसी प्रकार रविवार को सज्जिका, मिसिरी और मसाला मिला हुआ दही, सोमवार को खीर, मंगलवार को काँजी, बुधवार को दूध, गुरुवार को दही, शुक्रवार को दूध तथा शनिवार को तिल और भात खाकर यात्रा करे, तो शत्रुओं को जीत लेता हैं।

सज्जिका परमान्नं कांचकं च पयो दधि।
क्षीरं तिलोदनं भुक्त्वा भानुवारादिषु क्रमात्।।

नक्षत्र दोहद बतलाते हुए वहाँ कहा गया है कि अश्विनी मे कुल्मा... (उडद का एक भेद), भरणी में तिल, कृत्तिका में उड़द, रोहिणी में गाय व दही, मृगशिरा में गाय का घी, आर्द्रा में गाय का दूध, आश्लेषा में खीर, मघा ... नीलकण्ड का दर्शन, हस्त में षाष्टिक्य (साठी धान्य) के चावल का भात, चित्रा ... प्रियंगु (कँगनी), स्वाती में अपूप (मालपूवा), अनुराधा में फल (आम, केला आदि), उत्तराषाढ़ में शाल्य (अगहनी धान्य का चावल), अभिजित में हविष्य श्रवण में कृशरान्न (खिचड़ी), धनिष्ठा में मूँग, शतभिषा में जौ का आटा, उत्तरभाद्रपद में खिचड़ी तथा रेवती में दही-भात खाकर राजा यदि हाथी, घोड़े, रथ या नरयान (पालकी) पर बैठकर यात्रा करे, तो वह शत्रुओं पर विजय पाता है और उसका अभीष्ट सिद्ध होता है।

यात्रा में अपशकुन

नारदपुराण के अनुसार तस्करों को यात्रा में शकुनबल से अभीष्ट सिद्धि होती है। इसलिए वहाँ यात्रा में अपशकुन का निर्देश करते हुए कहा गया है कि यात्रा के समय यदि परस्पर दो भैंसों या चूहों में लड़ाई हो, स्त्री से कलेश हो या स्त्री का मासिक धर्म हुआ हो, वस्त्र आदि शरीर से खिसक कर गिर पड़े, किसी पर क्रोध हो जाय या मुख से दुर्वचन कहा गया हो, तो उस दशा में यात्रा नहीं करनी चाहिए।

महिषोन्दुरयोर्युद्धे कलत्रकलहार्तवे।
वस्त्रादेः स्खलिते क्रोधे दुरुक्ते न व्रजेन्नृपाः।।

इसी प्रकार नवीन वस्त्र धारण करने वाले नक्षत्रों का कथन करते हुए कहा गया है कि हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा-ये पाँच नक्षत्र तथा उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, धनिष्ठा और पुनर्वसु नक्षत्र नवीन वस्त्र धारण करने के लिए श्रेष्ठ हैं।

हस्तादिपंचऋक्षाणि उत्तरात्रयमेव च।
अश्विनी रोहिणी पुष्पा धनिष्ठा च पुनर्वसु।।
वस्त्रप्रावरणे श्रेष्ठो नक्षत्राणां गणः स्मृतः।।

मुहूर्त्त बतलाने के क्रम में नक्षत्रों के विशेष संज्ञा एवं उनमें करणीय कृत्यों का वर्णन करते हुए गरुडपुराण में कहा गया है कि कृत्तिका, भरणी, आश्लेषा, मघा, मूल, विशाखा तथा पूर्वभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ और पूर्वाफाल्गुनी इन नक्षत्रों को अधोमुखी कहा गया है। इन अधोमुखी नक्षत्रों में वापी, तडाग, सरोवर, कूप, भूमि, तृण आदि का खनन, देवालय के लिए नींवादि के खनन का शुभारम्भ, भूमि आदि गड़ी हुई धन-सम्पत्ति की खुदाई, ज्योतिश्चक्र का गणनारम्भ और सुवर्ण, रजत, पन्ना तथा अन्य धातुओं को प्राप्त करने के लिए भू-खदानों में प्रविष्ट होना आदि अन्य अधोमुखी कार्य इन अधोमुखी नक्षत्रों में करना चाहिए।

कृत्तिका भरण्यश्लेषा मघा मूलविशाखयोः।
त्रीणि पूर्वा तथा चैव अधोवक्त्राः प्रकीर्तिताः।।
एषु वापीतडागादिकूपभूमितृणानि च।
देवागारस्य खननं निधानखननं तथा।
गणितं ज्योतिषारम्भं खनिबिलप्रवेशनम्।।
कुर्यादधोगतान्येव अन्यानि च वृषध्वज।।

इसी प्रकार रेवती, अश्विनी, चित्रा, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा एवं ज्येष्ठा नक्षत्र पार्श्वमुखी हैं। इन पार्श्वमुखी नक्षत्रों में हाथी, ऊँट, अश्व, बैल तथा भैंसे को वश में करने का उपाय करना

चाहिए अर्थात् इनके नाक आदि में छेद करके छल्ला या रस्सी डालने का कार्य करना चाहिए। खेतों में बीज बोना, गमनागमन, चक्रयन्त्र (चरखी, चरखा, रहट आदि यन्त्र) अथवा रथ एवं नौका का क्रय और निर्माण उक्त पार्श्ववर्ती नक्षत्रों में करना चाहिए और अन्य पार्श्व कार्यों को भी इन पार्श्व नक्षत्रों में करना चाहिए।

रेवती चाश्विनी चित्रा स्वाती हस्ता पुनर्वसू।
अनुराधा मृगो ज्येष्ठा एते पार्श्वमुखाः स्मृताः।।
गजोष्ट्राश्वबलीवर्ददमनं महिषस्य च।
बीजानां वपनं कुर्याद्गमनागमनादिकम्।।
चक्रयन्त्ररथानां च नावादीनां प्रवाहणम्।
पार्श्वेषु यानि कर्माणि कुर्यादेतेषु तान्यपि।।

इसी क्रम में रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद, शतभिष (वारुण) तथा श्रवण-इन नौ नक्षत्रों को ऊर्ध्वमुखी कहा गया है। इन नक्षत्रों में राज्याभिषेक और पट्टबन्ध आदि शुभ कार्य करवाने चाहिए। ऊर्ध्वमुखी अर्थात् अभ्युदय प्रदान करने वाले अन्य विशिष्ट कार्यों को भी इन नक्षत्रों में कराना प्रशस्त होता है।

रोहिणाद्रा तथा पुष्या धनिष्ठा चोत्तरात्रयम्।
वारुणं श्रवणं चैव नव चोर्ध्वमुखाः स्मृताः।।
एषु राज्याभिषेकं च पट्टबन्धं च कारयेत्।
ऊर्ध्वमुखान्युच्छितानि सर्वाण्येतेषु कारयेत्।।

इसी प्रकार शुभाशुभ तिथियों का कथन करते हुए दग्धयोग, औत्पातिक योग, विष्कुम्भ, सिद्धि आदि योगों का कथन करते हुए उसमें करणीयाकरणीय कृत्यों का कथन किया गया है।

बोध प्रश्न

1. यात्रा के मुख्यत: कितने प्रकार है।

   क. १ ख. २ ग. ३ घ. ४

2. निम्न में त्रिविध उत्पात में क्या नहीं होता।

   क. दिव्य ख. भौम ग. अन्तरिक्ष घ. आकाश

3. षष्ठी एवं अष्टमी तिथि में यात्रा करने से क्या होता है।

   क. दरिद्रता एवं अनिष्ट ख. सुख ग. धनलाभ घ. कोई नहीं

4. सर्वदिग्गमन हेतु शुभ नक्षत्र कौन सा है।

क. अनुराधा ख. पुष्य ग. अश्विनी घ. सभी

5. सोमवार को किस दिशा की यात्रा नहीं करनी चाहिए।

क. पूर्व ख. पश्चिम ग. उत्तर घ. दक्षिण

6. निम्न में उर्ध्व मुख नक्षत्र कौन है।

क. अश्विनी ख. भरणी ग. कृत्तिका घ. रोहिणी

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि यात्रा प्रत्येक प्राणी के जीवन से जुड़ा अभिन्न अंग है। यात्रा मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है – एक सामान्योद्देश्य तथा दूसरा विशेषोद्देश्य। अपने-अपने जीवन काल में प्राणी मुख्यत: इन्हीं दो उद्देश्यों के साथ अवश्य ही यात्रा करता है। यद्यपि देखा जाय तो यात्रा के भी विभिन्न रूप होते हैं। कई आचार्य त्रिविध यात्रा की भी बात करते हैं।

सामान्यतया यात्रा का अभिप्राय किसी विशेष उद्देश्य से एक स्थान से दूसरे स्थान में प्रस्थान करने अर्थात् जाने से है। जन सामान्य के व्यवहार हेतु विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए की जाने वाली यात्रा 'सामान्य यात्रा' होती है। किसी राज्य पर विजय प्राप्ति के उद्देश्य से अथवा किसी शत्रु के दमन के उद्देश्य से की जाने वाली यात्रा विजय-यात्रा होती है। यह विशेष रूप से राजाओं तथा राज्ञपुरूष के लिए होती है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

विशेषोद्देश्य – विशेष उद्देश्य

यात्रा - किसी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना

आगमन – आना

प्रस्थान – जाना

दमन – नाश

राज्ञपुरूष – राजा

विजय – जीत

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख

2. घ
3. क
4. घ
5. क
6. घ

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि – मूल लेखक – रामदैवज्ञ, टीका – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय
2. नारद संहिता – टीका - पं. रामजन्म मिश्र
3. वशिष्ठ संहिता – महात्मा वशिष्ठ
4. अवकहड़ाचक्रम् – अवधबिहारी त्रिपाठी

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. पूर्वकालामृत
2. सुगम ज्योतिष
3. ज्योतिष रहस्य
4. योग यात्रा
5. प्रश्न मार्ग

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. यात्रा से क्या अभिप्राय है। स्पष्ट कीजिये।
2. यात्रा विधान का लेखन कीजिये।
3. चन्द्र विचार एवं दिशा शूल विधान लिखिये।
4. यात्रा के विविध पक्षों का उल्लेख कीजिये।

इकाई - 2 तिथि नक्षत्र शुद्धि

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 तिथि एवं नक्षत्र परिचय
2.4 यात्रा में तिथि एवं नक्षत्र शुद्धि विचार
2.5 सारांश
2.6 पारिभाषिक शब्दावली
2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक पाठ्यसामग्री
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -205 के द्वितीय खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – तिथि नक्षत्र शुद्धि। इससे पूर्व आपने सिद्धान्त ज्योतिष से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'ग्रहण' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

यात्रा में तिथि एवं नक्षत्र शुद्धि का महत्वपूर्ण योगदान है। मानव अपने जीवन में यदि यात्रा में इनका ध्यान रखते हुए यदि यात्रा करता है, तो उसकी यात्रा प्रशस्त होगी एवं कार्य भी सिद्ध होंगें।

आइए इस इकाई में हम लोग 'तिथि, नक्षत्र शुद्धि' के बारे में जानने का प्रयास करते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- तिथि को परिभाषित कर सकेंगे।
- यात्रा में तिथि एवं नक्षत्र शुद्धि के अवयवों को समझा सकेंगे।
- यात्रा में तिथि एवं नक्षत्र के महत्व को समझ लेंगे।
- ज्योतिष में कथित यात्रा मुहूर्त्त का प्रतिपादन कर सकेंगे।

2.3 तिथि एवं नक्षत्र परिचय

प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में यात्रा करता है, इस बात को हम सब जान चुके हैं। अब हमें यह जानना है कि किस तिथि को और किस नक्षत्र में यात्रा करनी चाहिए? यात्रा में कौन सी तिथि एवं कौन सा नक्षत्र शुद्ध है कौन सा अशुद्ध है? यात्रा में तिथि-नक्षत्र की शुद्धाशुद्ध विवेक से पूर्व हमें यह भी जानना चाहिए कि तिथि, नक्षत्र क्या है।

सूर्य और चन्द्रमा का १२ अंश का गत्यन्तर का नाम तिथि है। प्रतिपदा से लेकर अमावस्या वा पूर्णिमा पर्यन्त १५ तिथियाँ होती है। कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि अमावस्या तथा शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि पूर्णिमा कही जाती है। तिथियों की क्रमशः नन्दा (१,११,६) , भद्रा (२,७,१२), जया (३,८,१३) , रिक्ता (४,९,१४) , पूर्णा (५,१०,१५) पाँच संज्ञायें बतलायी गयी हैं। सभी तिथियों के स्वामी अलग-अलग कहे गये हैं। - तिथिशा वह्नि (अग्नि) कौ (ब्रह्मा) गौरी गणेशोऽहि (सर्प) र्गुहो (कार्तिक) रविः।

शिवो दुर्गान्तको (यमराज) विश्वे (विश्वदेव) हरिः (विष्णु) कामः शिवः शशिः॥

राशियों के समूह को नक्षत्र कहते हैं। एक नक्षत्र में चार चरण होते हैं। १ नक्षत्र का मान ३६० ÷ २७ = १३ अंश २० कला के बराबर होता है। अश्विनी से लेकर रेवती पर्यन्त २७ नक्षत्र कहे गये हैं। अभिजित को २८ वाँ नक्षत्र माना गया है, किन्तु उसका मान अतिसूक्ष्म होने के कारण गणना में उसका महत्व

कम दिया गया है। सभी नक्षत्रों के भी अलग-अलग स्वामी कहे गये हैं।

2.4 यात्रा में तिथि- नक्षत्र शुद्धि विचार

आचार्य रामदैवज्ञ जी ने स्वग्रन्थ मुहूर्त्तचिन्तामणि में यात्रा में तिथि-नक्षत्र की शुद्धि का विचार करते हुए कहा है कि -

यात्रा में तिथि-नक्षत्र विचार –

न षष्ठी न च द्वादशी नाऽष्टमी नो सिताद्या तिथि: पूर्णिमाऽमा न रिक्ता।
हयादितयमैत्रेन्दुजीवान्त्यहस्तश्रवोवासवैरेव यात्रा प्रशस्ता ।।

श्लोकार्थ है कि यात्रा में षष्ठी, द्वादशी, अष्टमी, शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, पूर्णिमा, अमावस्या तथा रिक्ता संज्ञक ४,९,१४ तिथियाँ अशुभ कही गयी हैं।

इसी प्रकार अश्विनी, पुनर्वसु,अनुराधा, मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्रों में यात्रा प्रशस्त (शुभ) होती है। अत: यात्रा करने के पूर्व हम सबको चाहिए कि उक्त तिथि एवं नक्षत्रों का अवश्य विचार कर ही यात्रा कार्य करें।

वार शूल – नक्षत्र शूल विचार –

न पूर्वदिशि शक्रभे न विधुसौरिवारे तथा।
न चाजपदभे गुरौयमदिशीनदैत्येज्ययो:।।
न पाशिदिशि धातृभे कुजबुधेऽर्यमर्क्षे तथा
न सौम्यककुभि व्रजेत्स्वजयजीतितार्थी बुध:।।

अर्थात् पूर्व दिशा में ज्येष्ठा नक्षत्र, सोम और शनिवार को, दक्षिण दिशा में पू0भा0 और गुरुवार को, पश्चिम दिशा में रोहिणी नक्षत्र और रवि एवं शुक्रवार को तथा उत्तर दिशा में उ0फा0 नक्षत्र मंगल एवं बुधवार को अपने धन, विजय और जीवन की अभिलाषा रखने वाले प्रज्ञावान व्यक्तियों को यात्रा नहीं करनी चाहिए। अर्थात् उक्त वार एवं नक्षत्रों में यात्रा करना अनिष्टकर होता है।

मासभेद से तिथिफल –

पौषे पक्षत्यादिका द्वादशैवं तिथ्यो माघादौ द्वितीयादिकास्ता:।
कामात्तिस्र: स्युस्तृतीयादिवच्च याने प्रच्यादौ फलं तत्र वक्ष्ये।।
सौख्यं क्लेशो भीतिर्थामश्च शून्यं नै: स्वं नि:स्वता मिश्रता च।
द्रव्यक्लेशो दु:खमिष्टाप्तिरर्थो लाभ: सौख्यं मंगलं वित्तलाभ:।।

लाभो द्रव्याप्तिर्धनं सौख्यमुक्तं भीतिर्लाभो मृत्युरर्थागमश्च।
लाभ: कष्टद्रव्यलाभौ सुखं च कष्टं सौख्यं क्लेशलाभौ सुखं च
सौख्यं लाभ: कार्यसिद्धिश्च कष्टं क्लेश: कष्टात्सिद्धिरर्थो धनं च।
मृत्युर्लाभो द्रव्यलाभश्च शून्यं शून्यं सौख्यं मृत्युरत्यन्तकष्टम् ।।

भाषार्थ - पौष मास में प्रतिपदा से द्वादशी पर्यन्त १२ तिथियों में, माघादि मासों की द्वितीयादि 12 तिथियों में, पूर्वादि चारो दिशाओं में यात्रा का फल इस प्रकार कहा गया है – त्रयोदशी से तीन तिथियों अर्थात् 13,14, 15 तिथियों का परिणाम क्रम से तृतीया, चतुर्थी, पंचमी तिथियों की तरह ही होता है। पौषादि मास क्रम से प्रतिपदादि तिथियों में पूर्वादि चारों दिशाओं में यात्रा का परिणाम इस प्रकार है –

1. सुख 2. कष्ट 3. भय 4. धन लाभ । 1. शून्य 2. निर्धनता 3. दारिद्रय 4. मिश्रित 1. धनाभाव 2. दुख 3:.अभीष्ट लाभ 4. धन लाभ । 1. लाभ 2. सुख 3. मंगल 4. धनलाभ। 1. लाभ 2. धन लाभ 3. धन 4. सुख । 1. भय 2. लाभ 3. मृत्यु 4. धनलाभ । 1. लाभ 2. कष्ट 3. धनलाभ 4. सुख। 1. कष्ट 2. सुख 3. कष्ट 4. लाभ । 1. सुख 2. लाभ 3. कार्यसिद्धि 4. कष्ट। 1. क्लेश 2. कष्ट से कार्य सिद्धि 3. धनलाभ 4. धन। 1. मृत्यु 2. लाभ 3. धनलाभ 4. शून्य। 1. शून्य 2. सुख 3. मृत्यु 4. अत्यन्त कष्ट ।

प्रश्नमार्ग ग्रन्थ में कथित यात्रा सम्बन्धित शुद्धाशुद्ध नक्षत्र विचार –

दिक्शूलानि विपत्प्रदानि बलभित् भाद्रा च तारा भगा।
पुष्यस्तीक्ष्णकरोऽच्युतोश्वयुगविप्रोक्तो विदिक्षु क्रमात्।।
सर्वास्वश्विव रवीन्दुमित्रमुरजिद्वस्वन्त्यपुष्याच्छुभात्।
जीवो वक्ति परं वराहमिहिर: पुष्याऽर्कमित्राश्विन:।।

अर्थात् पूर्वादि दिशाओं में विदिशाओं (चारों कोणों में) सहित क्रम से ज्येष्ठा, पू0भा0, रोहिणी, पू0फा0, पुष्य, हस्त तथा अश्विनी नक्षत्रों में शूल होता है। यात्रा में यह **नक्षत्रशूल** विपत्तिप्रद होता है।

वृहस्पति के मत से रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा तथा रेवती ये सभी दिशाओं एवं कोणों की यात्रा के लिए प्रशस्त हैं, अत: इसे सभी दिशाओं में यात्रा हेतु उत्तम कहा गया है। ये **सर्वदिग्गमन नक्षत्र** कहे जाते है।

वराह के मत से अश्विनी, पुष्य, हस्त तथा अनुराधा ये सभी दिशाओं की यात्रा के लिए शुभ होता है। ज्येष्ठा में पूर्व दिशा की, पू0भा0 में अग्निकोण की, रोहिणी में दक्षिण की यात्रा नहीं करनी चाहिए। यह अशुभ प्रद है।

स्पष्टार्थ चक्र -

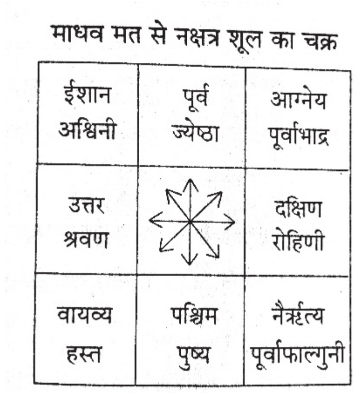

सर्वदिक्षु शुभं मूलं चित्रां सर्वत्र वर्जयेत्।
प्रतिपच्चस्यते कैश्चिदमानिन्नदन्ति केचन्।

मूल नक्षत्र में सभी दिशाओं की यात्रा प्रशस्त है तथा चित्रा नक्षत्र में भी सभी दिशाओं की यात्रा वर्जित है। कुछ विद्वानों ने प्रतिपदा को शुभ माना है परन्तु कईयों ने इसे यात्रा के लिए अशुभ कहा है।

प्रश्न मार्ग ग्रन्थ में यात्रा जनित तिथि विचार –

नन्दा भद्रा जया पूर्णा दिक्षु प्राच्यादिषु क्रमात्।
प्रशस्तास्तिथयो याने नैव राशिरधोमुख:।।

नन्दा, भद्रा, जया तथा पूर्णा ये तिथियाँ क्रमश: पूर्वादि दिशाओं की यात्रा हेतु शुभ हैं। अधोमुख राशिलग्न यात्रा में शुभ नहीं होता है।

तात्पर्य यह है कि १,६,११ नन्दा तिथियाँ पूर्व दिशा हेतु शुभ हैं। २,७,१२ ये भद्रा संज्ञक तिथियाँ दक्षिण दिशा हेतु शुभ हैं। ३,८,१३ जया संज्ञक तिथियाँ पश्चिम दिशा हेतु शुभ है। इसी प्रकार ५,१०,१५ पूर्णा तिथियाँ उत्तर की यात्रा हेतु शुभ है।

स्पष्टार्थ चक्र –

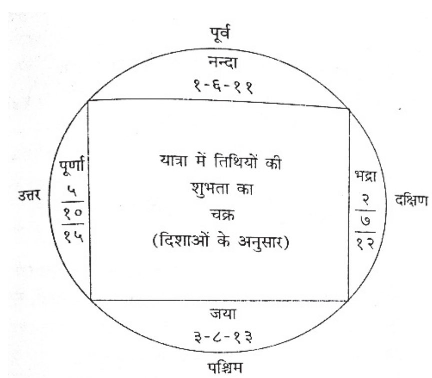

यात्रा में योगनी वास का फल

गरुडपुराण में विविध मुहूर्त्तों का कथन करते हुए यात्रा के लिए योगिनी विचार पर बल दिया गया है। वहाँ कहा गया है कि प्रतिपदा तथा नवमी तिथि में ब्राहमणी नाम की योगिनी पूर्व दिशा में अवस्थित रहती है। द्वितीया तथा दशमी तिथि में माहेश्वरी नामक योगिनी उत्तर दिशा में रहती है। पंचमी तथा त्रयोदशी तिथि में वाराही नामक योगिनी दक्षिण दिशा में स्थित रहती है। षष्ठी और चतुर्दशी तिथि में इन्द्राणी नाम की योगिनी का वास पश्चिम में होता है। सप्तमी और पौर्णमासी तिथि में चामुण्डा नाम से अभिहित योगिनी का निवास वायुगोचर अर्थात् वायव्यकोण में रहता है। अष्टमी तथा अमावस्या में महालक्ष्मी नाम की योगिनी ईशानकोण में रहती है। एकादशी एवं तृतीया तिथि में वैष्णवी नाम की योगिनी अग्निकोण में वास करती है। द्वादशी और चतुर्थी तिथि में कौमारी नाम वाली योगिनी का निवास नैर्ऋत्यकोण में रहता है। योगिनी के सम्मुख रहने पर यात्रा नहीं करनी चाहिए।

ब्रह्माणी संस्थिता पूर्वो प्रतिपन्नवमीतिथौ।
माहेश्वरी चोत्तरे च द्वितीयादशमीतिथौ।।
पंचमा च त्रयोदश्यां वाराही दक्षिणे स्थिता।
षष्ठ्यां चैव चतुर्दश्यामिन्द्राणी पश्चिमे स्थिता।।
सप्तम्यां पौर्णमास्यां च चामुण्डा वायुगोचरे।।
अष्टम्यमावास्ययोगे महालक्ष्मीशूगोचरे।
एकादशां तृतीयायामग्निकोणे तु वैष्णवी।।
द्वादशां च चतुर्थ्यां तु कौमारी नैर्ऋते तथा।
योगिनीसम्मुखनैव गमनादि न कारयेत्।।

वहाँ यात्रा के लिए प्रशस्त नक्षत्रों का कथन करते हुए कहा गया है कि अश्विनी, अनुराधा, रेवती, मृगशिरा, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त और ज्येष्ठा नक्षत्र प्रस्थान (यात्रा) के लिए प्रशस्त हैं।

यात्रा में घात तिथय - :

गोस्त्रीझषे घाततिथिस्तु पूर्णा भद्रा नृयुक्कर्कटकेऽथ नन्दा।
कौर्प्याजयोर्नक्रधटे च रिक्ता जया धनु: न प्रशस्त: कुम्भक:।।

भाषार्थ – वृष , कन्या और मीन राशि वालों के लिये पूर्णा (५,१०,१५) मिथुन, कर्क राशि वालों के लिए भद्रा २,७,१२ , वृश्चिक और मेष राशि के लिए नन्दा१,६,११ , मकर और तुला के लिये, रिक्ता४,९,१४ , धनु, कुम्भ और सिंह राशि वालों के लिये जया ३,८,१३ संज्ञक तिथियाँ घातप्रद होती है। अत: इसका ध्यान रखना चाहिए।

पौराणिक ज्योतिष

अश्विनीमैत्ररेवत्यों मृगमूलपुनर्वसु।
पुष्या हस्ता तथा ज्येष्ठा प्रस्थाने श्रेष्ठमुच्यते।।

जिस प्रकार से यात्रा करने पर राजा तथा अन्यजनों के लिए अभीष्ट सिद्धि होती है, उस विधि का वर्णन करते हुए नारदपुराण में कहा गया है कि जिनके जन्म समय का ठीक-ठीक ज्ञान है, उन राजाओं तथा अन्य जनों को उस विधि से यात्रा करने पर उत्तम फल की प्राप्ति होती है। जिन मनुष्यों का जन्म समय अज्ञात है, उनको तो घुणाक्षर न्याय से ही कभी फल की प्राप्ति हो जाती है, तथापि उनको भी प्रश्नलग्न से तथा निमित्त और शकुन आदि द्वारा शुभाशुभ देखकर यात्रा करने से अभीष्ट फल का लाभ होता है।

अज्ञातजन्मनां नृणां फलाप्तिर्घुवर्णवत्।
प्रश्नोदयनिमित्ताद्यैस्तेषामणि फलोदयः।।

यात्रा में निषिद्ध तिथि एवं विहित नक्षत्र

नारदपुराण में कहा गया है कि षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा और शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा-इन तिथियों में यात्रा करने से दरिद्रता तथा अनिष्ट की प्राप्ति होती है।

षष्ट्यष्टमीद्वादशीषु रिक्तामापूर्णिमासु च।
यात्रा शुक्लप्रतिपदि निर्धनाय क्षयाय च।।

यात्रा के लिए विहित नक्षत्र का उल्लेख करते हुए वहाँ कहा गया है कि अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, रेवती, अश्विनी, श्रवण, पुष्प और धनिष्ठा-इन नक्षत्रों में यदि अपने जन्म नक्षत्र से सातवीं पाँचवीं तारा न हो, तो यात्रा अभीष्ट फल को देने वाली होती है।

मैत्रादितीन्द्वर्कान्त्याश्विहरितिष्यवसूडुषु।
असप्तपंचत्र्याद्येषु यात्राभीष्टफलप्रदा।।

वहाँ सर्वदिग्गमन नक्षत्रों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि अनुराधा, हस्त, पुष्प और अश्विनी-ये चार नक्षत्र सब दिशाओं की यात्रा में प्रशस्त हैं।

सर्वद्वाराणि मित्रार्केज्याश्वभानि च।

दिग्द्वार नक्षत्रों का उल्लेख करते हुए नारदपुराण में कहा गया है कि कृत्तिका से आरम्भ करके सात-सात नक्षत्र समूह पूर्वादि दिशाओं में रहते हैं तथा अग्निकोण से वायुकोण तक परिघदण्ड रहता

है। अतः इस प्रकार यात्रा करनी चाहिए, जिससे परिघदण्ड का लग्न न हो।

क्रमाद्दिग्द्वारभानि स्युः सप्तसप्ताग्निधिष्ण्यतः।
पुग्धिं लग्नयेद् दण्डं नाग्निश्वसनर्दिग्गमम्1।।

अग्नि आदि कोणों के लिए विहित नक्षत्रों का विचार करते हुए नारदपुराण का वचन है कि पूर्व के नक्षत्रों में अग्निकोण की यात्रा करे। इसी प्रकार दक्षिण के नक्षत्रों में नैऋत्य कोण, पश्चिम के नक्षत्रों में वायव्यकोण तथा उत्तर के नक्षत्र में ईशान कोण की यात्रा की जा सकती है।

आग्नेयं पूर्वदिग्धिष्ण्यैर्विदिशश्चैवमेव हि।
दिग्राशयस्तु क्रमशो मेषाद्याश्च पुनः पुनः।।

दिशाओं की राशियों का कथन करते हुए कहा गया है कि पूर्व आदि चार दिशाओं में मेष आदि बारह राशियाँ पुनः पुनः तीन आवृत्ति से आती हैं।

निम्न चक्र से समझा जा सकता है-

पूर्व	**दक्षिण**	**पश्चिम**	**उत्तर**
मेष, सिंह, धनु	वृष, कन्या, मकर	मिथुन, तुला, कुम्भ	कर्क, वृश्चिक, मीन

नन्दादि तिथियों में किये जाने वाले कार्य –

नन्दासु चित्रोत्सववास्तु तन्त्र क्षेत्रादि कुर्वीत तथैव नृत्यम्।
विवाह भूषाशकटाध्वयाने भद्रासु चैतान्यपि पौष्टिकानि।।

अर्थ– नन्दा तिथि में चित्रकर्म, उत्सव, वास्तु, तन्त्र, खेती, नाच, तमाशा, विवाह तथा गाड़ी आदि वाहनों पर चढ़ना शुभ है। भद्रा तिथि में उपरोक्त कार्य शुभ है तथा पौष्टिक कार्य भी कार्य करना चाहिये।

जयासु संग्राम बलोपयोगिकार्याणि सिद्धयन्तिविनिर्मितानि ।
रिक्तासु तद्वद्बन्धनादि विषाग्निशास्त्राणि च यान्ति सिद्धिम्।।

जया तिथि में संग्राम के लिए उपयोगी कार्य सब सिद्ध होते है, तथा रिक्ता में वध, बन्धन आदि, विष, अग्नि सम्बन्धी और शस्त्र निर्माण करना शुभ है।

पूर्णासु मांगल्य विवाहयात्रा सपौष्टिकं शान्तिकर्मकार्यम्।
सदैव दर्शे पितृकर्म मुक्त्वा नान्यद्विदध्याच्छुभमंगलानि।।

पूर्णा तिथि में मांगलिक कार्य विवाह यात्रा तथा पौष्टिक सहित शान्ति कर्म करना चाहिए परं च अमावस्या में केवल पितृकर्म को छोड़कर और कोई कार्य नहीं करना चाहिये।

सूर्यादि वारों में निषिद्ध तिथि एवं नक्षत्र–विचार

नन्दा भद्रा नन्दिकाख्या जया च रिक्ता भद्रा चैव पूर्णा मृतार्कात् ।
याम्यं त्वाष्टं वैश्वदेवं धनिष्ठार्यमणं ज्येष्ठान्त्यं रवेर्दग्धभं स्यात् ।।

अर्थात् रवि आदि वारों में क्रम से नन्दा, भद्रा,जया, रिक्ता, भद्रा एवं पूर्णा संज्ञक तिथियाँ हों तो मृत्यु संज्ञक (अशुभ) होती है। यथा रवि को नन्दा, सोम को भद्रा, मंगल को नन्दा, बुध को जया, गुरु को रिक्ता, शुक्र को भद्रा तथा शनि को पूर्णा संज्ञक तिथियाँ अशुभ होती है।

इसी प्रकार रविवार को भरणी, सोमवार को चित्रा, मंगलवार को उत्तराषाढ़ा, बुधवार को धनिष्ठा, गुरूवार को उत्तराफाल्गुनी, शुक्रवार को ज्येष्ठा, शनिवार को रेवती ये दग्ध योग होते है। उक्त घातक तिथि तथा ये दग्ध नरक्षत्र शुभ कार्यों में वर्जनीय है। अर्थात् इसे त्याग देना चाहिये। विशेष करके यात्रा में अवश्य परित्याग करना चाहिये।

क्रकच योग -

षष्ठायादितिथयो मन्दाद्विलोमं प्रतिपद् बुधे।
सप्म्यर्केऽधमा : षष्ठ्याद्यामाश्चरदधावने ।।

शनिवार से विपरीत तथा षष्ठी से सीधे क्रम से गणना करने में तथा प्रतिपदा को बुध सप्तमी को रवि अधम योग होता है। जो कि शुभ कार्य में वर्जनीय है। इस योग को भी क्रकच योग कहते है, एवं पंचांगों में इसे वार दग्ध लिखते है। शुक्रवार को सप्तमी, वृहस्पतिवार को अष्टमी, बुधवार को नवमी, मंगलवार को दशमी, सोमवार को एकादशी रविवार को सप्तमी ये अलग – अलग ही कही गयी है और षष्ठी, प्रतिपदा अमावस्या के दिन काष्ठ विशेष नीम आदि से दंतधावन नहीं करना चाहिये किसी आचार्य के मतानुसार नवमी तथा रविवार को भी यह वर्जित है।

तिथियों में कृत्य कर्म

प्रतिपदा -प्रतिपदा तिथि में विवाह यात्रा, व्रतबन्ध, प्रतिष्ठा, सीमन्त, चूड़ाकरण, वास्तु कर्म, गृहप्रवेशादि किया जाता है।

द्वितीया -अंग या चिन्हों के कृत्य, व्रतबन्ध, प्रतिष्ठा, विवाह यात्रा भूषण आदि कर्म शुभ होते है।

तृतीया, शिल्प सीमन्त, चूड़ाकरण, अन्नप्राशन, गृहप्रवेश भी शुभ होता है।

चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथि- रिक्ता तिथियों में अग्निकार्य, मारणकर्म, बन्धनकृत्य, शस्त्र, विष, अग्निदाह, घात आदि विषयककृत्य शुभ और मंगल कृत्य अशुभ होते है।

पंचमी– पंचमी तिथि में समस्त शुभकृत्य सिद्धि देते है, परन्तु ऋण नहीं देना चाहिये, देने से नष्ट हो जाता है ।

षष्ठी तिथि में यात्रा, पितृकर्म और दन्त काष्ठों के बिना सभी मंगल पौष्टिक कर्म करने तथा संग्रामोपयोगी , शिल्प वास्तु भूषण शस्त्र भी शुभ है ।

सप्तमी तिथि में, पंचमी एवं षष्ठी में जो कार्य कहे गये है वही करना चाहिये।

एकादशी तिथि में, देवता का उत्सव, वास्तु कर्म आदि कर्म तथा शिल्पकार्य शुभ होते है ।

द्वादशी तिथि में रथ सम्बन्धित कार्य, शकटादि कार्य, शिल्प कार्य, वस्त्राभूषण आदि करने चाहिये।

त्रयोदशी - त्रयोदशी तिथि में द्वितीया , तृतीया , पंचमी , सप्तमी तिथियों के सदृश कार्य करनी चाहिये ।

पूर्णिमा तथा अमावस्या तिथि में संग्रामोपयोगी , वास्तु कर्म , विवाह , शिल्प , समस्त भूषणादि सिद्ध होते है। अमावस्या तिथि में केवल पितृ कर्म किये जाते है।

कृत्य में विशेष निषिद्ध तिथि -

षष्ठ्यष्टमी भूतविधुक्षयेषु नो सेवेत ना तैलपले क्षुरं रतम्।
नाभ्यञ्जनं विश्वदशद्विके तिथौ धात्रीफलैस्ऽनानममाद्रिगोष्वसत्।।

षष्ठी एवं अष्टमी तिथि को तैल कार्य, अष्टमी को मांस भक्षण, चतुर्दशी को क्षौर अमावस्या के दिन स्त्रीसंभोग मानव को नहीं करना चाहिये। चतुर्दशी , कृष्णाष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा , सूर्य की संक्रान्ति का दिन ये पर्व के दिन कहे गये है। परन्तु ये तिथियॉ उक्त कार्यों में तत्काल मानी जाती है। उदयव्यापिनि नहीं तथा त्रयोदशी, दशमी,द्वितीया के दिन तैलाभ्यंग उबटन नहीं लगाना चाहिये , परन्तु यह नियम केवल मलापकर्षण स्नान)शरीर को रगड़ कर स्नान करना(ब्राह्मण रहित तीन वर्णों के लिये है, और अमावस्या, सप्तमी, नवमी को ऑवले के चूर्ण से स्नान नहीं करना चाहिये, स्नान करने से धन एवं संतति क्षीण होती है ,अन्य दिनों में तिलबल्क सहित ऑवलों से स्नान पुण्य फल प्रदान करता है । यह वैद्य शास्त्र से भी स्नान की औषधी वर्ण कान्तिकारक है ।

षष्ठी, अष्टमी, चतुर्दशी और अमावस्या को मनुष्य क्रम से तेल, मांस, क्षैर कर्म और मैथुन का सेवन नहीं करना चाहिए।

'षष्ठी शनैश्चरे तैलं महाष्टम्यां पलानि च। तीर्थं क्षौरं चतुर्दश्यां दीपमाल्यां च मैथुनम् ।।''

दग्ध, विष और हुताशन संज्ञक तिथियॉ -

रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मंगलवार को पंचमी, बुधवार को तृतीया, वृहस्पतिवार को षष्ठी, शुक्रवार को अष्टमी और शनिवार को नवमी दग्धा संज्ञक है । रविवार को चतुर्थ, सोमवार

को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी, बुधवार को द्वितीया , वृहस्पतिवार को अष्टमी, शुक्रवार को नवमी और शनिवार को सप्तमी ये विष संज्ञक है एवं रविवार को द्वादशी, सोमवार को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी,बुधवार को अष्टमी, वृहस्पतिवार को नवमी, शुक्रवार को दशमी और शनिवार को एकादशी ये हुताशन संज्ञक है। इन योगों में नामानुसार इन तिथियों में कार्य करने पर विघ्न बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

दग्ध , विष और हुताशन संज्ञा बोधक चक्र –

वार	रविवार	सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरूवार	शुक्रवार	शनिवार
दग्ध संज्ञक	12	11	5	3	6	8	9
विष संज्ञक	4	6	7	2	8	9	7
हुताशन	12	12	6	7	9	10	11
यमघण्ट	मघा	विशाखा	आर्द्रा	मूल	कृत्तिका	रोहिणी	हस्त

यात्रा में त्याज्य योग –

सूर्येशपंचाग्नि रसाष्टनन्दा वेदाङ्ग सप्ताश्विगजांकशैला:।
सूर्यांगसप्तोरगगोदिगीशा दग्धा विषाख्याश्च हुताशनाश्च।।
सूर्यादिवारे तिथयो भवन्ति मघा विशाखा शिवमूलवह्नि
ब्राह्मं करोऽर्काद्यमघण्टकाश्च शक्रे विवर्ज्या गमनेत्ववश्यम् ।।

अर्थ– रविवार को मघा, सोमवार को विशाखा , मंगलवार को आर्द्रा , बुधवार को मूल , वृहस्पतिवार को कृत्तिका , शुक्रवार को रोहिणी , शनिवार को हस्त आ जाये तो यमघण्ट नाम का योग होता है। ये उपरोक्त चारों योग समस्त शुभ कार्य में वर्जित है। विशेष करके यात्रा में तो अवश्य ही त्याज्य करना चाहिये।

चैत्रादि मासों की शून्य तिथियॉ –

भाद्रे चन्द्रदृशौ नभस्यनलनेत्रे माधवे द्वादशी
पौषे वेदशरा इषे दशशिवा मार्गेऽद्रिनागा मघौ।
गोष्टौ चोभयपक्षगाश्च तिथय: शून्या बुधै कीर्तिता:।
उर्जाषाढतपस्य शुक्र तपसा कृष्णे शराङ्गाब्धय :
शक्रा: पञ्च सिते शक्राद्रयाग्निविश्वरसा क्रमात्।।

अर्थ– भाद्रपद मास के दोनों पक्षों की प्रतिपदा और द्वितीय श्रावण मास के दोनों पक्षों की द्वितीया और तृतीया, वैशाख मास के दोनों पक्षों की द्वादशी, पौष मास के दोनों पक्षों की चतुर्थी और पंचमी,

आश्विन मास के दोनों पक्षों की दशमी और एकादशी, मार्गशीर्ष मास के दोनों पक्षों की सप्तमी, अष्टमी, और चैत्र मास के दोनों पक्षों की नवमी, अष्टमी को पण्डितों ने मास शून्य तिथि कहा है। कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की पंचमी, आषाढ़ कृष्णपक्ष की षष्ठी, फाल्गुन कृष्ण पक्ष की चतुर्थी, ज्येष्ठ कृष्णपक्ष की चतुर्दशी और माघ कृष्णपक्ष की पंचमी शून्य तिथि कही गयी है एवं कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी, आषाढ़ शुक्ल सप्तमी, फाल्गुन शुक्ल तृतीया, ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी और माघ शुक्ल षष्ठी ये तिथियॉ मास शून्य तिथि होती है।

आइये अभी तक तो हम तिथि और वार के अनुसार शुभाशुभ फल का विचार किये, अब तिथि और नक्षत्र सम्बन्धि दोष का विचार करते है –

तथा निन्द्यं शुभे सार्पं द्वादश्यां वैश्वमादिमे।
अनुराधा द्वितीयायां पंचम्यां पित्र्यभं तथा।।
त्र्युतराश्च तृतीयामेकादश्यां च रोहिणी
स्वातीचित्रे त्रयोदश्यां सप्तम्यां हस्तराक्षसे।
नवम्यां कृतिकाष्टाम्यां पुभा षष्ठयां च रोहिणी।।

जिस प्रकार मास शून्य तिथियॉ शुभ कर्मो में निन्दित कही गयी है। उसी तरह द्वादशी तिथि में आश्लेषा, प्रतिपदा में उत्तराषाढा, द्वितीया में अनुराधा, पंचमी में मघा, तृतीया में तीनों उत्तरा, एकादशी में रोहिणी, त्रयोदशी में स्वाती और चित्रा सप्तमी में हस्त और मूल, नवमी में कृत्तिका, अष्टमी में पूर्वाभाद्रपदा और षष्ठी में रोहिणी पड़े तो निन्द्य होता है। इन तिथि एवं नक्षत्र के योग में शुभ कार्य करना निषिद्ध माना गया है।

इसका प्रमाण तिथिभोग घटी के पंचदशांश तुल्य होता है।

तिथि विचार में विशेष –

अमृत योग –

रवौ सोमे तथा पूर्णा कुजे भद्रा गुरौ जया।
तथा बुधे शनौ नन्दा शुक्रे रिक्तामृताऽह्वया।।

रविवार और सोमवार को पूर्णा, मंगलवार को भद्रा, गुरूवार को जया, बुध तथा शनि को नन्दा एवं शुक्र को रिक्ता संज्ञक तिथियाँ अमृत संज्ञक कही गयी है। ये सभी यात्रा के लिये मंगलदायक होता है।

मृत्यु योग –

नन्दा रवौ कुजे चैव भद्रा भार्गवसोमयो:।
बुधे जया गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णा च मृत्युदा।।

रवि और मंगलवार को नन्दा शुक्र और सोमवार को भद्रा बुधवार को जया वृहस्पतिवार को रिक्ता शनिवार को पूर्णा ये तिथियॉ इन वारों में आये तो, मृत्युयोग होता है। इसमें यात्रा नहीं करनी चाहिये।

वार शूल – नक्षत्रशूलयोर्विचार - :

न पूर्वदिशि शक्रभे न विधुसौरिवारे तथा
न चाजपदभे गुरौ यमदिशीनदैत्येज्ययो:।
न पाशिदिशि धातृभे कुजबुधेऽर्मर्क्षे तथा
न सौम्यककुभि व्रजेत्स्वजयजीवितार्थी बुध:।

अर्थ – पूर्वदिशा में ज्येष्ठा नक्षत्र ,सोम और शनिवार को , दक्षिण दिशा में पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र और गुरूवार को , पश्चिम दिशा में रोहिणी नक्षत्र और रवि एवं शुक्रवार को तथा उत्तर दिशा में उत्तराफाल्गुनि नक्षत्र मंगलवार एवं बुधवार को अपने धन, विजय और और जीवन की अभिलाषा रखने वाले बुद्धिमान व्यक्ति को यात्रा नहीं करनी चाहिये । अर्थात उक्त दिन एवं नक्षत्रों में तत्तद् दिशाओं में यात्रा करना अनिष्टकर होता है ।

घात चन्द्र और उसमें त्याज्य नक्षत्र पाद –

भूपञ्चाङ्कद्वयंगदिग्वह्निसप्तवेदाष्टेशार्काश्च घाताख्यचन्द्र:।
मेषादीनां राजसेवाविवादे वर्ज्यो युद्धाद्येच नान्यत्र वर्ज्य:।
आग्नेयत्वाष्ट्रजलपपित्र्यवासवरौद्रभे
मूलब्राह्माजपादर्क्षे पित्र्यमूलाजभे क्रमात्।
रूपद्वयग्न्यग्निभूरामद्वयब्ध्यग्नयब्धियुगाग्नय:।
घातचन्द्रे धिष्णयपादा मेषाद्वर्ज्या मनीषिभि:।

अर्थ- मेषादि राशियों के लिए क्रम से प्रथम, पंचम , नवम, द्वितीय, षष्ठ , दशम, तृतीय, सप्तम, चतुर्थ, अष्टम, एकादश एवं द्वादश चन्द्रमा घातक होता है। यथा मेष राशि वालों के लिये मेषस्थ, वृष राशि वालों के लिये पंचम कन्या राशिगत, मिथुन राशिवालों के लिये द्वितीय कर्कराशिगत चन्द्रमा घातक होता है। इसी प्रकार सभी राशियों में समझना चाहिये।

मेषादि राशियों में क्रम से कृत्तिका प्रथम पाद,चित्रा का द्वितीय, शतभिष का य 3, मघा का तृतीय, धनिष्ठा का प्रथम, आर्द्रा का तृतीय, मूल का द्वितीय, रोहिणी का चतुर्थ, पूर्वाभाद्रपदा का तृतीय, मघा का चतुर्थ , मूल का चतुर्थ, तथा पूर्वाभाद्रपदा का तृतीय चरण विद्वानों ने त्याज्य बतलाया है।

यात्रा में घात नक्षत्र –

मघाकरस्वातिमैत्रमूलश्रुत्यम्बुपान्त्यभम्।

याम्यब्राह्मेशसार्पञ्च मेषादेर्घातभं न सत्।।

अर्थ है कि मेषादि राशियों में क्रम से मघा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, मूल, श्रवण, शतभिष, रेवती, भरणी, रोहिणी, आर्द्रा, आश्लेषा, घात नक्षत्र होते है। अर्थात् मेष राशिवालों के लिए मघा, वृष के लिए हस्त, मिथुन के लिये स्वाती, कर्क के लिए शतभिष, वृश्चिक के लिये रेवती, धनु के लिये भरणी, मकर के लिये रोहिणी , कुम्भ के लिये आर्द्रा तथा मीन के लिये आश्लेषा नक्षत्र घात संज्ञक होते है। इस प्रकार के योगों में यात्रा नहीं करनी चाहिये।

इसके परिहार अथवा निवारणार्थ आचार्य ने निम्न व्यवस्था का प्रतिपादन किया है।

यात्राकालिकी कर्तव्यताम्-

अग्नि हुत्वा देवतां पूजयित्वा नत्वा विप्रानर्चयित्वा दिगीशम्।
दत्वा दानं ब्राह्मणेभ्यो दिगीशं ध्यात्वा चित्ते भूमिपालोऽधिगच्छेत्।।

अग्नि में हवन करके, देवताओं का पूजन कर , ब्राह्मणों को प्रणाम कर दिग्पालों का पूजन कर, ब्राह्मणों को दान देकर तथा मन में गन्तव्य दिशा के स्वामी का ध्यान कर यात्रा करनी चाहिये।

यात्रा में नक्षत्रदोहदम् -

कुल्माषांस्तिलतण्डुलानपि तथा माषांश्च गव्यं दधि
त्याज्यं दुग्धमथैणमांसमपरं तस्यैव रक्तं तथा।।
तद्वत्पायसमेव चाषपललं मार्गं च शाशं तथा
षाष्टिक्यं च प्रियंग्वपूपमथवा चित्राण्डजान् सत्फलम्।।

अर्थ – अश्विनी आदि नक्षत्रों में क्रम से अश्विनी में कुल्माष)चावल और उड़द के मिश्रण (, भरणी में तिल –चावल, कृत्तिका में उड़द, रोहिणी में गाय का दही, मृगशिरा में गाय का घी, आर्द्रा में दूध, पुनर्वसु में मृगमांस, पुष्य में मृग का रक्त, आश्लेषा में खीर, मघा में नीलकण्ठ पक्षी का मांस, पूर्वाफाल्गुनि में मृगमांस, उत्तराफाल्गुनि में खरगोश का मांस, हस्त में षष्टिकान्न, चित्रा में प्रियंगु, स्वाती में मालपूआ, विशाखा में विभिन्न वर्ण के पक्षी, अनुराधा में सुन्दर फलों का भक्षण, दर्शन अथवा स्पर्श कर यात्रा करनी चाहिये।

ज्येष्ठा में कच्छप का मांस, मूल में सारिका पक्षी का मांस ,पूर्वाषाढा का नक्षत्र में गोधा का

मांस, उत्तराषाढा में साही का मांस , अभिजित् में हविर्द्रव्य ,श्रवण में खिचड़ी, धनिष्ठा में मूंग, शतभिष में यव का आटा, पूर्वाभाद्रपदा में मछली और अन्न, उत्तराभाद्रपद में कई रंग के मिश्रित अन्न तथा रेवती में दधि और अन्न, इस प्रकारबुद्धिमान पुरूष को भक्ष्याभक्ष्य का विचार कर यात्रा काल में नक्षत्रानुसार वस्तुओं का भक्षण या अवलोकन करना चाहिये।

बोध प्रश्न –

१. चन्द्र और सूर्य के मध्य 12^0 का अन्तर होता है –

क. वार ख. तिथि ग. नक्षत्र घ. योग

२. सप्तमी तिथि के स्वामी कौन है –

क. सर्प ख. गणेश ग. सूर्य घ. शिव

३. निम्न में पूर्णा संज्ञक तिथि कही गयी है –

क. १,११,६ ख. २,७,१२ ग. ९,४,१४ घ. ५,१०,१५

४. यात्रा में अशुभ तिथि कौन है –

क. द्वितीया ख. तृतीया ग. पंचमी घ. षष्ठी

५. वृष राशि वालों के लिए घात संज्ञक तिथि होती है –

क. नन्दा ख. पूर्णा ग. जया घ. भद्रा

६. रवि और मंगलवार को नन्दा तिथि हो तो कौन सा योग होता है।

क. अमृत ख. मृत्यु ग. काल घ. कोई नहीं

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि सूर्य और चन्द्रमा का १२ अंश का गत्यन्तर का नाम तिथि है। प्रतिपदा से लेकर अमावस्या वा पूर्णिमा पर्यन्त १५ तिथियाँ होती है। कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि अमावस्या तथा शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि पूर्णिमा कही जाती है। तिथियों की क्रमश: नन्दा (१,११,६) , भद्रा (२,७,१२), जया (३,८,१३) , रिक्ता (४,९,१४) , पूर्णा (५,१०,१५) पाँच संज्ञायें बतलायी गयी हैं। सभी तिथियों के स्वामी अलग-अलग कहे गये हैं। - तिथिशा वह्नि (अग्नि) कौ (ब्रह्मा) गौरी गणेशोऽहि (सर्प) र्गुहो (कार्तिक) रवि:। शिवो दुर्गान्तको (यमराज) विश्वे (विश्वदेव) हरि: (विष्णु) काम: शिव: शशि:।।

राशियों के समूह को नक्षत्र कहते हैं। एक नक्षत्र में चार चरण होते हैं। १ नक्षत्र का मान ३६० ÷ २७ = १३ अंश २० कला के बराबर होता है। अश्विनी से लेकर रेवती पर्यन्त २७ नक्षत्र कहे गये हैं। अभिजित को २८ वाँ नक्षत्र माना गया है, किन्तु उसका मान अतिसूक्ष्म होने के कारण गणना में उसका महत्व कम दिया गया है। सभी नक्षत्रों के भी अलग-अलग स्वामी कहे गये हैं। यात्रा में षष्ठी, द्वादशी, अष्टमी, शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, पूर्णिमा, अमावस्या तथा रिक्ता संज्ञक ४,९,१४ तिथियाँ अशुभ कही गयी हैं।

इसी प्रकार अश्विनी, पुनर्वसु,अनुराधा, मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्रों में यात्रा प्रशस्त (शुभ) होती है। अत: यात्रा करने के पूर्व हम सबको चाहिए कि उक्त तिथि एवं नक्षत्रों का अवश्य विचार कर ही यात्रा कार्य करें।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

तिथि – सूर्य एवं चन्द्रमा के १२ अंशात्मक गत्यन्तर का नाम तिथि है।

नक्षत्र - न क्षरतीति नक्षत्रम्।

नन्दा – १,११,६ तिथियाँ

भद्रा– २,७,१२ वीं तिथियाँ

जया – ३,८,१३ वीं तिथियाँ

विदिशा – चार कोण को विदिशा के रूप में जानते है।।

रिक्ता – ४,९,१४ वीं तिथियाँ

पूर्णा – ५,१०,१५ वीं तिथि

प्रशस्त – उत्तम

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. ग
3. घ
4. घ
5. ख
6. ख

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि – मूल लेखक – राम दैवज्ञ, टीका - आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय

2. प्रश्नमार्ग – टीका - गुरु प्रसाद गौड़

3. नारद संहिता – टीका – पं. रामजन्म मिश्र

4. पूर्वकालामृत – टीका – आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय

5. गरुड़ पुराण – गीता प्रेस

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. वशिष्ठ संहिता
2. पूर्व कालामृत
3. अवकहड़ाचक्रम्
4. नारद संहिता
5. भृगु संहिता

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. तिथि एवं नक्षत्र का परिचय दीजिये।
2. यात्रा में तिथि शुद्धि का वर्णन कीजिये।
3. यात्रा में प्रशस्त नक्षत्र का उल्लेख करें।
4. यात्राकालिक तिथि एवं नक्षत्रों के शुद्धाशुद्ध का विवेचन कीजिये।
5. सोदाहरण यात्राजनित तिथि –नक्षत्र को स्पष्ट कीजिये।

इकाई - 3 वार एवं लग्न शुद्धि

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 वार एवं लग्न परिचय
3.4 यात्रा में वार एवं लग्न शुद्धि
3.5 सारांश
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक पाठ्यसामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -205 के द्वितीय खण्ड की तीसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – वार एवं लग्न शुद्धि। इससे पूर्व आपने यात्रा में तिथि एवं नक्षत्र शुद्धि से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'वार एवं लग्न शुद्धि' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

मनुष्य अपनी जीवन में यात्रा किसी न किसी वार में अथवा में शुभ लग्न में ही आरम्भ करने का प्रयास करता है। कभी-कभी यात्रा प्रयोजन के साथ की जाती है। अत: इन सबका ध्यान रखते हुए वार एवं लग्न शुद्धि का ज्ञान भी यात्रा के अन्तर्गत किस प्रकार कही गयी है। इसका अध्ययन आप इस इकाई में करने जा रहे है।

आइए इस इकाई में हम लोग 'वार एवं लग्न शुद्धि' के बारे में जानने का प्रयास करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- वार एवं लग्न को परिभाषित कर सकेंगे।
- यात्रा में वार एवं लग्न शुद्धि के अवयवों को समझा सकेंगे।
- वार एवं लग्न शुद्धि की आवश्यकताओं को समझ लेंगे।
- वार एवं लग्न शुद्धि का महत्व प्रतिपादित कर पायेंगे।

3.3 वार एवं लग्न परिचय

यात्राकालिक तिथि एवं नक्षत्र के पश्चात् यात्राजनित वार एवं लग्न का भी ज्ञान होना चाहिए। सर्वप्रथम वार एवं लग्न किसे कहते है? यात्रा में कौन सा वार तथा कौन सा लग्न शुभ अथवा अशुभ है। इसका विवेक भी समझना चाहिए।

यद्यपि सूर्यादि सप्त वारों एवं मेष से लेकर मीन पर्यन्त १२ लग्नों से आप पूर्व में परिचित ही होंगे तथापि यहाँ वार एवं लग्न का संक्षिप्त परिचय आपके ज्ञानार्थ दिया जा रहा है। विश्व को वार का ज्ञान भारतवर्ष ने ही दिया था। ज्योतिष का एक सिद्धान्त '**मन्दाध: क्रमेण स्यु: चतुर्थ दिवसाधिपा:**' के आधार पर सूर्यादि वारों का वारक्रम हमारे प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्धारित किया गया था।

वार ज्ञान -

वारा: सप्त रवि सोमो मंगलश्च बुधस्तथा।
वृहस्पतिश्च शुक्रश्च शनिश्चैव यथाक्रमम्।।

वारों की संख्या ७ होती है। इसे सावन दिन भी कहते है । रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, वृहस्पतिवार, शुक्रवार एवं शनिवार ये वारों के नाम है। इन वारों के पृथक्-पृथक् स्वामी भी कहे गये हैं।

वारों के स्वामी तथा देवता –

सूर्यादित: शिवशिवागुहविष्णुकेन्द्रकाला: क्रमेण पतय: कथिता ग्रहाणाम् ।
वह्नयम्बुभूमिहरिशक्रशचीविरंचिस्तेषां पुनर्मुनिवरैरधिदेवताश्च।।

शिव, गौरी, षडानन, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र और काल ये 7 क्रम से सूर्यादिक वारों के स्वामी तथा अग्नि, जल, भूमि, हरि, इन्द्र, इन्द्राणी और ब्रह्मा ये 7 क्रम से वारों के देवता हैं।

लग्न परिचय –

लगतीति लग्नम्। इस सूत्र वाक्य के आधार पर जो लगता है, उसे लग्न कहते है। अब प्रश्न है कि क्या लगता है। कहाँ लगता है। क्यों लगता है। आदि इत्यादि। तो सूर्योदय के समय उदयक्षितिज वृत्त में क्रान्ति वृत्त पूर्व दिशा में जहाँ स्पर्श करता है उसका नाम लग्न है। एक लग्न की अवधि २ घण्टे की होती है। मेष से मीन पर्यन्त १२ लग्न कहे गये हैं।

अब विभिन्न प्रकार से वार एवं लग्नों में यात्रा का विचार करते हैं।

3.4 यात्रा में वार एवं लग्न शुद्धि विचार

वार शूल –

न पूर्वदिशि शक्रभे न विधुसौरिवारे तथा
न चाजपदभे गुरौ यमदिशीनदैत्येज्ययो:।
न पाशिदिशि धातृभे कुजबुधेऽर्यमर्क्षे तथा
न सौम्यककुभि व्रजेत्स्वजयजीवितार्थी बुध:।।

पूर्व दिशा में ज्येष्ठा नक्षत्र, सोम और शनिवार को, दक्षिण दिशा में पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र और गुरूवार को, पश्चिम दिशा में रोहिणी नक्षत्र और रवि एवं शुक्रवार को, तथा उत्तर दिशा में उत्तराफाल्गुनि नक्षत्र मंगलवार एवं बुधवार को अपने धन, विजय और जीवन की अभिलाषा रखने वाले बुद्धिमान व्यक्ति को यात्रा नहीं करनी चाहिए। अर्थात् उक्त दिन एवं नक्षत्रों में तत्तद् दिशाओं में यात्रा करना अनिष्टकर होता है।

वस्तुत: वार शूल लोक में दिक्शूल नाम से प्रसिद्ध है। यात्रा में सर्वाधिक दिक्शूल विचार किया जाता है।

परिहार –

न वारदोषा: प्रभवन्ति रात्रौ देवेज्य दैत्येज्य दिवाकराणाम्।
दिवा शशाङ्कार्कजभूसुतानां सदैव निन्द्यो बुधवारदोष:।।

अर्थात् गुरूवार, शुक्रवार और रविवार को रात्रि में चन्द्र, शनि और मंगलवार को दिन में दिक्शूल का दोष नहीं होता है। बुधवार दिन और रात्रि दोनों में त्याज्य है।

एवं च –

रविवारे घृतं भुक्त्वा सोमवारे पयस्तथा।
गुडमङ्गारके वारे बुधवारे तिलानपि ।।
गुरूवारे दधि प्राश्य शुक्रवारे यवानपि
माषान् भुक्त्वा शनेर्वारे गच्छन् शूले न दोषभाक्।।

अर्थात् रविवार को घी ग्रहण करने से, सोमवार को दुग्ध से, मंगलवार को गुड़ से, बुधवार को तिल से गुरूवार को दधि से, शुक्रवार को यव (जौ) से तथा शनिवार को काला उडद सेवन से दिक्शूल का परिहार हो जाता है।

ताम्बूलं चन्दनं मृच्च पुष्पं दधि घृतं तिला:।
वारशूलहराण्यर्काद्दानाद्धारणतो ऽदनात्।।

ताम्बूल, चन्दन, मृत्तिका, पुष्प, दधि, धृत और तिल का क्रम से रव्यादि वारों में दान करने, धारण करने तथा भक्षण करने से दिक्शूल दोषकारक नहीं होता।

रसालां पायसं काञ्जीं श्रृतं दुग्धं तथा दधि।
पयोऽशृतं तिलान्नं च भक्षयेद्वारदोहदम्।।

रविवार को शिखरिणी (दही से निर्मित पदार्थ विशेष) सोमवार को खीर, भौमवार को कॉजी सिरका सदृश पदार्थ, बुधवार बुधवार को उष्ण दूध, गुरूवार को दही, शुक्रवार को कच्चा दूध तथा शनिवार को तिलान्न (तिल और चावल) वार दोहद होता है। उक्त वारों में इसका भक्षण कर यात्रा करनी चाहिये।

यात्रा में लग्न शुद्धि विचार –

कुम्भकुम्भांशकौ त्याज्यौ सर्वथा यत्नतो बुधै:।
तत्र प्रयातुर्नृपतेरर्थनाश: पदे पदे।।

यात्रा में कुम्भ लग्न एवं कुम्भ के नवमांश का प्रयासपूर्वक परित्याग करना चाहिये। कुम्भ लग्न या इसके नवमांश में यात्रा करने वाले राजा का पग – पग पर अर्थ नाश होता है।

अथ मीनलग्न उत वा तदंशके चलितस्य वक्रमिह वर्त्म जायते।

जनिलग्नजन्मभपती शुभग्रहौ भवतस्तदा तदुदये शुभो गमः।।

मीन लग्न में या मीन के नवमांश में यात्रा करने वाले का मार्ग वक्र हो जाता है। यदि जन्मलग्नेश और जन्मराशीश दोनों शुभग्रह हों तथा यात्राकालिक लग्न में हो तो यात्रा शुभ होती है।

जन्मराशितनुतोऽष्टमेऽथवा स्वारिभाच्च रिपुभे तनुस्थिते ।

लग्नगास्तदधिपा यदाऽथवा स्युर्गतं हि नृपतेर्मृतिप्रदम् ।।

जन्मराशि से या जन्म लग्न से अष्टम भाव की राशि अथवा शत्रु की राशि से षष्ठ भाव में स्थित लग्न में हों अथवा इनके स्वामी ग्रह यात्राकालिक लग्न में हों तो यात्रा करने वाले राजा के लिए मृत्युप्रद होते हैं।

शुभ लग्न –

लग्ने चन्द्रे वापि वर्गोत्तमस्थे यात्रा प्रोक्ता वांछितार्थैकदात्री।

अम्भोराशौ वा तदंशे प्रशस्तं नौकायनं सर्वसिद्धिप्रदायि ।।

यात्राकालिक लग्न अथवा चन्द्रमा अपने वर्गोत्तम राशियों में स्थित हो तो यात्रा वांछित सिद्धि को देने वाली कही गई है। यदि जल राशि ४,१०,११,१२ में अथवा जल राशि के नवमांश में लग्न और चन्द्रमा हो तो नौका यात्रा सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाली शुभ कही गई है। इसमें कुम्भ – मीन राशियों का तथा इनके नवमांशो का परित्याग करना चाहिए।

राशिः स्वजन्मसमये शुभसंयुतो यो

यः स्वारिभान्धिनगोऽपि च वेशिसंज्ञः।

लग्नोपगः स गमने जयदोऽथ भूप –

योगैर्गमो विजयदो मुनिभिः प्रदिष्टः।।

जो राशि अपने जन्म समय में शुभ ग्रहों से युक्त हो, वही राशि यात्राकालिक लग्न में हो, अथवा शत्रु की राशि या लग्न से अष्टम राशि अथवा जन्म समय में सूर्य जिस राशि पर हों उससे द्वितीय भाव की राशि यात्रा लग्न में हो तो यात्रा शुभ विजय देने वाली होती है। राजयोगों में यात्रा करने से विजय प्राप्त होती है।

दिशाओं के स्वामी –

सूर्यः सितो भूमिसुतोऽथ राहुः शनिः शशी ज्ञश्च वृहस्पतिश्च ।

प्राच्यादितो दिक्षु विदिक्षु चापि दिशामधीशाः क्रमतः प्रदिष्टः ।।

पूर्वादि दिशाओं एवं विदिशाओं के क्रम से सूर्य, शुक्र, भौम, राहु, शनि, चन्द्र, बुध और गुरू स्वामी कहे गये हैं। अर्थात् पूर्व दिशा के स्वामी सूर्य, अग्निकोण के शुक्र, दक्षिण के मंगल, नैऋत्य के राहु, पश्चिम के शनि, वायव्य के चन्द्रमा, उत्तर के बुध तथा ईशान कोण के वृहस्पति स्वामी होते है।

वारों में कृत्य –

रविवार –

राज्याभिषेक, उत्सव, यात्रा, राजसेवा, गाय – बैल का क्रय विक्रय, हवन करना, मन्त्रोपदेश करना, औषध तथा शस्त्र निर्माण करना, सोना, तॉबा, उन, चर्म, काष्ठ कर्म, युद्ध और क्रय - विक्रय इत्यादि कर्म रविवार को करने चाहिये।

सोमवार -

शङ्ख, मूँगा, मोती, चॉदी, भोजन, स्त्रीसंसर्ग, वृक्ष, कृषि, जलादिकर्म, अलंकार, गीत, यज्ञकर्म, दूध – दही, मथना, सींग चढ़ाना, पुष्प, वस्र कार्य सोमवार को शुभ है।

मंगलवार –

भेद, अनृत, चोरी, विष, अग्नि, वध, वन्ध्या, घात, संग्राम, कपट व दम्भादि कर्म, सेना का पड़ाव, खानि, धातु, सुवर्ण, मूॅगा, रत्नादि कर्म मंगल को प्रशस्त है।

बुधवार –

चातुर्य, पुण्य, विद्या, कला, शिल्प, सेवा, लिखना, धातुक्रिया, सोने के जड़ित अलंकार, सन्धि, व्यायाम और विवाद ये कर्म बुधवार को करने चाहिये।

गुरूवार –

धर्म करना, यज्ञ, विद्याभ्यास, मांगलिक कर्म, स्वर्ण कार्य, गृह निर्माण, यात्रा, रथ, अश्व, औषध नूतन वस्र धारण करना गुरूवार को शुभ है।

शुक्रवार -

स्त्री प्रसंग, गायन, शय्या, रत्नादि, वस्र, अलंकार, वाणिज्य, भूमि, गौ, द्रव्य तथा खेती आदि कार्य शुक्रवार को प्रशस्त है।

शनिवार –

लोहा, पत्थर, शीशा, जस्ता, शस्त्र, दास, दुष्टकर्म, चोरी, विष, अर्क निकालना, गृहप्रवेश, हाथी बॉधना, दीक्षा ग्रहण करना और स्थिर कर्म शनिवार को करने चाहिये।

वार शूल नक्षत्र –

ज्येष्ठा नक्षत्र सोमवार तथा शनिवार को पूर्व दिशा में, पूर्वाभाद्रपद और गुरूवार को दक्षिण, शुक्र वार और रोहिणी नक्षत्र को पश्चिम और मंगलवार तथा बुधवार को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उत्तर दिशा को नहीं जाना चाहिए।

यात्रा के लिए आप जिस दिशा में जाना चाहते हैं, उस दिशा से सम्बन्धित लग्न या राशि के होने पर लाभदायक स्थिति रहती है इसे आप एक उदाहरण से समझ सकते हैं, यदि कोई व्यक्ति पूर्व दिशा की यात्रा करना चाहता है तो मेष, सिंह, धनु राशी का लग्न एवं राशि शुभफलदायक रहती है। इसी प्रकार दक्षिण दिशा में यात्रा करने के लिए वृष, कन्या व मकर एवं पश्चिम दिशा में यात्रा करने के लिए मिथुन, तुला एवं उत्तर दिशा में यात्रा करने के लिए कर्क, वृश्चिक एवं मीन लग्न व राशि उत्तम होता है।

जिस व्यक्ति का जो लग्न एवं राशि होती है यदि यात्रा के लिए वही लग्न व राशि का प्रयोग किया जाए तो वह भी अनुकूल फल देता है, यहां इस तथ्य को समझने के लिए हम एक उदाहरण देख सकते हैं, मान लीजिए किसी व्यक्ति का लग्न मेष एवं राशि धनु है, यदि वह व्यक्ति मेष लग्न और धनु राशि या धनु लग्न और धनु राशि या धनु लग्न और मेष राशि में यात्रा करता है तो यात्रा में सफलता मिलने की संभावना अधिक रहती है। यात्रा के संदर्भ में वर्गोत्तर लग्न और वर्गोत्तम चन्द्र अनुकूल रहता है। ऐसे में यदि केन्द्र)1,4,7,10 एवं त्रिकोण)5,9) में शुभ ग्रह तथा 3,6,11भाव में पाप ग्रह हों तो अत्यंत शुभ होता है।

ज्योतिषशास्त्र मे बताया गया है कि यात्रा में सम्मुख और बांयी तरफ की योगिनी से बचना चाहिए। दाहिने और पीछे की योगिनी शुभ मानी जाती है। योगिनी का निवास अलग अलग तिथियों मे अलग अलग दिशा में होता है, आइये देखें कि योगिनी किस तिथि को किस दिशा में रहती है। पूर्व दिशा में योगिनी का निवास प्रतिपदा और नवमी तिथि को रहता है। तृतीया और एकादशी तिथि को योगिनी आग्नेश दिशा में निवास करती है। पंचमी और त्रयोदशी तिथि को योगिनी दक्षिण दिशा में निवास करती है। चतुर्थी और द्वादशी तिथि को योगिनी नैऋत्य दिशा में निवास करती है। षष्टी और चतुर्दशी तिथि को योगिनी पश्चिम में रहती है। सप्तमी और पूर्णिमा को योगिनी वायव्य दिशा में वास करती है। द्वितीया और दशमी तिथि के दिन योगिनी उत्तर दिशा में विचरण करती है। अष्टमी और अमावस के दिन योगिनी का निवास ईशान यानी उत्तर पूर्व में रहता है।

तारा शुद्धि-

आप यात्रा पर जा रहे हैं तो इस बात का ख्याल रखें कि जिस नक्षत्र में आपका जन्म हुआ है उससे पहला, तीसरा, पांचवां, सातवां, दशवां, बारहवां, चौदहवां, सोलवां, उन्नीसवां, इक्कीसवां, तेइसवां

और पच्चीसवां नक्षत्र हो तो उस दिन यात्रा नहीं करें। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार इन नक्षत्रों में यात्रा करना नुकसानदेय हो सकता है। अगर आप इन नक्षत्रों का यात्रा में त्याग करें तो उत्तम रहता है इससे आपको तारा दोष से नहीं लगता है, इसे तारा शुद्धि के नाम से भी जाना जाता है।

चन्द्र शुद्धि

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार यात्रा पर निकलने से पहले चन्द्रमा की शुद्धि का भी विचार करना चाहिए। आपके जन्म के समय चन्द्रमा जिस राशि में था उस राशि से तीसरा, छठा, दसमा, ग्यारहवां, पहला और सातवें राशि में अगर चन्द्र है तो यह शुभ होता है। यात्रा के दिन अगर चन्द्रमा गोचरवश चतुर्थ, अष्टम अथवा द्वादश राशि में हो तो यात्रा स्थगित कर देना चाहिए, इससे चन्द्र दोष नहीं लगता। किस शुभ लग्न में यात्रा करनी चाहिए यह जानना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। इसके लिए हमें यह बात हमेशा ध्यान रखनी चाहिए कि कभी भी कुंभ लग्न में या कुंभ के नवांश में यात्रा नहीं करनी है। लग्न शुद्धि इस प्रकार करनी चाहिए कि 1, 4, 5, 7, 10वें भावों में शुभ ग्रह हों तथा लग्न से 3, 6, 10 एवं 11वें भाव में पाप ग्रह स्थित हों। यदि चंद्रमा लग्न से 1, 6, 8 या 12वें भाव में स्थित होगा तो वह लग्न अशुभ होगा। यह चंद्रमा पापग्रह से युक्त होगा तो भी अशुभ माना जाएगा। लग्न शुद्धि इस प्रकार करनी चाहिए कि शनि 10वें, शुक्र 7वें, गुरु 8वें, और बुध 12वें भाव में स्थित हो सकें। किसी विशेष वार को विशेष दिशा में यात्रा करने से माना जाता है।

तिथि एवं नक्षत्र शुद्धियों के पश्चात जबकि यात्रा का दिन निश्चित किया जा चुका है, उसके उपरांत किस शुभ लग्न में यात्रा करनी चाहिए यह जानना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। इसके लिए हमें यह बात हमेशा ध्यान रखनी चाहिए कि कभी भी कुंभ लग्न में या कुंभ के नवांश में यात्रा नहीं करनी है। लग्न शुद्धि इस प्रकार करनी चाहिए कि 1, 4, 5, 7, 10वें भावों में शुभ ग्रह हों तथा लग्न से 3, 6, 10 एवं 11वें भाव में पाप ग्रह स्थित हों।

यदि चंद्रमा लग्न से 1, 6, 8 या 12वें भाव में स्थित होगा तो वह लग्न अशुभ होगा। यह चंद्रमा पापग्रह से युक्त होगा तो भी अशुभ माना जाएगा।

राहुकाल में शुभकार्य करना वर्जित हैं। ऐसा माना जाता है कि यह समय क्रुर ग्रह राहु के नाम से है जो पाप ग्रह माना गया है। इसलिए इस समय में जो भी कार्य किया जाता है वो पाप ग्रस्त हो जाता है और असफल हो जाता है। रविवार को शाम 04:30 से 06 बजे तक राहुकाल होता है। सोमवार को दिन का दूसरा भाग यानि सुबह 07:30 से 09 बजे तक राहुकाल होता है। मंगलवार को दोपहर 03:00 से 04:30 बजे तक राहुकाल होता है। बुधवार को दोपहर 12:00 से 01:30 बजे तक राहुकाल माना गया है। गुरुवार को दोपहर 01:30 से 03:00 बजे तक का समय यानि दिन का छठा भाग राहुकाल होता है। शुक्रवार को दिन का चौथा भाग राहुकाल होता है। यानि सुबह 10:30 बजे से 12 बजे तक का

समय राहुकाल है।

शनिवार को सुबह 09 बजे से 10:30 बजे तक के समय को राहुकाल माना गया है।

बोध प्रश्न -

1. वारों की संख्या कितनी है।

   क. ५ ख.६ ग.७ घ.८

2. एक लग्न की अवधि कितने घण्टों की होती है।

   क.२ ख.१ ग.३ घ.४

3. दक्षिण दिशा की यात्रा में कौन सा वार निषेध है।

   क. गुरु ख. शुक्र ग. शनि घ. बुध

4. शुक्रवार को दिन का कौन सा भाग राहुकाल कहा गया है।

   क. पहला ख. दूसरा ग. तीसरा घ. चौथा

5. यात्रा के लिए कुम्भ लग्न कैसा होता है।

   क. उत्तम ख. अनिष्ट कर ग. शान्ति देने वाला घ. विजयप्रद

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि वारों की संख्या ७ होती है। इसे सावन दिन भी कहते है। रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, वृहस्पतिवार, शुक्रवार एवं शनिवार ये वारों के नाम है। इन वारों के पृथक्-पृथक् स्वामी भी कहे गये हैं। शिव, गौरी, षडानन, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र और काल ये 7 क्रम से सूर्यादिक वारों के स्वामी तथा अग्नि, जल, भूमि, हरि, इन्द्र, इन्द्राणी और ब्रह्मा ये 7 क्रम से वारों के देवता हैं। लगतीति लग्नम्। इस सूत्र वाक्य के आधार पर जो लगता है, उसे लग्न कहते है। अब प्रश्न है कि क्या लगता है। कहाँ लगता है। क्यों लगता है। आदि इत्यादि। तो सूर्योदय के समय उदयक्षितिज वृत्त में क्रान्ति वृत्त पूर्व दिशा में जहाँ स्पर्श करता है उसका नाम लग्न है। एक लग्न की अवधि २ घण्टे की होती है। मेष से मीन पर्यन्त १२ लग्न कहे गये हैं। पूर्व दिशा में ज्येष्ठा नक्षत्र, सोम और शनिवार को, दक्षिण दिशा में पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र और गुरूवार को, पश्चिम दिशा में रोहिणी नक्षत्र और रवि एवं शुक्रवार को, तथा उत्तर दिशा में उत्तराफाल्गुनि नक्षत्र मंगलवार एवं बुधवार को अपने धन, विजय और जीवन की अभिलाषा रखने वाले बुद्धिमान व्यक्ति को यात्रा नहीं करनी चाहिए। अर्थात् उक्त दिन एवं नक्षत्रों में तत्तद् दिशाओं में यात्रा करना अनिष्टकर होता है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

वार – सूर्यादि से शनि पर्यन्त सप्त वार कहे गये है।

लग्न - लगतीति लग्नम्।

यात्रा – एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना यात्रा कहलाता है।

पृथक् – अलग

षडानन – जिसके छ: मुख हो।

विदिशा – चार कोण को विदिशा के रूप में जानते है।।

3.7बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. क
3. क
4. घ
5. ख

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि – मूल लेखक – रामदैवज्ञ, टीका- आचार्य रामचन्द्र पाण्डेय

2. नारद संहिता – टीका – पं. रामजन्म मिश्र

3. पूर्वकालामृतम् – टीका – रामचन्द्र पाण्डेय

4. अवकहड़ाचक्रम् – अवधबिहारी त्रिपाठी।

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. योग यात्रा
2. प्रश्नमार्ग
3. वशिष्ठ संहिता

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वार किसे कहते है।

2. लग्न को परिभाषित करते हुए यात्राजनित लग्न शुद्धि का परिचय दीजिये।

3. यात्रा में वार शुद्धि का निर्णय कीजिये।

4. यात्राकालिक वार एवं लग्न शुद्धि का विस्तृत वर्णन कीजिये।

इकाई - 4 घात विचार

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 घात परिचय
4.4 यात्रा में घात विचार
4.5 सारांश
4.6 पारिभाषिक शब्दावली
4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 सहायक पाठ्यसामग्री
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -205 के द्वितीय खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – घात विचार। इससे पूर्व आपने यात्राकालिक वार एवं लग्न शुद्धि से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'यात्राकालिक घात विचार' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

घात का सामान्य अर्थ अशुभकारक से है। यात्रा में घात लगने से अशुभकारी घटनायें घटित होती है। अत: इसका ज्ञान आप सभी के लिए आवश्यक है।

आइए इस इकाई में हम लोग 'घात विचार' के बारे में तथा उसके विविध पक्षों को जानने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- घात को परिभाषित कर सकेंगे।
- यात्रा में घात विचार के अवयवों को समझा सकेंगे।
- यात्रा में घात विचार कैसे किया जाता है, इसको समझ लेंगे।
- घात विचार का महत्व जान जायेंगे।

4.3 घात परिचय

यात्रा मानव जीवन से जुड़ा एक विशेष हिस्सा है। जीवन क्षेत्र में वह प्रतिदिन स्वगृह से कहीं न कहीं तक की यात्रा करता है। ऐसे यात्रा को सामान्योद्देशक यात्रा कहते है। घात का अर्थ है – अशुभ। आपने देखा होगा कि काफी बड़े तादाद में लोग गन्तव्य स्थल तक कहीं जाते हैं, रास्ते में ही उनका दुर्घटना हो जाता है और वह अपने स्थल पर पहुँच नहीं पाते है। इसी प्रकार छोटी छोटी दुर्घटनायें तो आमतौर पर प्रतिदिन ही देखी जाती है। ऐसी परिस्थितियों में ही कहा जाता है कि अमुक के लिए वह यात्रा घातक हो गया आदि ... इत्यादि। यात्रा जब घातक होता है तो मनुष्य को शारीरिक पीड़ा के साथ – साथ उसकी मृत्यु तक हो जाती है। इन्हीं समस्याओं को ध्यान में रखते हुए आचार्यो ने ज्योतिष में घात विचार किया है।

आइए अब इस इकाई में ज्योतिषोक्त घात विचार का अध्ययन करते हैं, जिससे आपलोग भली – भॉति यात्रा में कथित घात का ज्ञान कर लेंगे तथा स्वजीवन को इस प्रकार की समस्याओं से बचा पाने में भी समर्थ होंगे।

3.4 यात्रा में घात विचार –

यात्राकालिक घात विचार के अन्तर्गत सर्वप्रथम हमें यह जानना चाहिए कि घात के दृष्टिकोण से चन्द्रमा यात्रा में सबसे प्रमुख माना गया है। इसलिए यहाँ घात चन्द्र का विचार करते है। यथा –

भूपञ्चाङ्कद्वयंगदिग्वह्निसप्तवेदाष्टेशार्कश्चि घाताख्यचन्द्र:।

मेषादीनां राजसेवाविवादे वर्ज्यो युद्धाद्ये च नान्यत्र वर्ज्य:।।

मेषादि 12 राशियों के लिए क्रम से प्रथम, पंचम, नवम, द्वितीय, षष्ठ, दशम, तृतीय, सप्तम, चतुर्थ, अष्टम, एकादश एवं द्वादश चन्द्रमा घातक होता है। यथा मेष राशिवालों के लिए मेषस्थ, वृष राशि – वालों के लिए पंचम कन्या राशिगत, मिथुन राशिवालों के लिए द्वितीय कर्क राशिगत चन्द्रमा घातक होता है। इसी प्रकार सभी राशियों में समझना चाहिए।

घात चन्द्र में त्याज्य नक्षत्र पाद (परिहार) -

आग्नेयत्वाष्ट्रजलपपित्रयवासवरौद्रभे

मूलब्राह्मजपादर्क्षे पित्रयमूलाजभे क्रमात्।

रूपद्वयग्न्यग्निभूरामद्वयब्ध्यग्न्यब्धियुगाग्नय:

घातचन्द्रे विष्ण्यपादा मेषाद्वर्ज्या मनीषिभि:।।

मेषादि राशियों में क्रम से कृत्तिका प्रथम पाद, चित्रा का द्वितीय, शतभिष का ३ , मघा का तृतीय, धनिष्ठा का प्रथम, आर्द्रा का तृतीय, मूल का द्वितीय, रोहिणी का चतुर्थ, पूर्वाभाद्रपदा का तृतीय, मघा का चतुर्थ, मूल का चतुर्थ, तथा पूर्वाभाद्रपदा का तृतीय चरण त्याज्य कहा गया है ।

घात तिथि –

गोस्त्रीझषे घाततिथिस्तु पूर्णा भद्रा नृयुक्कर्कटकेऽथ नन्दा।

कौर्प्याजयोर्नक्रधटे च रिक्ता जया धनु:कुम्भहरौ न शस्ता:।।

वृष – कन्या और मीन राशि वालों के लिए पूर्णा (५,१०,१५) तिथियॉ, मिथुन, कर्क राशि वालों के लिए भद्रा (२,७,१२) तिथियॉ, वृश्चिक और मेष राशि के लिए नन्दा (१,६,११) तिथियॉ मकर और तुला के लिए, रिक्ता (४,९,१४) तिथियॉ, धनु , कुम्भ और सिंह राशि वालों के लिए जया (३,८,१३) तिथियॉ घात संज्ञक होती है। ये घात तिथियॉ यात्रा के लिए अशुभ होती है ।

घात वार –

नक्रे भौमो गोहरिस्त्रीषु मन्दश्चन्दो द्वन्द्वेऽर्कोऽजभे ज्ञश्च कर्के।

शुक्र: कोदण्डालिमीनेषु कुम्भे जूके जीवो घातवारा न शस्ता:।।

मकर राशि के लिए मंगलवार, वृष- सिंह-कन्या राशियों के लिए शनिवार, मिथुन के लिए सोमवार,

मेष राशि के लिए रविवार, कर्क राशि के लिए बुधवार, धनु – वृश्चिक और मीन राशि के लिए शुक्रवार तथा कुम्भ और तुला राशियों के लिए गुरूवार, घातवार होते हैं। ये शुभ नहीं होते है।

घात नक्षत्र –

मघाकरस्वातिमैत्रमूलश्रुत्यम्बुपान्त्यभम्।
याम्यब्राह्मेशसार्पञ्च मेषादेर्घातभं न सत्॥

मेषादि राशियों में क्रम से मघा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, मूल, श्रवण, शतभिष,रेवती, भरणी, रोहिणी,आर्द्रा, आश्लेषा घात नक्षत्र होते हैं अर्थात् मेष राशिवालों के लिए मघा, वृष के लिए हस्त, मिथुन के लिए स्वाती, कर्क के लिए अनुराधा, सिंह के लिए मूल, कन्या के लिए श्रवण, तुला के लिए शतभिषा, वृश्चिक के लिए रेवती, धनु के लिए भरणी मकर के लिए रोहिणी, कुम्भ के लिए आर्द्रा तथा मीन के लिए आश्लेषा नक्षत्र घात संज्ञक होते हैं। जो शुभ नहीं होते है।

घात लग्न –

भूमिद्व्यब्ध्यद्रिदिक्सूर्याङ्गाष्टाङ्केशाग्निसायका: ।
मेषादिघातलग्नानि यात्रायां वर्जयेत्सुधी:॥

मेष राशि के लिए मेष, वृष के लिए वृष, मिथुन के लिए कर्क, कर्क के लिए तुला, सिंह के लिए मकर, कन्या के लिए मीन, तुला के लिए कन्या, वृश्चिक के लिए वृश्चिक, धनु के लिए धनु, मकर के लिए कुम्भ, कुम्भ के लिए मिथुन, तथा मीन के लिए सिंह लग्न घात संज्ञक होते हैं । अत: इनमें यात्रा नहीं करनी चाहिए।

घात बोधक चक्र -

राशि	घातचन्द्र	नक्षत्रों के त्याज्य पाद	घात तिथि	घातवार	घात नक्षत्र	घात लग्न
मेष	मेष	कृत्तिका १	१,६,११	रविवार	मघा	मेष १
वृष	कन्या	चित्रा २	५,१०,१५	शनिवार	हस्त	वृष २
मिथुन	कुम्भ	शत. ३	२,७,१२	सोमवार	स्वाती	कर्क ४
कर्क	सिंह	मघा. ३	२,७,१२	बुधवार	अनु0	तुला ७
सिंह	मकर	धनि0 १	३,८,१३	शनिवार	मूल	मकर १०
कन्या	मिथुन	आर्द्रा. ३	५,१०,१५	शनिवार	श्रवण	मीन १२
तुला	धनु	मूल. २	४,९,१४	गुरूवार	शत.	कन्या ६

वृश्चिक	वृष	रोहि0४	१,६,९	शुक्रवार	रेव.	वृश्चिक ८
धनु	मीन	पू.भा.३	३,८,१३	शुक्रवार	भर.	धनु ९
मकर	सिंह	मघा. ४	४,९,१४	भौमवार	रोहि.	कुम्भ ११
कुम्भ	धनु	मूल. ४	३,८,१३	गुरूवार	आर्द्रा	मिथुन३
मीन	कुम्भ	पू.भा.३	५,१०,१५	शुक्रवार	आश्ले.	सिंह ५

योगिनी वास ज्ञान –

नवभूम्यः शिववह्नयोऽक्षविश्वेऽर्ककृताः शक्ररसास्तुरङ्गतिथ्यः।
द्विदिशोऽमावसवश्च पूर्वतः स्युस्तिथयः सम्मुखवामगा न शस्ताः।।

पूर्वादि दिशाओं में क्रम से प्रतिपदा और नवमी को पूर्व में, तृतीया और एकादशी को अग्निकोण में, पंचमी-त्रयोदशी को दक्षिण में, चतुर्थी – द्वादशी को नैऋत्य में, षष्ठी - चतुर्दशी को पश्चिम में, सप्तमी – पूर्णिमा को वायव्य में, द्वितीया – दशमी को उत्तर में तथा अमावस्या -अष्टमी को ईशान कोण में योगिनी का निवास होता है। यात्रा में ये तिथियॉ योगिनी सम्मुख और वामभाग में शुभ नहीं होती।

कालपाश विचार –

कौबेरीतो वैपरीत्येन कालो वारेऽर्काद्ये सम्मुखेतस्य पासः।
रात्रावेतौ वैपरीत्येन गण्यौ यात्रा युद्धे सम्मुखे वर्जनीयौ।।

रवि आदि वारों में उत्तर दिशा से विपरीत क्रम से काल का निवास रहता है। यथा – रविवार को उत्तर, सोमवार को वायव्य, मंगलवार को पश्चिम, बुधवार को नैर्ऋत्य, वृहस्पतिवार को दक्षिण, शुक्रवार को अग्निकोण एवं शनिवार को पूर्वदिशा में काल का वास रहता है। काल के सामने की दिशा में पाश का वास रहता है। रात में काल और पास विपरीत दिशा में वास करते है। ये दोनों युद्ध और यात्रा में सम्मुख हो तो वर्जित है।

काल पाश बोधक सारिणी –

		रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
दिन में	काल	उत्तर	वायव्य	पश्चिम	नैर्ऋत्य	दक्षिण	आग्नेय	पूर्व
	पाश	दक्षिण	आग्नेय	पूर्व	ईशान	उत्तर	वायव्य	पश्चिम
रात में	काल	दक्षिण	आग्नेय	पूर्व	ईशान	उत्तर	वायव्य	पश्चिम
	पाश	उत्तर	वायव्य	पश्चिम	नैर्ऋत्य	दक्षिण	आग्नेय	पूर्व

परिघ दण्ड विचार –

भानि स्थाप्यान्याब्धिदिक्षु सप्तसप्तानलर्क्षतः ।
वायव्याग्नेयदिक्संस्थं परिघं नैव लङ्घयेत् ।।

कृत्तिका नक्षत्र से आरम्भ करके ७-७ नक्षत्र पूर्वादि ४ दिशाओं में स्थापित करें और उसमें वायव्य और अग्निकोण में लगी हुई रेखा को कालदण्ड कहते हैं। यात्रा में कालदण्ड का उल्लंघन करना सर्वथा निषिद्ध है।

परिहार –

अग्नेर्दिशं नृपं इयात्पुरूहूतदिग्भैरेवं प्रदक्षिण गता विदिशोऽथ कृत्ये ।
आवश्यकेऽपि परिघं प्रविलङ्घ्य गच्छेदच्छूलं विहाय यदि दिक्तनुशुद्धिरस्ति ।।

राजा को अग्निकोण की यात्रा पूर्व के नक्षत्रों कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु,पुष्य, आश्लेषा, में नैर्ऋत्य कोण की यात्रा दक्षिण के नक्षत्रों में मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा में वायव्य कोण की यात्रा पश्चिम के नक्षत्रों अनुराधा, ज्येष्ठा , मूल,पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित, श्रवण में तथा ईशान कोण की यात्रा उत्तर के नक्षत्रों में धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा , रेवती, अश्विनी, भरणी में करनी चाहिए । कार्य आवश्यक हो तो परिघदण्ड का उल्लंघन करके शूल को छोड़कर यदि दिग्द्वार लग्न शुद्ध हो तो यात्रा की जा सकती है।

प्रश्न लग्न से यात्राभंग योग –

विधुकुजयुतलग्ने सौरिदृष्टेऽथ चन्द्रे
मृतिभमदनसंस्थे लग्नगे भास्करेऽपि।
हिबुकनिधनहोराद्यूनगे चापि पापे
सपदि भवति भङ्गः प्रश्नकर्तुस्तदानीम् ।।

प्रश्न काल में चन्द्रमा और मंगल से युत लग्न को शनि देखता हो, प्रश्न लग्न से सप्तम – अष्टम भाव में चन्द्रमा तथा लग्न में सूर्य हो, चतुर्थ, अष्टम, लग्न और सप्तम भाव में पापग्रह गये हों तो प्रश्न कर्ता का प्रश्न भंग हो जाता है। अर्थात् युद्ध में पराजय होती है अथवा यात्रा में सफलता नहीं मिलती है।

जीवपक्षादि नक्षत्र फल –

मार्तण्डे मृतपक्षगे हिमकरश्चेज्जीवपक्षे शुभा।
यात्रा स्याद्विपरीतगे क्षयकरी द्वौ जीवपक्षे शुभा ।।
ग्रस्तर्क्षे मृतपक्षतः शुभकरं ग्रस्तात्तथा कर्तरी।

यायीन्दुः स्थितिमान् रविर्जयकरौ तौ द्वौ तयोर्जीवगौ।।

सूर्य यदि मृतसंज्ञक नक्षत्रों में हो तथा चन्द्रमा जीवपक्ष संज्ञक नक्षत्रों में हो तो यात्रा शुभकारक होती है। यदि दोनों विपरीत स्थिति में चन्द्रमा मृतपक्ष में और सूर्य जीवपक्ष में हो तो यात्रा अशुभ कारक होती है। यदि दोनों जीवपक्ष में हो तो यात्रा शुभ होती है। मृतसंज्ञक नक्षत्रों की अपेक्षा ग्रस्त संज्ञक नक्षत्र शुभ होते हैं तथा ग्रस्त संज्ञक नक्षत्रों की अपेक्षा कर्त्तरी संज्ञक नक्षत्र शुभ होते हैं।चन्द्रमा यायी तथा सूर्य स्थायी होता है। यदि रवि – चन्द्र दोनों ही जीव पक्ष में स्थित हो तो उन दोनों यायी (यात्रा करने वाले या युद्ध में आक्रमण करने वाले) तथा स्थायी (जो स्थिर है अथवा जिस पर आक्रमण किया गया हो) दोनों की विजय होती है, अर्थात् सन्धि होती है।

स्थायी और यायी का विचार प्रमुख रूप से युद्ध यात्रा के लिए तथा किसी प्रकार के वाद – विवाद के प्रसंग में किया जाता है। जीव – मृत आदि का फल से आशय यह है कि वादी – प्रतिवादी के सूचक ग्रह क्रम से चन्द्रमा और सूर्य है। जब दोनों जीव पक्ष में होंगे तो दोनों पक्ष समान होंगे अर्थात् सन्धि होगी यदि चन्द्र और सूर्य दोनों ही मृत पक्ष में हो तो दोनों का नाश होता है। तथा जीवपक्ष में चन्द्रमा तथा मृतपक्ष में सूर्य हो तो यायी की, इससे विपरीत स्थिति सूर्य जीवपक्ष में चन्द्रमा मृत पक्ष में हो तो स्थायी की विजय होती है। ग्रस्त और कर्त्तरी योगों में अपेक्षाकृत कर्त्तरी योग शुभ होता है।

अकुल – कुल - कुलाकुल संज्ञा विचार –

स्वात्यन्तकाहिवसुपौष्णकरानुराधा –
दित्यध्रुवाणि विषमास्तिथयोऽकुलाः स्युः।
सूर्येन्दुमन्दगुरवश्च कुलाकुला ज्ञो
मूलाम्बूपेशविधिभं दशषड्द्वितिथ्यः ।।
पूर्वाश्वीज्यमघेन्दुकर्णदहनद्वीशेन्द्रचित्रास्तथा
शुक्रारौ कुलसंज्ञकाश्च तिथयोऽर्काष्टेन्द्रवेदैमिताः।
यायी स्यादकुले जयी च समरे स्थायी च तद्वत्कुले
सन्धिः स्यादुभयोः कुलाकुलगणे भूमीशयोर्युध्यतोः ।।

स्वाती, भरणी, आश्लेषा, धनिष्ठा, रेवती, हस्त, अनुराधा, पुनर्वसु और ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा रोहिणी) नक्षत्रों की १,३,५,७९,११,१३,१५ विषम तिथियों एवं सूर्य, चन्द्र , शनि और गुरूवासरों की अकुल संज्ञा होती है।

बुधवार , मूल, शतभिषा, आर्द्रा, अभिजित् नक्षत्रों एवं १०,६,२ तिथियों की कुलाकुल संज्ञा होती है।

तीनों पूर्वा, अश्विनी, पुष्य, मघा, मृगशिरा, श्रवण, कृत्तिका, विशाखा, ज्येष्ठा, चित्रा नक्षत्रों शुक्र और मंगलवासरों एवं १२,८,१४,४ तिथियों की कुल संज्ञा होती है।

अकुल संज्ञक तिथि – वार- नक्षत्रों में वाद – विवाद युद्ध आदि करने से यायी (वादी, आक्रामक) की विजय होती है, कुल संज्ञक तिथिवार नक्षत्रों में स्थायी (स्थिर, जिस पर आक्रमण होता है) की विजय होती है। कुलाकुल गणों में युद्ध करने वाले दोनों राजाओं की सन्धि होती है।

कुल, अकुल और कुलाकुल गणों का उपयोग प्राचीनकाल में युद्धादि कार्यों में किया जाता था। आजकल इनका उपयोग मात्र मुकदमा एवं वाद – विवाद में किया जाता है। अकुलसंज्ञक तिथि वार नक्षत्रों में मुकदमा दायर करने से मुकदमा करने वालो की विजय होती है। इनको आप चक्र से भी समझ सकते है।

संज्ञा	**नक्षत्र**	**तिथि**	**वार**	**परिणाम**
अकुल	भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, आश्लेषा, उ.फा., हस्त, स्वाती, अनुराधा, उ0षा0, धनिष्ठा, उ.भा., रेवती	१,३,५,७,९,११,१३,१५	रविवार,सोम गुरूवार शनिवार	यायी की विजय
कुलाकुल	आर्द्रा, मूल,अभिजित्, शतभिषा	२,६,१०	बुधवार	यायी और स्थायी की सन्धि
कुल	अश्विनी, कृत्तिका, मृगशीर्ष, पुष्य, मघा, पू0फा0, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पू0षा0, श्रवण, पू0भा0	४,८,१२,१४	भौमवार शुक्रवार	स्थायी की विजय

पथिराहुचक्रम् –

स्युधर्मे दस्रपुष्योरगवसुजलपद्वीशमैत्राण्यर्थे
याम्याजाङ्घ्रीन्द्रकर्णादितिपितृपवनोडून्यथो भानि कामे।
वह्नयार्द्राबुध्न्यचित्रानिर्ऋतिविधिभगाख्यानि मोक्षेऽथ रोहि –
ण्याप्येन्द्वन्त्यर्क्षविश्वार्यमभदिनकरर्क्षाणि पथ्यादिराहौ ।।

पथि राहुचक्र के धर्ममार्ग में अश्विनी, पुष्य,आश्लेषा,धनिष्ठा, शतभिषा, विशाखा एवं अनुराधा नक्षत्र, अर्थ मार्ग में भरणी, पूर्वभाद्रपद, ज्येष्ठा, श्रवण, पुनर्वसु, मघा और स्वाती नक्षत्र, काममार्ग में कृत्तिका,

आर्द्रा, उत्तरभाद्रपद, चित्रा, मूल, अभिजित् और पूर्वाफाल्गुनि नक्षत्र, तथा मोक्ष मार्ग में रोहिणी, पूर्वाषाढा, मृगशिरा, रेवती, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनि तथा हस्त नक्षत्र होते है।

विशिष्ट यात्रा में पथि राहुचक्र का विचार किया जाता है। २८ नक्षत्रों को धर्म-अर्थ–काम-मोक्ष इन चार मार्गों में विभक्त कर दिया गया है। इन चारों भागों में सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति के अनुसार शुभाशुभ का विचार किया जाता है।

मार्ग	नक्षत्र
धर्म	अश्विनी, पुष्य, आश्लेषा, विशाखा, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिषा
अर्थ	भरणी, पुनर्वसु, मघा, स्वाती, ज्येष्ठा, श्रवण, पू0भा0
काम	कृत्तिका, आर्द्रा, पू.फा., चित्रा, मूल, अभिजित्, उ.भा.
मोक्ष	रोहिणी, मृगशिर्ष, उ.फा., हस्त, पू.षा., उ.षा., रेवती

पथिराहु फल –

धर्मगे भास्करे वित्तमोक्षे शशी वित्तगे धर्ममोक्षस्थित: शस्यते।
कामगे धर्ममोक्षार्थग: शोभनो मोक्षगे केवलं धर्मग: प्रोच्यते।।

पथिराहु चक्र में सूर्य यदि धर्ममार्ग में स्थित हो तथा चन्द्रमा धन मार्ग या मोक्ष मार्ग में स्थित हों अथवा धनमार्ग में सूर्य स्थित हों तथा धर्म – मोक्ष मार्ग में चन्द्रमा हो तो शुभ होताहै। काम मार्ग में सूर्य तथा धर्म और मोक्ष मार्ग में चन्द्रमा हों अथवा मोक्ष मार्ग में सूर्य एवं केवल धर्ममार्ग में चन्द्रमा हो तो शुभ फल कहा गया है।

बोध प्रश्न –

१. वृष राशि के लिए कौन सा चन्द्रमा घातक होता है –
   क. नवम   ख. पंचम   ग. दशम   घ. सप्तम
२. घात चन्द्र में मघा नक्षत्र का कौन सा चरण त्याज्य है –
   क. प्रथम   ख. द्वितीय   ग.तृतीय   घ. चतुर्थ
३. रिक्ता संज्ञक तिथि हैं –
   क. १,११,६   ख. २,७,१२   ग. ९,४,१४   घ. ५,१०,१५
४. कर्क राशि के वालों के लिए घात संज्ञक तिथि है -
   क. नन्दा   ख. भद्रा   ग. जया   घ. रिक्ता
५. मेष राशि के लिये कौन सा वार घात संज्ञक है –
   क. रविवार   ख. सोमवार   ग. मंगलवार   घ. बुधवार

६. मिथुन राशि वालों के लिये कौन सा नक्षत्र घात संज्ञक है –

क. हस्त ख. चित्रा ग. स्वाती घ. विशाखा

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि यात्रा मानव जीवन से जुड़ा एक विशेष हिस्सा है। जीवन क्षेत्र में वह प्रतिदिन स्वगृह से कहीं न कहीं तक की यात्रा करता है। ऐसे यात्रा को सामान्योद्देशक यात्रा कहते है। घात का अर्थ है – अशुभ। आपने देखा होगा कि काफी बड़े तादाद में लोग गन्तव्य स्थल तक कहीं जाते हैं, रास्ते में ही उनका दुर्घटना हो जाता है और वह अपने स्थल पर पहुँच नहीं पाते है। इसी प्रकार छोटी छोटी दुर्घटनायें तो आमतौर पर प्रतिदिन ही देखी जाती है। ऐसी परिस्थितियों में ही कहा जाता है कि अमुक के लिए वह यात्रा घातक हो गया आदि ... इत्यादि। यात्रा जब घातक होता है तो मनुष्य को शारीरिक पीड़ा के साथ – साथ उसकी मृत्यु तक हो जाती है। इन्हीं समस्याओं को ध्यान में रखते हुए आचार्यों ने ज्योतिष में घात विचार किया है।

मेषादि 12 राशियों के लिए क्रम से प्रथम, पंचम, नवम, द्वितीय, षष्ठ, दशम, तृतीय, सप्तम, चतुर्थ, अष्टम, एकादश एवं द्वादश चन्द्रमा घातक होता है। यथा मेष राशिवालों के लिए मेषस्थ, वृष राशि – वालों के लिए पंचम कन्या राशिगत, मिथुन राशिवालों के लिए द्वितीय कर्क राशिगत चन्द्रमा घातक होता है। इसी प्रकार सभी राशियों में समझना चाहिए।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

घात – अशुभ, कष्टप्रद

मेषस्थ - मेष राशि में स्थित

लग्नस्थ – लग्न में स्थित

राशिगत – राशि में गया हुआ

षष्ठ – ६

द्वादश – १२

पंचम– ५

पथिक – पथ में चलने वाला

पुरूषार्थ – धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. ग
3. ग
4. ख
5. क
6. ग

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि – यात्राप्रकरण
2. नारद संहिता – यात्राप्रकरण
3. प्रश्नमार्ग – यात्राप्रकरण
4. पूर्वकालामृतम् – यात्राप्रकरण

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. वशिष्ठ संहिता
2. अग्नि पुराण
3. पूर्वकालामृत
4. प्रश्नमार्ग

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. घात का परिचय दीजिये।
2. यात्राकालिक घात का वर्णन कीजिये।
3. घात नक्षत्र, घात वार एवं घात लग्न का उल्लेख कीजिये।
4. यात्रा में घात विचार क्यों आवश्यक है। लिखिये।

इकाई - 5 यात्रा में शकुन विचार

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 शकुन परिचय
5.4 यात्रा में शकुन विचार
5.5 सारांश
5.6 पारिभाषिक शब्दावली
5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 सहायक पाठ्यसामग्री
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -205 के द्वितीय खण्ड की पाँचवीं इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – यात्रा में शकुन विचार। इससे पूर्व आपने यात्रा में घात से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप यात्राजन्ति क्रम में ही इस इकाई में 'शकुन' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

शकुन का सामान्य अर्थ है – पक्षी। यात्रा में पशु-पक्षी, मानव, दानव आदि इत्यादि से जुड़े शकुन प्रभावों कैसे होते है। मानव जीवन में उस शकुन का क्या भूमिका है। इन सभी विषयों का अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे।

अत: आइए इस इकाई में हम लोग यात्राकालिक 'शकुन' के बारे में तथा उसके शुभाशुभ प्रभावों को जानने का प्रयास करते है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- शकुन को परिभाषित कर सकेंगे।
- शकुन के अवयवों को समझा सकेंगे।
- शकुन लगने वाले कारणों को समझ लेंगे।
- शकुन में कृत्याकृत्य को जान लेंगे।
- शकुन के महत्व को समझ लेंगे।

5.3 शकुन परिचय

मनुष्य जब यात्रा करता है तो यात्रा आरम्भ करने के स्थान से ही मार्ग में विविध प्रकार के जीव, जन्तु इत्यादि दिखलाई पड़ने लगते है। उन समस्त जीव-जन्तुओं का शकुन विचार के माध्यम से ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों द्वारा उसका शुभाशुभ फल का विवेचन किया गया है। अत: अलग-अलग पदार्थों का अलग-अलग शकुन फल बतलाया गया है। इस इकाई में हम यात्राकालिक विविध शकुन का शुभाशुभ फल का ज्ञान करने जा रहे हैं।

शकुन के मुख्यत: दो प्रभाव है – एक शुभ शकुन दूसरा अशुभ शकुन। इस प्रकार आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में शकुन का उक्त दोनों फलों का वर्णन किया है।

5.4 यात्रा में शकुन विचार

शकुन विचार –

चेतोनिमित्तशकुनैः खलु सुप्रशस्तै
र्ज्ञात्वा विलग्नबलमुर्व्यधिपः प्रयाति।
सिद्धिर्भवेदथ पुनः शकुनादितोऽपि
चेतोविशुद्धिरधिका न च तो विनेयात्।।

राजा से सम्बन्धित शकुन का विचार करते हुए आचार्य कथन है कि मन की प्रसन्नता, अंग लक्षणादि शुभ निमित्तों तथा पशु – पक्षी एवं आकाश जन्य शुभ शकुनों के साथ – साथ लग्न के बल का ज्ञान कर जो राजा प्रस्थान करता है उसकी अभीष्ट सिद्धि होती है। शकुन आदि की अपेक्षा मन की शुद्धि अधिक महत्वपूर्ण होती है। यदि यात्रा काल में मन की प्रसन्नता न हो तो यात्रा नहीं करनी चाहिये।

निषिद्धकाल –

व्रतबन्धनदेवप्रतिष्ठाकरपीडोत्सवसूतकासमाप्तौ।
न कदापि चलेदकालविद्युदधनवर्षातुहिनेऽपि सप्तरात्रम्।।

यज्ञोपवीत संस्कार में, देवालय में प्राणप्रतिष्ठा के समय, विवाहोत्सव में, जन्म सम्बन्धी सूतक और मृत्यु सम्बन्धी सूतक के समाप्त होने के पूर्व यात्रा नहीं करनी चाहिये।

शुभ शकुन –

विप्राश्वेभफलान्नदुग्धदधिगोसिद्धार्थपद्माम्बरं
वेश्यावाद्यमयूरचाषनकुला बद्धैकपश्वामिषम्।
सद्वाक्यं कुसुमेक्षुपूर्णकलशच्छत्राणि मृत्कन्यका
रत्नोष्णीर्षासतोक्षमद्यससुततस्त्रीदीप्तवैश्वानराः।।
आदर्शाञ्जनधौतवस्त्ररजका मीनाज्यासिंहासनं
शावं रोदनवर्जितं ध्वजमधुच्छागास्त्रगोरोचनम्।
भारद्वाजनृयानवेदनिनदा मांगल्यगीताङ्कुशा
दृष्टः सत्फलदाः प्रयाणसमये रिक्तौ घटः स्वानुगः।।

ब्राह्मण (एक से अधिक ब्राह्मण), घोड़ा, हाथी, फल, अन्न, दूध, दही, गाय, सरसों , कमल, वस्त्र, वेश्या, वाद्य, मयूर, नीलकण्ठ, नेवला, बँधा हुआ पशु, मॉस, शुभवाणी, पुष्प, ईख जल से भरा कलश, छत्र, मिट्टी, कन्या, रत्न, पाडी, श्वेत बैल, शराब, पुत्रसहित स्त्री, प्रज्वलित अग्नि, दर्पण, काजल, धुले वस्त्रों के साथ धोबी, मछली, सिंहासन,रूदन रहित शव (मृत शरीर), पताका, शहद,

बकरा, अस्त्र, गोरोचन, भारद्वाज (चातक) पक्षी, पालकी, वेदध्वनि, मांगलिक गीत, अंकुश तथा खाली घड़ा यात्री के पीछे की तरह जाता हुआ यदि यात्रा के समय दिखलाई पड़े तो शुभफलदायक होता है।

अशुभ शकुन -

बन्ध्या चर्म तुषास्थि सर्पलवणाङ्गारेन्धनक्लीबविट्
तैलोन्मत्तवसौषधारिजटिलप्रव्राटतृणव्याधिता:।
नग्नाभ्यक्तविमुक्तकेशपतिता व्यंगक्षुधार्ता असृक्
स्त्रीपुष्पं सरठः स्वगेहदहनं मार्जारयुद्धं क्षुतम्।।
काषायी गुडतक्रपंकविधवाकुब्जाः कुटुम्बे कलि –
र्वस्त्रादेः स्खलनं लुलायसमरं कृष्णानि धान्यानि च।।
कार्पासं वमनं च गर्दभरवो दक्षेऽतिरूट् गर्भिणी
मुण्डार्द्राम्बरदुर्वचोऽन्धबधिरोदक्यो न दृष्टाः शुभाः।।

बन्ध्या स्त्री, चमड़ा, भूसी, हड्डी , नमक, आग का अंगारा, इन्धन , नपुंसक,विष्ठा, तेल, पागल, चर्बी, औषधी, शत्रु, जटाधारी, सन्यासी, तृण, रोगी, वस्रहीन मानव, तेल उबटन लगाया हुआ व्यक्ति, विखरे बालों वाला स्त्री, पापी व्यक्ति, विकलांग, भूख से व्याकुल मनुष्य, रक्त, स्त्री का रजस्राव, गिरगिट , अपने घर का जलना, बिल्ली का युद्ध, छींक, काषाय वस्र धारण किये हुए मनुष्य, गुड़, मट्ठा, कीचड़, विधवा स्त्री, कुबड़ा , पारिवारिक कलह, शरीर से वस्र - छत्र आदि का गिरना, भैसों का युद्ध, काले रंग के अन्न, रूई, उल्टी, दाहिनी और गधे का शब्द, अधिक क्रोधी प्राणी, गर्भिणी स्त्री, मुण्डित व्यक्त, गीला वस्र, अपशब्द का प्रयोग, अन्धा, बहरा, तथा इन सभी का यात्रा के समय दिखलाई पड़ना शुभ नहीं होता है। ये अशुभ शकुन कहे गये है।

अन्य शकुन –

गोधाजाहकसूकराहिशशकानां कीर्तनं शोभनं
नो शब्दो न विलोकनं च कपिऋक्षाणामतो व्यत्ययः।
नद्युत्तारभयप्रवेशसमरे नष्टार्थसंवीक्षणे
व्यत्यस्ताः शकुना नृपेक्षणविधौ यात्रोदिताः शोभनाः।।

गोह, जाहक (अंगसंकोची पशु), सर्प एवं खरगोश का नामोच्चारण ही शुभ होता है, परन्तु इन का शब्द या दर्शन यात्रा के समय शुभ नहीं होता है। बन्दर और भालू का गोह आदि से विपरीत फल होता है, अर्थात बन्दर और भालू का शब्द (बोलना) और दर्शन होना शुभ तथा नामोच्चारण

अशुभ होता है।

नदी पार करते समय, भय के उपस्थित होने पर या भय से भागते समय, गृहप्रवेश, युद्ध तथा नष्ट वस्तु के अन्वेषण के समय विपरीत शकुन ही शुभ अर्थात् अशुभ शकुन शुभ फलदायक तथा शुभ शकुन अशुभ फलदायक होते हैं तथा राजा के दर्शन सम्बन्धी कार्यों में यात्रा प्रसंग में बताये गये शुभ शकुन ही शुभदायक होते हैं।

वामांगे कोकिला पल्ली पोतकी सूकरी रला।
पिंगला छुच्छुका श्रेष्ठा: शिवा: पुरूषसंज्ञिता: ॥

कोयल, छिपकली, पोतकी, सूकरी रला (एक प्रकार का पक्षी) , पिंगला भैरवी, छछुन्दर, श्रृंगाली (गीदड़ी) तथा पुरूष संज्ञक पक्षी (कबूतर, खंजन, तित्तिर, हंसा आदि) यात्रा के समय वाम भाग में शुभ माने जाते है।

छिक्कर: पिक्कको भास: श्रीकण्ठो वानरो रूरू:।
स्त्रीसंज्ञका: काकऋक्षश्वान: स्युर्दक्षिणा: शुभा: ॥

छिक्कर मृग, हाथी का बच्चा, भास पक्षी, मयूर, बन्दर, रूरूमृग, स्त्री संज्ञक पक्षी कौवा, भालू तथा कुत्ता यात्रा के समय दक्षिण भाग में शुभ होते हैं।

शकुन में विशेष –

प्रदक्षिणगता: श्रेष्ठा यात्रज्ञयां मृगपक्षिण:।
ओजा मृगा व्रजन्तोऽतिधन्या वामे खरस्वन:॥

यात्रा के समय दक्षिण भाग में जाते हुए मृग और पक्षी शुभ फलदायक होते हैं। यदि विषम संख्यक मृग हों तो अत्यन्त शुभ होते है। वाम भाग में गधे का शब्द सुनाई पड़े तो वह भी यात्रा में शुभ होता है।

अशुभ शकुनों के परिहार –

आद्येऽपशकुने स्थित्वा प्राणानेकादश व्रजेत्।
द्वितीये षोडश प्राणांस्तृतीये न क्वचिद्व्रजत्॥

यात्रा के समय यदि प्रथम बार अपशकुन दिखलाई पड़े तो ११ प्राण (ग्यारह बार श्वास आने तक जितना समय हो उतने समय) तक रूक कर यात्रा करें। यदि द्वितीय बार अपशकुन दिखाई पड़े तो १६ प्राण तक रूक कर यात्रा करें। यदि तृतीय बार अपशकुन का दर्शन हो तो कहीं भी नहीं जाना चाहिये।

एकदिवसीय यात्रा में विशेष –

यदि राजा एक नगर से यात्रा आरम्भ कर उसी दिन दूसरे नगर में प्रविष्ट हो जाता है तो इस प्रकार की एक दिवसीय यात्रा में नक्षत्रशूल-वारशूल, सम्मुख शुक्र एवं योगिनी आदि का विचार पुरूष को नहीं करना चाहिए।

यदि राजा का यात्रारम्भ और अभीष्ट स्थान में प्रवेश दोनों एक ही दिन में सम्पन्न हो जाता हो तो वहॉ केवल प्रवेशकाल का ही विचार विद्वानों को करना चाहिये यात्राकाल का नहीं।

गृह में प्रवेश करते समय जो तिथि - नक्षत्र वार हों उनसे नवम तिथि नक्षत्र वारों में यात्रा तथा यात्राकालिक तिथि - नक्षत्र - वारों से नवमम तिथि नक्ष्ज्ञत्र वारों में पुन: गृह में प्रवेश कथमपि नहीं करना चाहिये।

यात्रा में निषिद्ध काल -

यज्ञोपवीत संस्कार में , देवालय में प्राणप्रतिष्ठा के समय, विवाहोत्सव में, जन्म सम्बन्धी सूतक और मृत्यु सम्बन्धी सूतक के समाप्त होने के पूर्व यात्रा नहीं करनी चाहिये।

भूपाल वल्लभ में कहा गया है कि गर्गाचार्य के मत से यात्रा में उष:काल या सुबह का समय विशेष शुभ होता है। वृहस्पति जी के अनुसार तथा शकुन अंगिरा के मत से मन का उत्साह तथा विद्वान या श्रेष्ठ पुरूष का आदेश ही यात्रा में विशेष विचारणीय है - यथा

उष: प्रशस्यते गर्ग: शकुनं च वृहस्पति: ।
अंगिरा मन उत्साहो विप्रवाक्यं जनार्दन: ।।

काक शब्द शकुन विचार –

काक अर्थात् कौवा का शब्द सुनकर अपने पैरों से छाया नापकर उसमें १३ और जोड़ दें एवं ६ का भाग दे, शेष १ बचें तो लाभ, २ में खेद, ३ में सुख, ४ में भोजन, ५ में धन, तथा शून्य शेष बचे तो अशुभ फल जानना चाहिये।

पिंगल शब्द शकुन विचार -

यात्रा में किल्किल शब्द होने से उल्लास, चिल्पित शब्द होने से भोजन की प्राप्ति, खिट – खिट शब्द होने से बंधन और कुर्कुर शब्द होने से महाभय होता है।

छींक के अनुसार शकुन विचार –

छींक के शब्द को सुनकर अपने पैर की छाया नाप कर उसमें १३ और जोड़ दे, ८ से भाग दे, जो शेष रहे उसका फल इस प्रकार है - १ शेष बचे तो लाभ, २ से सिद्धि, ३ से हानि, ४ से शोक, ५ से भय, ६ से लक्ष्मी, ७ से दु:ख और ८ शेष होने पर निष्फल समझना चाहिये।

पुन: दिशा के अनुसार छिक्क का शकुन विचार करते है। पूर्व दिशा की छींक अशुभ है। आग्नेय कोण की छींक शोक और दु:ख देती है। दक्षिण की कष्ट देती है, नैर्ऋत्य कोण की छींक शुभ ह । पश्चिम दिशा की छींक मधुर भोजन कराती है, वायव्य धन देती है। उत्तर की क्लेश प्रदान करती है ईशान की शुभ , एवं अपनी छींक अधिक भयदायक होती है, उपर की छींक शुभ है। मध्य की छींक अधिक भयदायक होती है। आसन पर बैठते समय, सोते समय, दान के समय भोजन करते समय, बाई ओर या पीछे की छींक शुभ होती है।

छिपकिली के गिरने और गिरगिट के चढ़ने का फल –

स्थान	**फल**	**स्थान**	**फल**	**स्थान**	**फल**	**स्थान**	**फल**
शिरसि	राज्यलाभ	**कण्ठ में**	शत्रुनाश	दोनों हाथ पर	वस्त्र लाभ	वामपाद	नाश
नासाग्रे	व्याधि	**दोनों जंघो पर**	शुभ	वाम दक्षिण बन्ध	कीर्तिविनाश	अधरोष्ठ	ऐश्वर्य
वामभुजे	राजभिति	**दाहिने**	मनसन्ताप	दक्षिणपादे	गमन	द.भुजा	नृपतुल्यता
जानुद्वये	शुभासामन	**मणिबन्ध**	धननाश	उत्तर ओष्ठ पर	धननाश	पृष्ठ भाग	बुद्धिनाश
कटिभागे	अश्वलाभ	**केशान्त**	मरण	दोनों नेत्र पर	धन प्राप्ति	नासिका	बहु धन
गुल्फयो:	धनलाभ	**भ्रुवमध्य**	राज्य समक्ष	उदर पर	भूषण लाभ	मुख	मिष्ठान्न प्राप्ति
ललाटे	बन्धुदर्शन	**वाम कर्ण**	बहुलाभ	स्कन्ध	विजय	पादमध्य	धननाश
दक्षिणकर्णे	आयुवृद्धि	स्तनद्वय	दुर्भाग्य	हृदय	धन लाभ	पादान्ते	मरण कष्ट

चक्र द्वारा इसका शुभाशुभ फल को समझना चाहिये।

यात्रा में छींक के अनुसार शुभाशुभ चक्र -

पूर्व	अग्निकोण	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	वार
विघ्न	विलंब	उत्तम	मृत्यु भय	शुभ	आगमन	लाभ	विलंब	रविवार
लाभ	विलंब	मृत्युभय	लाभ	शुभ	उत्तम	अल्पलाभ	विलंब	सोमवार

मित्र आगमन	लाभ	विलंब	मृत्युभय	लाभ	विदेश यात्रा	सुख	लाभ	मंगलवार
सिद्धि	शारीरिक कष्ट	अरिष्ट	विलंब	मृत्यु	धननाश	चोरभय	कष्ट	बुधवार
चिन्ता	वार्ता	विलंब	उत्तम	चोरभय	मृति	कष्ट	वार्ता	गुरूवार
धनादि	कलह	मित्रागमन	धनलाभ	उत्तम	विलंब	मरण	कलह	शुक्रवार
धननाश	कष्ट	वार्ता	मित्रआगमन	उत्तम	शुभ	विलंब	दु:खदूर	शनिवार

अन्य अशुभ शकुन -

दवा के लिए जाता हुआ मनुष्य, कालाधान्य, कपास, सूखे तृण और सुखा हुआ गोबर, प्रस्थान के समय यदि सामने से आवे तो यात्रा में अशुभ जानना चाहिए।

ईंधन जलती हुई आग, गुड़, घी, शरीर में तेल लगायें, मलिन, मन्द और नंगा मनुष्य प्रस्थान के समय सम्मुख आवे तो अशुभ शकुन समझना चाहिये।

बिखरे बालों वाला मनुष्य, रोगी, गेरूआ वस्त्र पहने हुए, उन्मत्त कथरी लिए हुए, पापी, दरिद्र, नपुंसक प्रस्थान के समय सामने आये तो अशुभ जानना चाहिये।

लोह खण्ड, कीचड़, चर्म, केश बॉधता हुआ मनुष्य, नि:सार पदार्थ और खली सामने आने से प्रस्थान के समय अशुभ जाननी चाहिए।

चाण्डाल का मुर्दा, राजबन्धन का पालक, वध करने वाला, पापी और गर्भवती स्त्री के भी प्रस्थान के समय सामने आने पर अशुभ शकुन जानना चाहिए।

भुसी, भस्म, खोपड़ी, टूटै एवं खाली बर्तन, मारा हुआ सारंग पक्षी आदि का प्रस्थान के समय सम्मुख आना अशुभ है।

बोध प्रश्न –

१. यात्रा के समय यदि चार ब्राह्मणों का दर्शन हो तो –

क. शुभ शकुन होता है। ख. अशुभ शकुन होत है।

ग. शुभाशुभ घ. कोई नहीं

२. निम्न में अशुभ शकुन है –

क. तेल ख. ईन्धन ग. नमक घ. तीनों

३. यात्रा के समय वाम भाग में शुभ माने जाते है –

क. मृग ख. भालू ग. कोयल घ. मयूर

४. रविवार को पूर्व दिशा की यात्रा में छींक आने से क्या फल होता है –

क. लाभ ख. विघ्न ग. मित्र आगमन घ. विलम्ब

५. गुरूवार को पश्चिम दिशा की यात्रा में छींक का फल है –

क. लाभ ख. हानि ग. चोरभय घ. कोई नहीं

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि राजा से सम्बन्धित शकुन का विचार करते हुए आचार्य कथन है कि मन की प्रसन्नता, अंग लक्षणादि शुभ निमित्तों तथा पशु – पक्षी एवं आकाश जन्य शुभ शकुनों के साथ – साथ लग्न के बल का ज्ञान कर जो राजा प्रस्थान करता है उसकी अभीष्ट सिद्धि होती है। शकुन आदि की अपेक्षा मन की शुद्धि अधिक महत्वपूर्ण होती है। यदि यात्रा काल में मन की प्रसन्नता न हो तो यात्रा नहीं करनी चाहिये।

शुभ शकुन - ब्राह्मण (एक से अधिक ब्राह्मण), घोड़ा, हाथी, फल, अन्न, दूध, दही, गाय, सरसों , कमल, वस्त्र, वेश्या, वाद्य, मयूर, नीलकण्ठ, नेवला, बॅधा हुआ पशु, मॉस, शुभवाणी, पुष्प, ईख जल से भरा कलश, छत्र, मिट्टी, कन्या, रत्न, पाडी, श्वेत बैल, शराब, पुत्रसहित स्त्री, प्रज्वलित अग्नि, दर्पण, काजल, धुले वस्त्रों के साथ धोबी, मछली, सिंहासन, रूदन रहित शव (मृत शरीर), पताका, शहद, बकरा, अस्त्र, गोरोचन, भारद्वाज (चातक) पक्षी, पालकी, वेदध्वनि, मांगलिक गीत, अंकुश तथा खाली घड़ा यात्री के पीछे की तरह जाता हुआ यदि यात्रा के समय दिखलाई पड़े तो शुभफलदायक होता है।

अशुभ शकुन - बन्ध्या स्त्री, चमड़ा, भूसी, हड्डी , नमक, आग का अंगारा, इन्धन, नपुंसक, विष्ठा, तेल, पागल, चर्बी, औषधी, शत्रु, जटाधारी, सन्यासी, तृण, रोगी, वस्त्रहीन मानव, तेल उबटन लगाया हुआ व्यक्ति, विखरे बालों वाला स्त्री, पापी व्यक्ति, विकलांग, भूख से व्याकुल मनुष्य, रक्त, स्त्री का रजस्राव, गिरगिट , अपने घर का जलना, बिल्ली का युद्ध, छींक, काषाय वस्त्र धारण किये हुए मनुष्य, गुड़, मट्ठा, कीचड़, विधवा स्त्री, कुबड़ा , पारिवारिक कलह, शरीर से वस्त्र - छत्र आदि का गिरना, भैसों का युद्ध, काले रंग के अन्न, रूई, उल्टी, दाहिनी और गधे का शब्द, अधिक

क्रोधी प्राणी, गर्भिणी स्त्री, मुण्डित व्यक्त, गीला वस्त्र, अपशब्द का प्रयोग, अन्धा, बहरा, तथा इन सभी का यात्रा के समय दिखलाई पड़ना शुभ नहीं होता है। ये अशुभ शकुन कहे गये है।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

शकुन – शाब्दिक अर्थ – पक्षी।

अपशकुन - अशुभ

प्रस्थान – जाना

गर्भिणी – जिसके गर्भ में शिशु हो

आगमन – आना

विप्र – ब्राह्मण

अपशब्द – बुरा शब्द

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. घ
3. ग
4. ख
5. ग

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि – यात्रा प्रकरण
2. वशिष्ठ संहिता – यात्रा अध्याय
3. नारद संहिता – यात्रा अध्याय

5.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. प्रश्नमार्ग
2. पूर्वकालामृत

3. भृगु संहिता

4. अग्नि पुराण

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शकुन से आप क्या समझते है।
2. यात्राकालिक शुभ शकुन का वर्णन कीजिये।
3. अशुभ शकुन का उल्लेख कीजिये।
4. यात्रा में शकुन की महत्ता पर प्रकाश डालिये।
5. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार यात्राजनित शुभाशुभ शकुन का प्रतिपादन कीजिये।

इकाई - 6 यात्रा में कृत्याकृत्य विचार

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 यात्रा परिचय
6.4 यात्रा में कृत्याकृत्य विचार
6.5 सारांश
6.6 पारिभाषिक शब्दावली
6.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.9 सहायक पाठ्यसामग्री
6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -205 के द्वितीय खण्ड की छठी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – यात्रा में कृत्याकृत्य विचार। इससे पूर्व आपने यात्राजनित शकुन विचार से जुड़े विभिन्न तथ्यों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'यात्रा में कृत्याकृत्य' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

यात्रा में कृत्याकृत्य से तात्पर्य है – यात्रा काल में क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। कृत्य का अर्थ करना और अकृत्य का अर्थ नहीं करना होता है।

आइए इस इकाई में हम लोग 'यात्राकालिक कृत्याकृत्य' के बारे में तथा उसके विविध पक्षों को जानने का प्रयास करते है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- यात्रा को परिभाषित कर सकेंगे।
- यात्रा में क्या कृत्य है उसे समझा सकेंगे।
- यात्राकालिक अकृत्य तत्वों को समझ लेंगे।
- यात्राकालिक कृत्याकृत्य तत्वों को समझा सकेंगे।

6.3 यात्रा मुहूर्त्त परिचय

सामान्यतया एक निश्चित स्थान से दूसरे स्थान तक जाने को यात्रा से सम्बोधित किया जाता है। यात्रा प्रयोजनवशात् की जाती है जो मुख्यत: दो उद्देश्यों को लेकर होती है- सामान्योद्देश्य एवं विशेषोद्देश्य। यात्रा में कृत्य विचार से पूर्व हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि मूल रूप से यात्रा के कौन – कौन से मुहूर्त्त है। यात्रा का मुहूर्त्त है –

अश्विनी, पुनर्वसु, अनुराधा मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण और धनिष्ठा ये नक्षत्र यात्रा के लिए उत्तम होता है। रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, तीनों पूर्वा, ज्येष्ठा, मूल और शतभिषा ये नक्षत्र मध्यम एवं भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, स्वाति और विशाखा ये नक्षत्र निन्द्य है। तिथियों में द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी शुभ बतायी गयी है। यात्रा के लिए वारशूल, नक्षत्रशूल, दिक्शूल , चन्द्रवास और राशि से चन्द्रमा का विचार करना चाहिए कहा भी गया है कि –

दिशाशूल ले आओ वामें राहु योगिनी पीठ।
सम्मुख लेवे चन्द्रमा लावे लक्ष्मी लूट ।।

यात्रा मुहूर्त्त को आप चक्र में भी समझ सकते है –

श्रेणियॉ	नक्षत्र
उत्तम	अश्विनी, पुनर्वसु, अनुराधा मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण और धनिष्ठा
मध्यम	रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, तीनों पूर्वा, ज्येष्ठा, मूल और शतभिषा
निन्द्यनीय	भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, स्वाति और विशाखा

तिथि – २,३,५,७,१०,११,१३ ये तिथियॉ यात्रा में शुभ है।

6.4 यात्रा में कृत्याकृत्य विचार

यात्रा में कृत्य से तात्पर्य है – यात्रा काल में करणीय। यात्रा के लिए हमें ज्योतिष शास्त्र के अनुसार किन-किन तत्वों को जान लेना चाहिए। इसका विचार करते है- यात्रा के लिए सर्वप्रथम चन्द्रवास ज्ञान एवं उसका फल विचार नितान्त आवश्यक है। मेष, सिंह और धनु राशि का चन्द्रमा पूर्व दिशा में, वृष, कन्या और मकर राशि का चन्द्रमा दक्षिण दिशा में, तुला मिथुन व कुम्भ राशि का चन्द्रमा पश्चिम दिशा में कर्क, वृश्चिक और मीन राशि का चन्द्रमा उत्तर दिशा में वास करता है।

चन्द्रफल -

सम्मुख चन्द्रमा धन लाभ करने वाला, दक्षिण चन्द्रमा सुख सम्पत्ति देने वाला, पृष्ठ चन्द्रमा शोक सन्ताप देने वाला और वाम चन्द्रमा धननाश करने वाला होता है।

इसी क्रम में भद्रा का विचार –

सम्मुखे मृत्युलोकस्था पाताले च ह्यधोमुखी।
उर्ध्वस्था स्वर्गगा भद्रा सम्मुखे मरणप्रदा।।

मृत्युलोक की भ्रदा सम्मुख, पाताल लोक की अधोमुखी और स्वर्ग की उर्ध्वमुखी होती है। सम्मुख भद्रा मरण करती है।

जो व्यक्ति भद्रा के सम्मुख एक क्रोश भी जाता है, वह पुन: लौट कर आ नहीं पाता है, वैसे ही जैसे समुद्र में जाकर नदियॉ नहीं लौटती।

यात्रा विधि –

उद्धृत्य प्रथमत एव दक्षिणांघ्रि द्वात्रिंशत्पदमधिगत्य दिश्ययानम।
आरोहेत्तिलघृतहेमताम्रपात्रं दत्वाऽऽदौ गणकवराय च प्रगच्छेत्।।

यात्रा आरम्भ करते समय पहले अपनी दाहिने पैर को उठा कर बत्तिस पग चलकर गन्तव्य दिशा सम्बन्धि वाहन पर आरोहण करें तथा श्रेष्ठ दैवज्ञ को तिल – घी – सोना तथा ताम्रपात्र पहले प्रदान कर बाद में यात्रा करनी चाहिये।

दिक्शूल विचार –

शनिवार, सोमवार को पूरब दिशा, वृहस्पतिवार के दिन दक्षिण दिशा रविवार, शुक्रवार के दिन पश्चिम, बुध और मंगल के दिन उत्तर दिशा की यात्रा नहीं करनी चाहिये।

ऐशान्यं ज्ञे शनौ शूलमाग्नेयां गुरूसोमयोः।
वायव्यां भूमिपुत्रे तु नैर्ऋत्यां सूर्यशुक्रयोः।।

बुध और शनिवार के दिन ईशान कोण में सोमवार और वृहस्पतिवार के दिन आग्नेय कोण में, मंगलवार को वायव्य कोण में रवि और शुक्र को नैर्ऋत्य कोण में दिक्शूल रहता है। सम्मुख दिक्शूल गमन निषेध है।

दिक्शूल परिहार –

सूर्यवारे घृतं पीत्वा गच्छेसोमे पयस्तथा।
गुडमङ्गारवारे तु बुधवारे तिलानपि।।
गुरूवारे दधि प्राश्य शुक्रवारे यवानपि
माषान्भुक्त्वा शनौ वारे शूलदोषोपशान्तये।।

दिक्शूल में आवश्यक कार्यवश दोष की शान्ति के लिए रविवार को घृत, सोमवार को दूध, मंगलवार को गुड़, बुध को तिल, वृहस्पतिवार को दही, शुक्रवार को यव और शनिवार को उड़द भक्षण कर यात्रा करनी चाहिये।

यात्रा आरम्भ स्थान –

देवमन्दिर से अथवा गुरूगृह से अथवा अपने गृह से अथवा यदि कई स्त्रियॉ हो तो मुख्य स्त्री के गृह से पहले हविष्य खाकर, ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर मंगलमय वस्तुओं को देखता हुआ, मांगलिक शब्दों को सुनता हुआ राजा अथवा अन्य व्यक्ति यात्रा करें।

दिशानुरूप यात्रा विधि –

आज्यं तिलौदनं मत्स्यं पयश्चापि यथाक्रमम्।

भक्षयेद् दोहदं दिश्यमाशां पूर्वादिकां व्रजेत् ।।

पूर्व दिशा में घी, दक्षिण दिशा में तिलमिश्रित भात, पश्चिम दिशा में मछली और उत्तर दिशा में दूध पीकर यात्रा करना चाहिये।

तिथि के अनुरूप यात्रा विधि –

प्रतिपदा तिथि में मदार का पत्ता, द्वितीया में चावल का धोया हुआ जल, तृतीया में घी, चतुर्थी में इमली, पंचमी में मूँग, षष्ठी में सोना का धोवन, सप्तमी में पूआ, अष्टमी में रूचक, नवमी में शुद्ध जल, दशमी में गोमूत्र, एकादशी में यव का चावल, द्वादशी में खीर, त्रयोदशी में गुड़, चतुर्दशी में रक्त और पूर्णिमा में मूँग मिला भात खाकर यात्रा करनी चाहिये।

तिथि – दोष की निवृत्ति के लिए तिथियों में जो ग्रहणीय वस्तु है। इसका प्रयोग करके यात्रा करनी चाहिए।

मास परक यात्रा मुहूर्त्त –

इषमासि सिता दशमी विजया शुभकर्मसु सिद्धिकरी कथिता।
श्रवणर्क्षयुता सुतरां शुभदा नृपतेस्तु गते जयसन्धिकरी ।।

आश्विन मास में शुक्लपक्ष की दशमी को विजया तिथि कहते है। वह विजयादशमी सम्पूर्ण शुभ कर्मों में विजय देने वाली कही गई है। यदि श्रवण नक्षत्र से युत हो तो अत्यन्त शुभफल दायक होता है। राजा की यात्रा में विजय अथवा सन्धि कराने वाली होती है। वैश्य वर्ग इस तिथि को बहुत उत्तम मानता है और धूमधाम से लक्ष्मी पूजा करता है।

अयन के अनुसार यात्रा विचार –

चन्द्रार्कौ दक्षिणगतौ यायाद्याम्यां परां प्रति।
सौम्यायनगतौ यायात्प्राचीं सौम्यां दिशं प्रति ।।

सूर्य और चन्द्रमा दोनों यदि उत्तरायण मकरादि अर्थात् उत्तराषाढ़ा के 2 चरण से मिथुनान्त अर्थात् मृगशिरा के 2 चरण तक में हो तो उतृतर और पूर्व दिशा में यात्रा करें। यदि दोनों दक्षिणायन में हो तो दक्षिण पश्चिम दिशा में यात्रा उत्तम होती है। यदि सूर्य और चन्द्रमा का अयन भिन्न – भिन्न हो तो सूर्य के अयन की दिशा का यात्रा दिन में और चन्द्रमा के अयन की दिशा की यात्रा रात में करनी चाहिए। इसके विपरीत अर्थात् सूर्य के अयन की दिशा में रात में चन्द्र के अयन की दिशा में दिन में यात्रा करने से यात्री का वध होता है।

शुभ शकुन –

विप्राश्वेभफलान्नदुग्धदधिगोसिद्धार्थपद्माम्बरं

वेश्यावाद्यमयूरचाषनकुला बद्धैकपश्वामिषम्।
सद्वाक्यं कुसुमेक्षुपूर्णकलशच्छत्राणि मृत्कन्यका
रत्नोष्णीर्षासतोक्षमद्यससुततस्त्रीदीप्तवैश्वानराः ।।
आदर्शाञ्जनधौतवस्त्ररजका मीनाज्यांसिंहासनं
शावं रोदनवर्जितं ध्वजमधुच्छागास्त्रगोरोचनम्।
भारद्वाजनृयानवेदनिनदा मांगल्यगीताङ्कुशा
दृष्टः सत्फलदाः प्रयाणसमये रिक्तौ घटः स्वानुगः ।।

ब्राह्मण (एक से अधिक ब्राह्मण), घोड़ा, हाथी, फल, अन्न, दूध, दही, गाय, सरसों , कमल, वस्त्र, वेश्या, वाद्य, मयूर, नीलकण्ठ, नेवला, बॅधा हुआ पशु, मॉस, शुभवाणी, पुष्प, ईख जल से भरा कलश, छत्र, मिट्टी, कन्या, रत्न, पाडी, श्वेत बैल, शराब, पुत्रसहित स्त्री, प्रज्वलित अग्नि, दर्पण, काजल, धुले वस्त्रों के साथ धोबी, मछली, सिंहासन,रूदन रहित शव (मृत शरीर), पताका, शहद, बकरा, अस्त्र, गोरोचन, भारद्वाज (चातक) पक्षी, पालकी, वेदध्वनि, मांगलिक गीत, अंकुश तथा खाली घड़ा यात्री के पीछे की तरह जाता हुआ यदि यात्रा के समय दिखलाई पड़े तो शुभफलदायक होता है।

5.4 यात्रा में अकृत्य –

व्रतबन्धनदैवतप्रतिष्ठाकरपीडोत्सवसूतकासमाप्तौ
न कदापि चलेदकालविधुदघ्जनवर्षातुहिनेऽपि सप्तरात्रम्।।

उपनयन, देवताओं की प्रतिष्ठा, विवाह, उत्सव होलिका,दीपावली आदि सूतक जननाशौच – मरणाशौच इनकी असमाप्ति में जब तक ये सभी कार्य पूर्णरूपेण सम्पन्न न हो जायें तब तक कदापि यात्रा नहीं करनी चाहिए। एवं अकाल में विजली चमके, बादल बरसे, पाला पड़े तो भी रात तक २४ ×७ = १६८ घंटे तक यात्रा नहीं करनी चाहिये।

सम्मुख शुक्र दोष विचार –

उदेति यस्यां दिशि यत्र याति गोलभ्रमाद्वाथ ककुब्भसंघे।
त्रिधोच्यते सम्मुख एव शुक्रो यत्रोदितस्तां तु दिशं न यायात्।।

शुक्र जिस दिशा में उदित हो (अपने कालांश वश सूर्य से राश्यादि अधिक हो तो पश्चिम में, सूर्य की राश्यादि से शुक्र राश्यादि कम हो तो पूर्व दिशा में) अथवा गोलभ्रमणवश उत्तर या दक्षिण दिशा में हो तो अथवा कृत्तिका से मघा पर्यन्त ७ नक्षत्र पूर्व के, मघा से विशाखा तक ७ नक्षत्र दक्षिण के अनुराधा से श्रवण तक ७ नक्षत्र पश्चिम के , धनिष्ठा से भरणी तक ७ नक्षत्र उत्तर के दिग् नक्षत्र

कहे जाते है। इन नक्षत्रों पर स्थिति वश जिस दिशा में हो, इस प्रकार 3 प्रकार का शुक्र होता है। जिस दिशा में शुक्र हो उस दिशा में यात्रा नहीं करनी चाहिए।

प्रस्थान काल विशेष -

> **प्रस्थाने भूमिपालो दशदिवसमभिव्याप्य नैकत्रतिष्ठेत्**
> **सामन्त: सप्तरात्रं तदितरमनुज: पंचरात्रं तथैव।**
> **उर्ध्वं गच्छेच्छुभाहेऽप्यथ गमनदिनात् सप्तरात्राणिपूर्वं**
> **चाशक्तौ तद्दिनेऽसौ रिपुविजयमना मैथुनं नैव कुर्यात्॥**

जो राजा अपने देश का एकतन्त्र शासक हो, उसे प्रस्थान में १० दिनों तक एक जगह नहीं ठहरना चाहिए। सामन्त राजा ७ दिनों तक एक जगह न रूके और अन्य सामन्त राजा ७ दिनों तक एक जगह न रूके और अन्य साधारण जन ५ दिनों तक एक स्थान पर न ठहरें अर्थात् अपनी – अपनी अवधि के पहले ही उस पड़ाव से यात्रा आरम्भ कर दें। यदि किसी कारणवश कहे हुए दिनों से अधिक दिनों तक रूकना पड़े तो फिर शुभ मुहूर्त्त देखकर वहॉ से यात्रा करें।

अपने शत्रु पर विजय प्राप्ति की इच्छा रखने वाला राजा यात्रा दिन से ७ रात पहले से ही स्त्री के साथ मैथुन न करें। यदि ऐसा करें तो कम से कम यात्रा करने वाले दिन त्याज्य करना चाहिये।

यात्रा के निश्चित दिन से ३ दिन – रात पहले दुग्ध पान , ५ रात पहले क्षौर कर्म त्याज्य है। यात्रा के दिन मधु, तेल का सेवन और वमन निश्च ही त्याग देना चाहिये।

जो यात्रा के दिन तेल, गुड़, क्षार तथा पका हुआ मॉस खाकर यात्रा करता है, वह रोगी होकर लौटता है। स्त्री और ब्राह्मण का अनादर करके यात्रा करने वाले की मृत्यु होती है।

यात्रा में वर्षा तथा दुष्ट शकुन परिहार –

यदि पौष से लेकर 4 महीनों पौष,माघ, फाल्गुन, चैत्र में वर्षा हो तो अकाल वृष्टि कही जाती है। परन्तु जब तक पशुओं तथा मनुष्यों के पैर से पृथ्वी अंकित न हो जाये तब तक दोष नहीं होता। जब भूमि पर कीचड़ हो जाय तभी दोष होता है।

अल्प अकाल वृष्टि होने पर थोड़ा दोष, बहुत वृष्टि होन पर अधिक दोष होता है। जब मेघों का गर्जन अथवा वर्षा हो तो उस दोष की निवृत्ति के लिए राजा सुवर्ण का सूर्य और चन्द्रमा का बिम्ब बनवाकर ब्राह्मण को दान करें। यात्रा के समय अशुभ शकुन हो, तो राजा घी और सोना ब्राह्मण को देकर अपनी इच्छा के अनुसार यात्रा करें।

अशुभ शकुन -

> **बन्ध्या चर्म तुषास्थि सर्पलवणाङ्गारेन्धनक्लीबविट्**

तैलोन्मत्तवसौषधारिजटिलप्रव्राटतृणव्याधिताः ।
नग्नाभ्यक्तविमुक्तकेशपतिता व्यंगक्षुधार्ता असृक्
स्त्रीपुष्पं सरठः स्वगेहदहनं मार्जारयुद्धं क्षुतम् ।।
काषायी गुडतक्रपंकविधवाकुब्जाः कुटुम्बे कलि –
र्वस्त्रादेः स्खलनं लुलायसमरं कृष्णानि धान्यानि च ।।
कार्पासं वमनं च गर्दभरवो दक्षेऽतिरूट् गर्भिणी
मुण्डार्द्राम्बरदुर्वचोऽन्धबधिरोदक्यो न दृष्टाः शुभाः ।।

बन्ध्या स्त्री, चमड़ा, भूसी, हड्डी , नमक, आग का अंगारा, इन्धन , नपुंसक,विष्ठा, तेल, पागल, चर्बी, औषधी, शत्रु, जटाधारी, सन्यासी, तृण, रोगी, वस्रहीन मानव, तेल उबटन लगाया हुआ व्यक्ति, विखरे बालों वाला स्त्री, पापी व्यक्ति, विकलांग, भूख से व्याकुल मनुष्य, रक्त, स्त्री का रजस्राव, गिरगिट , अपने घर का जलना, बिल्ली का युद्ध, छींक, काषाय वस्र धारण किये हुए मनुष्य, गुड़, मट्ठा, कीचड़, विधवा स्त्री, कुबड़ा , पारिवारिक कलह, शरीर से वस्र - छत्र आदि का गिरना, भैसों का युद्ध, काले रंग के अन्न, रूई, उल्टी, दाहिनी और गधे का शब्द, अधिक क्रोधी प्राणी, गर्भिणी स्त्री, मुण्डित व्यक्त, गीला वस्र, अपशब्द का प्रयोग, अन्धा, बहरा, तथा इन सभी का यात्रा के समय दिखलाई पड़ना शुभ नहीं होता है। ये अशुभ शकुन कहे गये है।

अन्य शकुन –

गोधाजाहकसूकराहिशशकानां कीर्तनं शोभनं
नो शब्दो न विलोकनं च कपिऋक्षाणामतो व्यत्ययः।
नद्युत्तारभयप्रवेशसमरे नष्टार्थसंवीक्षणे
व्यत्यस्ताः शकुना नृपेक्षणविधौ यात्रोदिताः शोभनाः ।।

गोह, जाहक (अंगसंकोची पशु), सर्प एवं खरगोश का नामोच्चारण ही शुभ होता है, परन्तु इन का शब्द या दर्शन यात्रा के समय शुभ नहीं होता है। बन्दर और भालू का गोह आदि से विपरीत फल होता है, अर्थात बन्दर और भालू का शब्द (बोलना) और दर्शन होना शुभ तथा नामोच्चारण अशुभ होता है।

नदी पार करते समय, भय के उपस्थित होने पर या भय से भागते समय, गृहप्रवेश, युद्ध तथा नष्ट वस्तु के अन्वेषण के समय विपरीत शकुन ही शुभ अर्थात् अशुभ शकुन शुभ फलदायक तथा शुभ शकुन अशुभ फलदायक होते हैं तथा राजा के दर्शन सम्बन्धी कार्यों में यात्रा प्रसंग में बताये गये शुभ शकुन ही शुभदायक होते हैं।

वामांगे कोकिला पल्ली पोतकी सूकरी रला।

पिंगला छुच्छुका श्रेष्ठाः शिवाः पुरूषसंज्ञिताः ।।

कोयल, छिपकली, पोतकी, सूकरी रला (एक प्रकार का पक्षी) , पिंगला भैरवी, छछुन्दर, श्रृंगाली (गीदड़ी) तथा पुरूष संज्ञक पक्षी (कबूतर, खंजन, तित्तिर, हंसा आदि) यात्रा के समय वाम भाग में शुभ माने जाते है।

छिक्करः पिक्कको भासः श्रीकण्ठो वानरो रूरूः।

स्त्रीसंज्ञकाः काकऋक्षश्वानः स्युर्दक्षिणाः शुभाः ।।

छिक्कर मृग, हाथी का बच्चा, भास पक्षी, मयूर, बन्दर, रूरूमृग, स्त्री संज्ञक पक्षी कौवा, भालू तथा कुत्ता यात्रा के समय दक्षिण भाग में शुभ होते हैं।

शकुन में विशेष –

प्रदक्षिणगताः श्रेष्ठा यात्रज्ञयां मृगपक्षिणः ।

ओजा मृगा व्रजन्तोऽतिधन्या वामे खरस्वनः ।।

यात्रा के समय दक्षिण भाग में जाते हुए मृग और पक्षी शुभ फलदायक होते हैं। यदि विषम संख्यक मृग हों तो अत्यन्त शुभ होते है। वाम भाग में गधे का शब्द सुनाई पड़े तो वह भी यात्रा में शुभ होता है।

अशुभ शकुनों के परिहार –

आद्येऽपशकुने स्थित्वा प्राणानेकादश व्रजेत्।

द्वितीये षोडश प्राणांस्तृतीये न क्वचिद्व्रजत्।।

यात्रा के समय यदि प्रथम बार अपशकुन दिखलाई पड़े तो ११ प्राण (ग्यारह बार श्वास आने तक जितना समय हो उतने समय) तक रूक कर यात्रा करें। यदि द्वितीय बार अपशकुन दिखाई पड़े तो १६ प्राण तक रूक कर यात्रा करें। यदि तृतीय बार अपशकुन का दर्शन हो तो कहीं भी नहीं जाना चाहिये।

बोध प्रश्न -

१. यात्रा हेतु निम्नलिखित में उत्तम नक्षत्र है –

क. रोहिणी ख. मृगशिरा ग. चित्रा घ. स्वाती

२. यात्रा में तिथि शुभ है –

क. ७ ख. १ ग. ४ घ. ६

३. मृत्युलोक की भद्रा होती है –

क. सम्मुख ख. अधोमुखी ग. उर्ध्वमुखी घ. कोई नहीं

४. धनु राशि का चन्द्रमा किस दिशा में होता है –

क. दक्षिण दिशा में ख. पूर्व दिशा में

ग. उत्तर दिशा में घ. पश्चिम दिशा में

५. सोमवार को क्या भक्षण करने से दिक्शूल परिहार होता है –

क. घृत ख. गुड़ ग. तिल घ. दूध

6.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि सामान्यतया एक निश्चित स्थान से दूसरे स्थान तक जाने को यात्रा से सम्बोधित किया जाता है। यात्रा प्रयोजनवशात् की जाती है जो मुख्यत: दो उद्देश्यों को लेकर होती है- सामान्योद्देश्य एवं विशेषोद्देश्य। यात्रा में कृत्य विचार से पूर्व हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि मूल रूप से यात्रा के कौन – कौन से मुहूर्त्त है। यात्रा का मुहूर्त्त है –

अश्विनी, पुनर्वसु, अनुराधा मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण और धनिष्ठा ये नक्षत्र यात्रा के लिए उत्तम होता है। रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, तीनों पूर्वा, ज्येष्ठा, मूल और शतभिषा ये नक्षत्र मध्यम एवं भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, स्वाति और विशाखा ये नक्षत्र निन्द्य है। तिथियों में द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी शुभ बतायी गयी है। यात्रा में कृत्य ज्ञान के अन्तर्गत चन्द्रवास ज्ञान एवं उसका फल विचार नितान्त आवश्यक है। मेष, सिंह और धनु राशि का चन्द्रमा पूर्व दिशा में, वृष, कन्या और मकर राशि का चन्द्रमा दक्षिण दिशा में, तुला मिथुन व कुम्भ राशि का चन्द्रमा पश्चिम दिशा में कर्क, वृश्चिक और मीन राशि का चन्द्रमा उत्तर दिशा में वास करता है।

6.7 पारिभाषिक शब्दावली

प्रयोजन – उद्देश्य

मुहूर्त्त - मुह धातु में उरट प्रत्यय लगकर मुहूर्त्त शब्द बना है।

वास – रहना

कृत्य - करणीय

अकृत्य – अकरणीय

6.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. क
4. ख
5. घ

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि – यात्रा प्रकरण
2. वशिष्ठ सिद्धान्त – यात्रा प्रकरण
3. मुहूर्त्तपारिजात – यात्रा अध्याय
4. नारद संहिता – यात्रा प्रकरण

6.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. पूर्वकालामृत
2. प्रश्नमार्ग
3. भृगु संहिता
4. योग यात्रा

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. यात्रा पर टिप्पणी लिखिये।
2. यात्राकाल में कृत्य अवयवों का वर्णन कीजिये।
3. यात्राकालिक अकृत्य अवयव क्या है।
4. यात्रा के कृत्याकृत्य पक्षों का प्रतिपादन कीजिये।
5. यात्रा का महत्व प्रतिपादित कीजिये।

खण्ड - 3
यात्रा में शुद्धि विचार

इकाई - 1 गुरू एवं शुक्र विचार

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 यात्राकालिक गुरु एवं शुक्र परिचय
1.4 यात्रा में गुरु एवं शुक्र विचार
1.5 सारांश
1.6 पारिभाषिक शब्दावली
1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक पाठ्यसामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -205 के तृतीय खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – गुरू एवं शुक्र विचार। इससे पूर्व आपने ज्योतिष शास्त्रोक्त यात्रा से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'यात्रा कालिक गुरु एवं शुक्र विचार' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

गुरु एवं शुक्र विचार से तात्पर्य है कि यात्रा के समय हमें गुरु एवं शुक्र ग्रह की स्थिति का विचार करना होता है। उसके सम्मुख, वाम, पृष्ठ आदि इत्यादि अनेक विचार यात्रा के दौरान करना आवश्यक होता है।

अत: आइए इस इकाई में हम लोग 'यात्रा में गुरु एवं शुक्र विचार' के बारे में जानने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- गुरु विचार क्या है, समझा सकेंगे।
- यात्रा में शुक्र का विचार कैसे करते है, बता सकेंगे।
- यात्रा में गुरु सम्बन्धित विभिन्न तत्वों को समझ लेंगे।
- यात्राकालिक शुक्र के विभिन्न अवयवो को समझाने में समर्थ हो जायेंगे।

1.3 यात्राकालिक गुरू एवं शुक्र परिचय

ज्योतिष शास्त्रान्तर्गत यात्रा विधान में गुरु एवं शुक्र विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। इसमें मुख्यत: गुरु एवं शुक्र ग्रहों की उदयास्त स्थिति का पता लगाते हुए तदनुरूप यात्रा का विधान बतलाया गया है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से ग्रहों का सूर्य के साथ समागम अस्त कहलाता है तथा सूर्य से अपने-अपने कालांश तुल्य अन्तरित होने पर ग्रह उदित होते हैं। मेष राशि से कन्या राशि पर्यन्त ग्रह उत्तर गोल में तथा तुला से मीन पर्यन्त दक्षिण गोल में रहते हैं। ग्रहों की इन स्थितियों से आप सभी को परिचित होना चाहिए। अब यात्रा में गुरु एवं शुक्र विचार की बात करते हैं।

1.4 यात्रा में गुरु एवं शुक्र विचार

सामान्यतया हम जानते है कि गुरु और शुक्र के अस्त होने पर विवाह, यात्रा और मुण्डनादि कार्य नहीं किया जाता। विशेष रूप से गुरु एवं शुक्र के अस्त होन पर त्याज्य कर्म का विचार नीचे किया

जा रहा है। रेवती से छः नक्षत्र तक शुक्रान्ध होता है। इन नक्षत्रों का प्रयोग शुक्रास्त निवारणार्थ विशेष प्रयोजन में किया जाता है।

गुरु एवं शुक्र के अस्त होने पर त्याज्य कर्म विचार – कुआँ, तालाब, बावड़ी, उद्यान, गृहादि के आरम्भ एवं अवस्थान, व्रतारम्भोद्यापन, वधूप्रवेश, षोडशमहादान, सोमयादि सप्तमी, अष्टमी, नवमी को करिष्यमाण अष्टकाश्राद्ध, प्रथमक्षौरकर्म, नवान्नभक्षण, प्याउ लगाना, नवानश्रौतयज्ञ, प्रथमश्रावणीकर्म, वेदोपनिषद, महानाम्नीव्रत, काम्यवृषोत्सर्ग, त्रिपिण्डीश्राद्ध, अनैमित्ति शिशु संस्कार, देवप्रतिष्ठा, दीक्षामन्त्रोपनिषद, उपनयन, पाणिग्रहण (विवाह), मुण्डन, तीर्थदर्शन, सन्यास ग्रहण, चातुर्मास्याग, राजादर्शन, राज्याभिषेक, सकाम यात्रा, समावर्तन, कर्णवेध एवं दन्तरत्नभूषणादि कर्म गुरु एवं शुक्र के अस्त होने पर वर्जित है अर्थात् नहीं करना चाहिए। यात्रा काल में भी गुरु यदि अस्त हो तो शुभकार्य हेतु यात्रा वर्जित है।

यात्राजनित गुरु का विचार करते हुए आचार्य कथन है कि –

जीवे लग्नगते शुक्रे केन्द्रे वापि त्रिकोणगे।
गतो जयत्यरीन् राजाकृष्णवत्यां यथा व्रणम्।।

अर्थात् यात्रा के समय गुरु लग्न में हो और शुक्र केन्द्र में अथवा त्रिकोण ५,९ में हो तब गमन करने वाला अर्थात् यात्रा करने वाला शत्रु को उसी प्रकार नष्ट कर देता है जैसे कृष्णवती (एक जड़ी है) व्रण को नष्ट कर देती है।

स्वोच्चस्थे लग्नगे जीवे चन्द्रे लाभगते यदि।
गतोराजा रिपून्हन्ति पिनाकी त्रिपुरं यथा।।

गुरु उच्चराशि का होकर लग्न में बैठा हो तथा चन्द्रमा लाभ स्थान में बैठा हो तो इस प्रकार के लग्न में यात्रा करने वाला राजा उसी प्रकार शत्रुओं को मार डालता है जैसे भगवान शंकर ने त्रिपुरासासुर को मारा था।

मित्रभस्थे गुरौ केन्द्रे त्रिकोणस्थेऽथवा सिते।
शत्रून् हन्ति गतो राजा भुजंगं गरुडो यथा।।

मित्रगृही होकर गुरु केन्द्र में अथवा शुक्र त्रिकोण में हो तो ऐसी स्थिति में यात्रा करने वाला उसी प्रकार शत्रु को नष्ट कर देता है जैसे गरुड़ सर्पों को नष्ट कर देता है।

शुक्र विचार -

आचार्य रामदैवज्ञ ने मुहूर्त्तचिन्तामणि में तीन प्रकार से शुक्र को सम्मुख होने की बात कही है। यथा -

उदेति यस्यां दिशि यत्र याति गोलभ्रमाद्वाऽथ ककुब्भसंघे।
त्रिधोच्यते सम्मुख एवं शुक्रो यत्रोदितस्तां तु दिशं न यायात्।।

शुक्र जिस दिशा में उदित होता है उस दिशा में यात्रा करने से शुक्र सम्मुख होता है। अथवा गोल भ्रमण के द्वारा जब शुक्र उत्तर या दक्षिण गोल में होता है तो तत्तददिशाओं की यात्रा में सम्मुख होता है तथा कृत्तिकादि नक्षत्रों का पूर्वादि दिशाओं में न्यास कर जिस नक्षत्र पर शुक्र हो उस नक्षत्र की दिशा में यात्रा करने पर शुक्र सम्मुख होता है।

यात्रा काल में जब किसी भी प्रकार से शुक्र सम्मुख हो तो यात्रा नहीं करना चाहिए।

शुक्र के वक्र, अस्तंगत एवं नीचराशि में स्थित होने पर अन्य प्रदेश की यात्रा करने वाला राजा शत्रु के वशीभूत हो जाता है। यदि उक्त स्थिति में बुध अनुकूल हो तो राजा शत्रु को जीत लेता है। परन्तु बुध भी सम्मुख हो तो किसी भी प्रकार राजा की विजय नहीं होती। शुक्र सम्मुख जिस प्रकार दोषकारक होता है उसी प्रकार बुध भी दोषकारक होता है। महात्मा वशिष्ठ के अनुसार मंगल-बुध और शुक्र तीनों ही सम्मुख होने पर दोषकारक होते हैं। यथा -

प्रतिशुक्रं प्रतिभौमं गतो नृपः।
बलेन शक्रतुल्योऽपि हतसैन्यो निवर्तते।।

वशिष्ठ संहिता के अनुसार शुक्र विचार -

शुक्र विचार -

पश्चादभ्युदिते शुक्रे यायात्प्राचीं तथोत्तराम्।
प्राच्यामभ्युदिते तस्मिन्प्रतीचीं दक्षिणां दिशम्।।

शुक्र के पश्चिम उदय होने पर पूरब दिशा या उत्तर दिशा में यात्रा करना चाहिए। जबकि पूरब में उदित होने पर पश्चिम एवं दक्षिण दिशा की यात्रा श्रेष्ठ होती है।

सम्मुखे चन्द्रजे यत्र मार्गमध्योदिते यदि।
यावदस्तमिते तस्मस्तावत्तत्रैव संवसेत्।।

जिसके बुध यात्रा में सामने हो और मार्ग मध्य में उदित हुए हो तो जब तक अस्त न हो जाये तो वहां तब तक बसना चाहिए जब तक बुध उस राशि में स्थित रहे।

प्रतिशुक्रं प्रतिबुधं प्रतिभौमं गतो नरः।
बलेन शक्रतुल्योऽपि हतसैन्यो निवर्तते।।

शुक्र के सामने, बुध के सामने या मंगल के सामने यदि कोई यात्री यात्रा करता है तो इन्द्र के तुल्य बल होने पर भी उसकी सेना मारी जाती है। और उसे लौटना पड़ता है।

प्रवेशे स्वगृहे ग्रामे विवाहे देशविभ्रमे।

प्रतिशुक्रोवो दोषो नैव भौमज्ञयोरपि।

तीर्थयात्राविधौ तेषां प्रतिशुक्रं न विद्यते।।

अपने घर या ग्राम में प्रवेश के समय विवाह में या देश में अकाल के समय सामने शुक्र से उत्पन्न दोष मंगल या बुध का दोष नहीं होता। तीर्थयात्रा में भी सामने शुक्र का दोष नहीं लगता।

काश्यपेषु वशिष्ठेषु भृग्वत्र्यङिगसेषु च।

भरद्वाजेषु वत्सेषु प्रतिशुक्रं न विद्यते।।

कश्यप, वशिष्ठ भृगु, अंगिरा, भरद्वाज, वत्स, ऋषियों के गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति के लिए सामने शुक्र का दोष नहीं लगता।

अयमर्थमनुक्तत्वाच्छास्त्रे पैतामहे क्वचित्।

तस्मात्संमुखदोषोऽस्ति प्रतिशुक्रस्य सर्वदा।।

इस अर्थ के न कहे जाने पर कहीं पितामह शास्त्र में ऐसा अर्थ नहीं किया गया है इसलिए सामने शुक्र का दोष सबको होता है।

तद्दोषशमनार्थाय शान्तिं वक्ष्ये समासतः।

कृत्वा शान्तिं प्रयत्नेन पश्चात्कार्यं समाचरेत्।।

इस सम्मुख शुक्र के दोष के लिए संक्षेप में शान्ति प्रक्रिया को कह रहा हूँ। प्रयत्नपूर्वक शान्ति करके कार्य सम्पन्न करना चाहिए।

भृगोर्लग्ने भृगोर्वर्गे भृगोर्वारे भृगूदये।

उपोष्य भृगुवारेऽपि यावच्छुक्रोदयं व्रती।।

शुक्र का लग्न हो, शुक्र का वर्ग हों, शुक्र का वार हो और शुक्र उदित हो तो जब तक शुक्र उदित रहे। शुक्रवार के दिन व्यक्ति को व्रत करके उपवास करना चाहिए।

रजतेन सुशुद्धेन प्रतिमां कारयेद्भृगोः।

लिखेदष्टदलं पद्मं कांस्यपात्रे च तण्डुलैः।।

शुद्ध चाँदी के द्वारा शुक्र की प्रतिमा बनवानी चाहिए। कांस्य पात्र में चावलों से अष्टदल कमल का निर्माण करें।

शुक्लसूक्ष्माम्बरैर्वेष्ट्य प्रतिमां तत्र पूजयेत्।

शुक्लपुष्पाक्षतैर्गन्धैर्मुक्ताहारैर्विचित्रितैः।।

सफेद, सूक्ष्म प्रतिमा को लपेटकर पूजा करें। पुनः सफेद फूल अक्षत, गन्ध, मोती की माला आदि विचित्र पदार्थों से।

उपचाराणि कार्याणि शुक्रं ते अन्यदित्यृचा।
तन्मन्त्रेण जपं कुर्यात्सम्यगष्टोत्तरं शतम्।।

शुक्र का अन्यदित्य इस मन्त्र से उपचार आदि के द्वारा शुक्र की पूजा करनी चाहिए और इस मन्त्र का 108 बार जाप करना चाहिए।

कर्मान्ते तेन मन्त्रेण भक्त्या चाघ्र्यं प्रदापयेत्।
श्वेतगन्धाक्षतैः पुष्पैः क्षीरमिश्रितवारिभिः।।

उसी मन्त्र के द्वारा पूजन के अन्त में भक्तिपूर्वक सफेद गन्ध, अक्षत्र, फूल तथा दुग्ध मिश्रित जल के द्वारा अर्घ देना चाहिए।

दैत्यमन्त्री दिवादर्शी चोशना भार्गवः कविः।
श्वेतोऽथ मण्डली काव्यो विधिस्थो भृगवे नमः।।

दैत्य मन्त्री, दिवादर्शी, उशना, भार्गव, कवि, श्वेत, मण्डली, काव्य, विधि, भृगु इन नामों में चतुर्थी विभक्ति लगाकर प्रणाम करना चाहिए।

दत्त्वा ह्यर्घं प्रयत्नेन प्रार्थयेच्चैव भक्तितः।
अनेनैव च मन्त्रेण प्रांजलिः प्रणतः स्थितः।।

इसी मन्त्र के द्वारा अंजलि बनाकर खड़े होकर झुककर शुक्र को अर्घ दे करके प्रयत्नपूर्वक भक्तिभाव से प्रार्थना करनी चाहिए।

त्वत्पूजयाऽनया शुक्र मे संमुखसमुöवम्।
दोषं विनाशय क्षिप्रं रक्ष मां तेजसां निधे।।

हे शुक्र! आपकी इस पूजा के द्वारा आप मेरी वृद्धि को करें अर्थात् सन्मुख दोष का शीघ्र विनाश करें और हे तेजस्वी शुक्र! मेरी रक्षा करें।

इति प्राथ्र्य प्रयत्नेन प्रतिमा भूषणान्विता।
दैवज्ञायैव दातव्या श्वेताश्वसहितेन च।।

ऐसी प्रार्थना करके प्रयत्नपूर्वक प्रतिमा को आभूषण से युक्त करके ज्योतिषी को सफेद घोड़े सहित दे देना चाहिए।

शिष्टेभ्यो दक्षिणां दद्याद्यथावित्तानुसारतः।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुंजीत बन्धुभिः।।

शिष्ट व्यक्तियों को अपने धन के अनुसार दक्षिणा देनी चाहिए। पुनः ब्राह्मणों को भोजन करावें। अन्त में बन्धु-बान्धवों के सहित स्वयं भी भोजन करें।

एवं यः कुरुते सम्यक्प्रतिशुक्रप्रपूजनम्।
न तस्य सम्मुखो दोषो विजयी चार्थवान्भवेत्।।

जो इस प्रकार से ठीक ढंग से सन्मुख शुक्र का पूजन करता है उसे सन्मुख शुक्र का दोष नहीं लगता वह धनवान एवं विजयी होता है।

इतरेषां ग्रहाणां च पूजां कुर्यात्प्रयत्नतः।
तत्तत्संमुखजं दोषं तत्क्षणादेव नयति।।

शुक्र से अतिरिक्त अन्य ग्रहों की भी पूजा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए। उसी-उसी प्रकार से सन्मुख उत्पन्न दोषों को वह तक्षण ही नष्ट कर देता है।

सूर्याय कपिलां दद्याच्छंखं चन्द्रमसेऽपि च।
कुजाय वृषभं दद्यात्स्वर्णं दद्याद्बुधाय च।।

सूर्य के लिए कपिला गऊ तथा चन्द्रमा के लिए शंख, मंगल के लिए बैल तथा बुध के लिए सोने का दान करना चाहिए।

तनुरर्थाहयो धन्वी वाहनो मन्त्रसंज्ञकः।
शत्रुर्मार्गस्तथायुश्च मनोव्यापारसंज्ञकः।।

द्वादशभावों के नाम क्रमशः बताए जा रहे हैं। तनु1, अर्थ2, पराक्रम3, वाहन4, मन्त्र5, शत्रु6, मार्ग7, आयु8, मन9, व्यापार10।

लाभश्च व्ययसंज्ञश्च तन्वादीनां च संज्ञकाः।
खेटे तन्वादिभावेषु ज्ञेयं यातुः फलं त्विदम्।।

लाभ और व्यय संज्ञक, तनु आदि संज्ञक, ग्रहों के तनु आदि भावों में जो फल कहे गये हैं उन्हें यहां भी जानना चाहिए।

घ्नन्ति क्रूरास्त्रिषष्ठायभावान्हित्वा परान्सदा।
पुष्णन्ति सौम्यखचराः षष्ठाष्टान्त्यविना परान्।।

क्रूर ग्रह तीसरे, छठें और ग्यारहवें भाव को छोड़कर अन्य भावों में सदा कार्यों को नष्ट करते हैं। जबकि शुभग्रह छठें, आठवें और बारहवें के बिना दूसरे भावों को पुष्ट करते हैं।

लग्ने षष्ठाष्टमं हन्ति चन्द्रः शुक्रोऽस्तगः सदा।
मृत्युलग्नस्थितश्चन्द्रो यातुर्मृत्युप्रदः सदा।।

लग्न से छठें, आठवें, भावों में स्थित चन्द्रमा नष्ट करता हैं तथा शुक्र अस्त हो जाने पर सदैव कष्ट देता हैं मृत्यु लग्न में स्थित चन्द्रमा यात्रा करने वाले को सदैव मृत्यु देता हैं।

एवमुक्तप्रकारेण यात्रां नूनं करोति यः।
सर्वान्कामानवाप्नोति त्वरितन्तु न संशयः।।

इस प्रकार पूर्व में कहे गये के अनुसार जो निश्चित ही यात्रा करता है वो सम्पूर्ण कामनाओं को शीघ्र ही प्राप्त करता है इसमें सन्देह नहीं हैं।

उक्त्वा साधारणां यात्रां युद्धयात्रां ब्रवीमि ताम्।
व्रजन्ति ये नृपाः सूक्ष्मलग्ने ते यायिनः सदा।।

इस साधारण यात्रा को कहकर अब उस युद्ध यात्रा को कह रहा हूँ जिसमें यात्रा करने वाले राजा लोग सदैव सूक्ष्म लग्न में यात्रा करते हैं।

फलसिद्धिर्धिष्ण्यगुणैरग्रजानां भवेत्सदा।
योगलग्ने क्षितीशानां चैराणां शकुनैर्भृशम्।।

ब्राह्मणों के लिए फल की सिद्धि नक्षत्र के गुणों के अनुसार सदैव होती हैं। जबकि राजाओं के लिए योग, योगलग्न के अनुसार यात्रा का फल होता है जबकि चोरों को शकुन के अनुसार फल होता है।

मुहूर्त्तशक्तितोऽन्येषां निमित्तैश्च फलोदयः।
तत्तदुक्तप्रकारेण तस्माद्यात्रां करिष्यति।।

अन्य लोगों को यात्रा फल मुहूर्त की शक्ति से अथवा निमित्त के अनुसार प्राप्त होती है। उस-उस प्रकार से ऊपर कहे गये प्रकार के द्वारा यात्रा करनी चाहिए।

तिथिवारसनक्षत्रयोगेषु करणेषु च।
यात्रानुक्तेष्वथैतेषु चन्द्रताराबलेऽपि च।।

तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करणों में, जिसमें यात्रा न कही गयी हो उन मुहूर्तोंर में चन्द्र एवं तारा बल में थी।

योगलग्नयुता राज्ञां यात्रा च विजयप्रदा।
विचित्रान्योगलग्नांस्तान्सम्यग्वक्ष्ये समासतः।।

योग लग्न से युत राजा की यात्रा विजय देने वाली होती है। अतः विचित्र योग लग्नों के फल को ठीक ढंग से संक्षेप में कहेंगे।

गुरौ वीर्ये केन्द्रगते बुधे वा भृगुनन्दने।

विजयो नामयोगोऽयं यातुर्विजयदः सदा।।

गुरु के बलवान होकर केन्द्र में स्थित होने पर अथवा बुध एवं शुक्र के बलवान होकर केन्द्र में आने पर यह योग विजय नाम का होता है। यह यात्रा करने वाले को सदा विजय देता है।

लक्षदोषान्बुधो हन्ति सितो लक्षद्वयं बली।
कोटिदोषान्गुरुर्हन्ति एको वा केन्द्रगो यदि।।

बुध एक लाख दोष दूर करता है जबकि शुक्र बलवान होने पर दो लाख दोषों को दूर करता है किन्तु किसी भी केन्द्र में गया हुआ अकेला बृहस्पति एक करोड़ दोषों को नष्ट करता है।

स्वराशिगे बुधे लग्ने सिते वा सुरवंदिते।
नद्यावर्ताहयो योगो यातुरिष्टार्थसिद्धिदः।।

अपने राशि में बुध लग्न में स्थित हो अथवा शुक्र या गुरु अपने राशि का होकर लग्न में स्थित हों तो इस योग को नद्यावर्त योग कहा है जो यात्री के लिए अभीष्ट धन और सिद्धि को देने वाला होता है।

स्वांशसंस्थे बुधे लग्ने शुक्रे वा देवपूजिते।
शंखसंज्ञो महायोगो यातुः कीर्तिप्रदः सदा।।

अपने नवांश में स्थित गुरु, बुध एवं शुक्र यदि लग्न में स्थित हों तो यह शंख नामक महायोग होता है। और यह यात्रा करने वाले को सदैव यश प्रदान करता है।

स्वराशिस्वांशगे सौम्ये लग्नस्थे वा भृगोः सुते।
जीवे वा पद्मयोगोऽयं यातुः कल्याणदः सदा।।

अपने राशि और अपने नवांश में गये हुए लग्न मं े स्थित बुध, शुक्र या बृहस्पति हों तो यह पद्म नामक योग होता है जो यात्रा करने वाला का सदैव कल्याण करता है।

अधिमित्रगृहस्थे ज्ञे लग्नगे वा भृगोः सुते।

यात्रा में शुक्रदोष एवं परिहार

यात्रा में शुक्र का विचार करते हुए नारदपुराण में कहा गया है कि यदि शुक्र अस्त हो, तो यात्रा में हानि होती है। यदि वह सम्मुख हो, तो यात्रा करने वाले की पराजय होती है। सम्मुख शुक्र के दोष को कोई भी ग्रह नहीं हटा सकता है। किन्तु वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, भरद्वाज और गौतम-इन पाँच गोत्र वालों को सम्मुख शुक्र का दोष नहीं होता है।

मूढे शुक्रे कार्यहानिः प्रतिशुक्रे पराजयः।
प्रतिशुक्रकृतं दोषं हन्तुं शक्ताग्रहा नहि।।

वासिष्ठकाश्यपेयात्रिभारद्वाजाः सगौतमाः।
एतेषां पंचगोत्राणां प्रतिशुक्रो न विद्यते।।

यदि एक ग्राम के भीतर ही यात्रा करनी हो या विवाह में जाना हो या दुर्भिक्ष होने पर अथवा राजाओं में युद्ध होने पर तथा राजा या ब्राहमणों का कोप होने पर कहीं जाना पड़े, तो इन अवस्थाओं में सम्मुख शुक्र का दोष नहीं होता है। शुक्र यदि नीच राशि में या शत्रुराशि में अथवा वक्रगति या पराजित हो, तो यात्रा करने वालों की पराजय होती है। यदि शुक्र अपनी उच्चराशि (मीन) में हो, तो यात्रा में विजय होती है।

नीचगोऽरिगृहस्थो वा वक्रगो वा पराजितः।
यातुमंगप्रदः शुक्रः स्वोच्चस्थश्चेज्जयप्रदः।।

जब मंगल आदि ग्रहों में किन्हीं दो ग्रहों की एक राशि में अंश कला बराबर हो, तो दोनों में युद्ध समझा जाता है। उन दोनों में जो उत्तर रहता है, वह विजयी तथा दक्षिण रहने वाला पराजित होता है। इस प्रकार वहाँ यात्रा के अनेक योगों का वर्णन किया गया है।

बोध प्रश्न -

1. सैद्धान्तिक रीति से ग्रहों का उदयास्त किस पर निर्भर करता है।
   क. कालांश ख. सूर्य ग. चन्द्र घ. मंगल
2. यदि शुक्र सम्मुख हो तो क्या नहीं करना चाहिए।
   क. विवाह ख. यात्रा ग. मुण्डन घ. कोई नहीं
3. गुर्वस्त में क्या नहीं किया जाता है।
   क. विवाह ख. उपनयन ग. यात्रा घ. सभी
4. पाणिग्रहण संस्कार किसे कहते है।
   क. उपनयन ख. मुण्डन ग. कूप घ. विवाह
5. सूर्य मेष राशि से कन्या राशि तक किस गोल में रहते हैं।
   क. उत्तर ख. दक्षिण ग. पूर्व घ. पश्चिम
6. रेवती से क्रमशः छः नक्षत्र तक शुक्र क्या होता है।
   क. शुक्रोदय ख. शुक्रास्त ग. सम्मुख घ. शुक्रान्ध

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ज्योतिष शास्त्रान्तर्गत यात्रा विधान में गुरु एवं शुक्र विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। इसमें मुख्यत: गुरु एवं शुक्र ग्रहों की उदयास्त स्थिति का पता लगाते हुए तदनुरूप यात्रा का विधान बतलाया गया है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से ग्रहों का सूर्य के साथ समागम अस्त कहलाता है तथा सूर्य से अपने-अपने कालांश तुल्य अन्तरित होने पर ग्रह उदित होते हैं। मेष राशि से कन्या राशि पर्यन्त ग्रह उत्तर गोल में तथा तुला से मीन पर्यन्त दक्षिण गोल में रहते हैं। गुरु एवं शुक्र के अस्त होने पर त्याज्य कर्म विचार – कुआँ, तालाब, बावड़ी, उद्यान, गृहादि के आरम्भ एवं अवस्थान, व्रतारम्भोद्यापन, वधूप्रवेश, षोडशमहादान, सोमयादि सप्तमी, अष्टमी, नवमी को करिष्यमाण अष्टकाश्राद्ध, प्रथमक्षौरकर्म, नवान्नभक्षण, प्याउ लगाना, नवानश्रौतयज्ञ, प्रथमश्रावणीकर्म, वेदोपनिषद, महानाम्नीव्रत, काम्यवृषोत्सर्ग, त्रिपिण्डीश्राद्ध, अनैमित्ति शिशु संस्कार, देवप्रतिष्ठा, दीक्षामन्त्रोपनिषद, उपनयन, पाणिग्रहण (विवाह), मुण्डन, तीर्थदर्शन, सन्यास ग्रहण, चातुर्मास्याग, राजादर्शन, राज्याभिषेक, सकाम यात्रा, समावर्तन, कर्णवेध एवं दन्तरत्नभूषणादि कर्म गुरु एवं शुक्र के अस्त होने पर वर्जित है अर्थात् नहीं करना चाहिए। यात्रा काल में भी गुरु यदि अस्त हो तो शुभकार्य हेतु यात्रा वर्जित है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

गुर्वस्त – गुरु ग्रह का अस्त होना

शुक्रास्त - शुक्र ग्रह का अस्त होना

शुक्रान्ध – शुक्र का अन्धे वाली स्थिति में रहना। रेवती से क्रमश: ६ नक्षत्रों में शुक्रान्ध होता है।

कालांश – ग्रह अपने-अपने कालांश तुल्य उदित और अस्त होते हैं।

पाणिग्रहण – विवाह

उपनयन – यज्ञोपवीत

कर्णवेध – कान छेदने वाला संस्कार कर्णवेध होता है।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ख
3. घ

4. घ
5. क
6. घ

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि – यात्राध्याय
2. नारद संहिता – यात्रा प्रकरण
3. पूर्वकालामृत – यात्रा प्रकरण
4. प्रश्न मार्ग – यात्राध्याय

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. योग यात्रा
2. वशिष्ठ संहिता
3. नारद पुराण
4. गरूड़ पुराण

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. यात्रा में गुरु विचार का उल्लेख कीजिये।
2. यात्रा में शुक्र विचार का वर्णन कीजिये।
3. यात्रा काल में गुरु एवं शुक्र विचार क्यों आवश्यक है।
4. गुरु एवं शुक्र विचार के विभिन्न अवयवों को लिखिये।

इकाई - 2 यात्रा में ऋतुशुद्धि विचार

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 ऋतुशुद्धि परिचय

2.4 यात्रा में ऋतुशुद्धि विचार

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -205 के तृतीय खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – यात्रा में ऋतुशुद्धि विचार। इससे पूर्व आपने यात्रा में गुरु एवं शुक्र विचार से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'यात्रा में ऋतुशुद्धि विचार' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

ऋतुशुद्धि का सम्बन्ध स्त्रियों से है। यात्राकाल में उसकी शुद्धि –अशुद्धि का निरूपण कैसे करते है। इस इकाई में इसका विवेचन किया जा रहा है।

आइए इस इकाई में हम लोग 'यात्रा में ऋतुशुद्धि विचार' के बारे में जानने का प्रयास करते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ऋतुशुद्धि को परिभाषित कर सकेंगे।
- ऋतुशुद्धि के अवयवों को समझा सकेंगे।
- यात्रा में ऋतुशुद्धि लगने वाले कारणों को समझ लेंगे।
- ऋतुशुद्धि में कृत्याकृत्य को जान लेंगे।
- ऋतशुद्धि के सिद्धान्तों को समझ लेंगे।

2.3 ऋतुशुद्धि परिचय

प्रिय अध्येताओं! आप सभी जानते ही होंगे कि ज्योतिष शास्त्र का क्षेत्र इतना विहंगम है कि उसमें सृष्टि के समस्त तत्व समाहित है, तभी तो बिन्दु से सिन्धु की यात्रा इसमें द्रष्टव्य होती है। इस इकाई में ऋतुशुद्धि का विचार किया जा रहा है जिसका सम्बन्ध कन्याओं से है। आप सभी को यात्रा में ऋतुशुद्धि विचार से पूर्व ऋतुशुद्धि है क्या? इसे भी जान लेना चाहिए।

आचार्य रामदैवज्ञ मुहूर्त्तचिन्तामणि में कन्याओं के प्रथम रजोदर्शन (ऋतुस्राव) वर्तमान में उसे मासिक धर्म के नाम से जानते हैं, कब शुभ और कब अशुभ होता है। उसका वर्णन करते हुए कहते है कि - 'आद्यं रज: शुभं माघ: मार्गराधेष फाल्गुने। ज्येष्ठश्रावणयो: शुक्ले सद्वारे सत्तनौ दिवा।।' अर्थात् कन्याओं का सर्वप्रथम रजोदर्शन माघ, मार्गशीर्ष, वैशाख, आश्विन, फाल्गुन, ज्येष्ठ और श्रावण

मासों में शुक्ल पक्ष में, शुभ (सोम, बुध, गुरु और शुक्र) वारों में, शुभलग्नों में तथा दिन के समय शुभ होता है।

गर्भ स्त्रियों का फल है तथा ऋतुस्राव पुष्प है। अत: संस्कारों से पूर्व आचार्य ने रजोधर्म के शुभाशुभत्व का विचार किया है। आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार कन्याओं को १२ वर्ष से ४० वर्ष की आयु तक रजस्राव होता है। रजस्राव के उपरान्त ही स्त्रियों में गर्भधारण की क्षमता आती है। रजोधर्म की शुद्धि के अनुरूप ही गर्भ की पुष्टता होती है। अत: सर्वप्रथम इसके शुभाशुभ का विचार आवश्यक होता है।

ऋतुस्राव के शुभाशुभ नक्षत्र -

श्रुतित्रयमृदुक्षिप्रध्रुवस्वातौ सिताम्बरे।
मध्यं च मूलादितिभे पितृमिश्रे परेष्वसत्।।

श्रवण नक्षत्र से तीन अर्थात् श्रवण-धनिष्ठा-शतभिषा, मृदु-क्षिप्र-ध्रुव संज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी,पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी) और स्वाती नक्षत्रों में श्वेत वस्त्र पर प्रथम रजोदर्शन शुभ, मूल, पुनर्वसु, मघा और मिश्र संज्ञक (विशाखा, कृत्तिका) नक्षत्रों में मध्यम तथा शेष अन्य नक्षत्रों में प्रथम रजोदर्शन अशुभ होता है।

निषिद्ध काल –

भद्रानिद्रासंक्रमे दर्शरिक्तासन्ध्याषष्ठीद्वादशीवैधृतेषु।
रोगेऽष्टम्यां चन्द्रसूर्योपरागे पाते चाद्यं नो रजोदर्शनं सत्।।

भद्राकाल में, निद्रा समय, रविसंक्रान्ति में, अमावस्या, रिक्ता (४,९,१४) षष्ठी, द्वादशी एवं अष्टमी तिथियों में, वैधृति एवं व्यतिपात योगों में, रोग से ग्रसित रहने पर, सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण काल में प्रथम रजोदर्शन (ऋतुस्राव) शुभ नहीं होता है।

ऋतुमति स्नान मुहूर्त्त –

हस्तानिलाश्विमृगमैत्रवसुध्रवाख्यै:
शाक्रान्वितै: शुभतिथौ शुभवासरे च।
स्नायादथार्तववती मृगपौष्णवायु
हस्ताश्विधातृभिररं लभते च गर्भम्।।

हस्त, स्वाती, अश्विनी, मृगशीर्ष, अनुराधा, धनिष्ठा, ध्रुव संज्ञक और ज्येष्ठा नक्षत्रों में, शुभतिथियों एवं शुभ वारों में ऋतुमती स्त्री को स्नान करना चाहिए।

मृगशीर्ष, रेवती, स्वाती, हस्त, अश्विनी एवं रोहिणी नक्षत्रों में स्नान करने से स्त्री अतिशीघ्र गर्भ धारण करती है।

आधाने निषिद्धकाल –

गण्डान्तं त्रिविधं त्यजेन्निधनजन्मर्क्षे च मूलान्तकं
दास्रं पौष्णमघोपरागदिवसान् पातं तथा वैधृतिम्।
पित्रोः श्राद्धदिनं दिवा च परिघाद्यर्धं स्वपत्नीगमे
भान्युत्पातहतानि मृत्युभवनं जन्मर्क्षतः पापभम्।।

अर्थात् गर्भाधान हेतु अपनी पत्नी के साथ सहवास करते समय तीनों गण्डान्तों तिथि, नक्षत्र और लग्न गण्डान्त जन्म और मृत्युसंज्ञक ताराओं, मूल, भरणी, अश्विनी, रेवती एवं मघा नक्षत्रों, सूर्य-चन्द्रमा के ग्रहण दिवसों, व्यतिपात, वैधृति, योग माता-पिता के श्राद्ध दिन, दिन के समय, परिघयोग के पूर्वार्द्ध, योग, उत्पात से ग्रस्त नक्षत्र, जन्मनक्षत्र से अथवा जन्मराशि से अष्टम नक्षत्र एवं राशि तथा पापग्रह से युक्त लग्न एवं नक्षत्र का परित्याग करना चाहिए। अर्थात् उक्त कुयोगों का परित्याग कर शुभलग्न मुहूर्त्त में गर्भाधान करना चाहिये।

2.4 यात्रा काल में ऋतुशुद्धि विचार –

यात्रा करने से पूर्व यदि ऋतुस्राव आरम्भ हो जाय तो विशेष परिस्थिति में प्रथम तीन दिवसों का यात्रा हेतु त्याग करना चाहिये। उसके पश्चात् चौथे दिन केश धोकर यात्रा आरम्भ की जा सकती है। यदि संभव हो तो पूरे पाँच दिन के पश्चात् ही यात्रा करना शुभफलदायी होता है। सामान्यतः ये सभी लोग जानते हैं।

यदि यात्रा में ही ऋतुकाल आरम्भ हो जाय तो अन्य किसी दूसरे में स्पर्श करने से बचना चाहिए तथा गन्तव्य स्थल तक पहुँच कर सावधानीपूर्वक रहना चाहिए।

मुख्यतया निम्न प्रकार से यात्राकाल में बिन्दुवार ऋतुशुद्धि विचार करना चाहिए –

1. पाँच दिनों की प्रतीक्षा कर
2. मंगल शनि रवि एवं सोम वार को छोड़कर अन्य वारों में शुद्धि करनी चाहिए।
3. न्यूनतम तीन दिवसों तक सावधानीपूर्वक रहकर उसके पश्चात् शुद्धि करनी चाहिए।
4. रसोई, देवालय एवं अन्य किसी दूसरे व्यक्ति में स्पर्श करने से बचना चाहिए।
5. ऋतुमती कन्या अथवा स्त्री को एकाकी वास करना चाहिए।
6. ऋतुकाल में गृह के अन्य कार्य का भी यथासंभव त्याग करना चाहिए।

उक्त ये सभी कार्य ऋतुमती कन्या अथवा स्त्री को ध्यान में रखते हुए यात्रा में ऋतु सम्बन्धित शुद्धि आदि का विचार करना चाहिए।

यद्यपि आप ज्योतिष शास्त्र के होरा स्कन्ध से सम्बन्धित जितने भी उपलब्ध ग्रन्थ हैं उनका अवलोकन करेंगे तो पायेंगे कि उनमें यात्रा प्रकरण मुख्यत: राजा को ही केन्द्रित कर लिखा गया है। उसमें तिथि, वार, नक्षत्र, लग्नादि समस्त शुद्धि विचार का उल्लेख पर्याप्त मात्रा में मिलता है। किन्तु यात्राजनित ऋतुशुद्धि विचार नाममात्र के अर्थात् कुछ ही ग्रन्थों में प्राप्त होता है। अत: यात्राकाल की अन्य समस्त सामान्य योगों को भी यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

जैसे दिशाशूल का विचार ऋतुशुद्धि विचार में भी आवश्यक है -

दिशाशूल -

यात्रा के लिए दिक्शूल का विचार करते हुए नारदपुराण में कहा गया है कि शनि एवं सोमवार के दिन पूर्व दिशा की ओर न जाय, गुरुवार को दक्षिण न जाय, शुक्र और रविवार को पश्चिम न जाय तथा बुधवार और मंगलवार को उत्तर दिशा की यात्रा नहीं करनी चाहिए। यथा -

न मन्दून्दुदिने प्राचीं न व्रजेद् दक्षिणं गुरौ।
सितार्कयोर्न प्रतीचीं नोदीचीं ज्ञारयोर्दिने।।

इसी प्रकार ज्येष्ठा, पूर्वाभाद्रपद, रोहिणी और उत्तराफाल्गुनी-ये नक्षत्र क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में शूल होते हैं। तथा अनुराधा, हस्त, पुष्य, अश्विनी क्रमश: पूर्वादि दिशाओं के लिए सिद्ध नक्षत्र कहे गये हैं। इनमें यात्रा सर्वदा शुभ फल देने वाली होती है।

ललाट योग –

यदि यात्राकाल के लग्न में सूर्य हो तो पूर्व दिशा में जाने वाले को ललाट योग होने से यात्रा कदापि नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार ११,१२ शुक्र हो तो अग्निकोण वाले के लिए ललाट योग होगा। १० में मंगल दक्षिण के लिए, ८,९ राहु नैर्ऋत्य के लिए,७ में शनि पश्चिम के लिए। ५,६ चन्द्रमा वायव्य के लिए। ४ में बुध उत्तर दिशा के लिए और २,३ में गुरु स्थित हो तो ईशान कोण के लिए यात्रा करने वालों के लिए ललाट योग होगा। इन सभी ललाट योग का त्याज्य ऋतुशुद्धि के अन्तर्गत भी करना चाहिए।

शुक्र दोष –

उदेति यस्यां दिशि यत्र याति गोलभ्रमाद्वाऽथ ककुब्भसंघे।
त्रिधोच्यते सम्मुख एवं शुक्रो यत्रोदितस्तां तु दिशं न यायात्।।

शुक्र जिस दिशा में उदित होता है उस दिशा में यात्रा करने से शुक्र सम्मुख होता है। अथवा गोल भ्रमण के द्वारा जब शुक्र उत्तर या दक्षिण गोल में होता है तो तत्तददिशाओं की यात्रा में सम्मुख होता है तथा कृत्तिकादि नक्षत्रों का पूर्वादि दिशाओं में न्यास कर जिस नक्षत्र पर शुक्र हो उस नक्षत्र की दिशा में यात्रा करने पर शुक्र सम्मुख होता है।

यात्रा काल में जब किसी भी प्रकार से शुक्र सम्मुख हो तो यात्रा नहीं करना चाहिए। यात्रा में शुक्र का विचार सबके लिए आवश्यक होता है। विशेष रूप से स्त्रियों के लिए।

प्रतिशुक्रकृतं दोषं हन्ति शुक्रो ग्रहा नहि।
वशिष्ठः काश्यपेयोऽत्रिर्भरद्वाजः सगौतमः।।
एतेषां पंचगोत्राणां प्रतिशुक्रो न विद्यते।।

सम्मुख शुक्र का दोषोपशमन शुक्र ही करता है। अन्य ग्रहों से दोष दूर नहीं होता है। वशिष्ठ, अत्रि, कश्यप, भारद्वाज और गौतम इन ५ गोत्र वालों को शक्र के सम्मुख और वाम दक्षिणादि का दोष नहीं लगता।

एकग्रामे विवाहे च दुर्भिक्षे राजविप्लवे।
द्विजक्षोभे नृपक्षोभे प्रतिशुक्रो न विद्यते।।

एकग्राम, विवाह, दुर्भिक्ष, राज्यविप्लव, ब्राह्मण का शाप, राजा का क्रोध इनसे सम्बन्धित यात्रा में शुक्र का दोष नहीं लगता है।

इस प्रकार तिथि घात, वार घात, नक्षत्र घात आदि समस्त घात विचार भी सभी यात्राओं के लिए विचारणीय होता है। ऋतुशुद्धि विचार में भी उक्त ये समस्त विचार आवश्यक होते हैं।

यात्रा के लिए विशेषयोग

लग्न और ग्रहों की स्थिति से नाना प्रकार के यात्रा-योग होते हैं, राजाओं (क्षत्रियों) को योगबल से ही अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। ब्राहमणों को नक्षत्रबल से तथा अन्य मनुष्यों को मुहूर्त्तबल से इष्टसिद्धि होती है। इसी प्रकार तस्करों को शकुल बल से अपने अभीष्ट की प्राप्ति होती है। जैसा कि नारदपुराण में कहा है-

यात्रायोग विचित्रास्तान् योगान् वक्ष्ये यतस्ततः।
फलसिद्धिर्योगलग्नाद्राज्ञां विप्रस्य धिष्ण्यतः।
मुहूर्त्तशक्तितोऽन्येषां शकुनैस्तस्करस्य च।।

नारदपुराण में यात्रा योग का कथन करते हुए कहा गया है कि शुक्र, बुध और बृहस्पति-इन तीनों में कोई भी यदि केन्द्र या त्रिकोण में हो, तो 'योग' कहलाता है। यदि उनमें दो ग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हो, तो 'अधियोग' कहलाता है और यदि तीनों ग्रह केन्द्र (1, 4, 7, 10) या त्रिकोण (9, 5) में हो, तो योगाधियोग कहलाता है। योग में यात्रा करने वालों का कल्याण होता है। अधियोग में यात्रा करने से विजय प्राप्त होती है और योगाधियोग में यात्रा करने वाले को कल्याण, विजय तथा सम्पत्ति का भी लाभ होता है।

केन्द्रत्रिकोणे ह्येकेन योगः शुक्रज्ञसूरिणाम्।
अभियोगो भवेद् द्वाभ्यां त्रिभिर्योगाधियोगकः।।
योगेऽपि यायिनां क्षेममधियोगे जयो भवेत्।
योगाधियोगे क्षेमं च विजयार्थविभूतयः।।

अन्य योगों का वर्णन करते हुए वहाँ कहा गया है कि लग्न से दसवें स्थान में चन्द्रमा, षष्ठ स्थान में शनि और लग्न में सूर्य हों, तो इस योग में यात्रा करने वाले राजा को विजय तथा शत्रु की सम्पत्ति भी प्राप्त होती है। इसी प्रकार अनेक योगों का वर्णन प्राप्त होता है।

बोध प्रश्न -

1. सर्वप्रथम रजोदर्शन किस मास में शुभ होता है।
   क. माघ   ख. मार्गशीर्ष   ग. फाल्गुन   घ.सभी
2. आयुर्वेद के अनुसार ऋतुस्राव का समय है।
   क. १२ से ५०   ख. १२-४० वर्ष   ग.१०-२५   घ. कोई नहीं
3. निम्न में शुभ वार है -
   क. मंगल   ख. रवि   ग. शनि   घ. गुरु
4. सद्वारे शब्द का अर्थ क्या है।
   क. शुभ दिन में   ख. अशुभ दिन में   ग. रविवार   घ. भौमवार
5. पूर्व दिशा की यात्रा किस दिन नहीं करनी चाहिए।
   क. शनि एवं सोम   ख. मंगल   ग. बुध   घ. शनि

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ऋतुशुद्धि का सम्बन्ध कन्याओं से है। आचार्य रामदैवज्ञ मुहूर्त्तचिन्तामणि में कन्याओं के प्रथम रजोदर्शन (ऋतुस्राव) वर्तमान में उसे मासिक धर्म के नाम से जानते हैं, कब शुभ और कब अशुभ होता है। उसका वर्णन करते हुए कहते है कि -

'आद्यं रज: शुभं माघ: मार्गराधेष फाल्गुने। ज्येष्ठश्रावणयो: शुक्ले सद्वारे सत्तनौ दिवा।।'

अर्थात् कन्याओं का सर्वप्रथम रजोदर्शन माघ, मार्गशीर्ष, वैशाख, आश्विन, फाल्गुन, ज्येष्ठ और श्रावण मासों में शुक्ल पक्ष में, शुभ (सोम, बुध, गुरु और शुक्र) वारों में, शुभलग्नों में तथा दिन के समय शुभ होता है। गर्भ स्त्रियों का फल है तथा ऋतुस्राव पुष्प है। अत: संस्कारों से पूर्व आचार्य ने रजोधर्म के शुभाशुभत्व का विचार किया है। आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार कन्याओं को १२ वर्ष से ४० वर्ष की आयु तक रजस्राव होता है। रजस्राव के उपरान्त ही स्त्रियों में गर्भधारण की क्षमता आती है। रजोधर्म की शुद्धि के अनुरूप ही गर्भ की पुष्टता होती है। अत: सर्वप्रथम इसके शुभाशुभ का विचार आवश्यक होता है। श्रवण नक्षत्र से तीन अर्थात् श्रवण-धनिष्ठा-शतभिषा, मृदु-क्षिप्र-ध्रुव संज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी,पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी) और स्वाती नक्षत्रों में श्वेत वस्त्र पर प्रथम रजोदर्शन शुभ, मूल, पुनर्वसु, मघा और मिश्र संज्ञक (विशाखा, कृत्तिका) नक्षत्रों में मध्यम तथा शेष अन्य नक्षत्रों में प्रथम रजोदर्शन अशुभ होता है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

ऋतुशुद्धि – ऋतुशुद्धि का सम्बन्ध कन्याओं से है।

रजस्राव - ऋतुस्राव

रिक्ता – ४,९,१४ तिथियाँ

जया – ३,८,१३ तिथि

मिश्र संज्ञक – विशाखा एवं कृत्तिका नक्षत्र

शुभाशुभ – शुभ और अशुभ

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. घ
2. ख

3. घ
4. क
5. क

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य:, टिका – पं. सत्यदेव शर्मा
2. मुहूर्त्तपारिजात – आर्ष ग्रन्थ, टिका – कपिलेश्वर शास्त्री/ प्रोफे. रामचन्द्र पाण्डेय
3. नारद संहिता – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट।
4. प्रश्न मार्ग – अवधबिहारी त्रिपाठी।

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. वशिष्ठ संहिता
2. पूर्वकालामृत
3. योग यात्रा
4. सुगम ज्योतिष

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ऋतुशुद्धि से क्या तात्पर्य है।
2. यात्राकाल में ऋतुशुद्धि का वर्णन कीजिये।
3. ऋतुशुद्धि के विभिन्न अवयवों पर प्रकाश डालिये।
4. यात्रा में ऋतुशुद्धि का महत्व बतलाइये।
5. गर्भाधान काल का शुभाशुभ निर्णय कीजिये।

इकाई - 3 यात्रा काल में दिक्शुद्धि आदि विचार

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 दिक्शुद्धि परिचय

3.4 यात्राकाल में दिक्शुद्धि आदि विचार

3.5 सारांश

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -205 के तृतीय खण्ड की तीसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – यात्रा काल में दिक्शुद्धि आदि विचार। इससे पूर्व आपने यात्रा में ऋतुशुद्धि विचार से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'दिक्शुद्धि' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

दिक्शुद्धि से तात्पर्य है- दिशा शुद्धि। यात्रा में किस दिशा में कब जाना है और कब नहीं। उसमें शुद्धि-अशुद्धि का ज्ञान जानना चाहिए।

आइए इस इकाई में हम लोग 'दिक्शुद्धि' के बारे में तथा उसके अन्य विभिन्न रूपों को जानने का प्रयास करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- दिक्शुद्धि को परिभाषित कर सकेंगे।
- दिक्शुद्धि के अवयवों को समझा सकेंगे।
- यात्रा में दिक्दोष को बता पायेंगे।
- यात्रा में दिक्शुद्धि का निरूपण कर सकेंगे।

3.3 यात्रा काल में दिक्शुद्धि परिचय

दिक्शुद्धि से तात्पर्य है – दिशा शुद्धि। यात्रा काल में किस दिशा में गमन करना चाहिए, किसमें नहीं। इसका शुद्धि –अशुद्धि विवेक आम जनमानस के ज्ञानार्थ ऋषियों ने अपने तपोबल के आधार पर बतलाया है। सर्वप्रथम आपको दिशाओं का ज्ञान होना चाहिए। दिशायें कितनी होती है इसके बारे में आचार्य कथन है कि -

पश्चिमोत्तर मध्यस्था वायवी वायुकोणकः।
ईशानकोण ऐशानी विदिक् पूर्वोत्तरान्तरे।।

अर्थात् पूर्व दक्षिण के बीच अग्निकोण (आग्नेयी) कहलाती है, दक्षिण पश्चिम के मध्य निऋति कोण (नैऋती), पश्चिम उत्तर के मध्य वायुकोण (वायव्यी), और उत्तर पूर्व के बीच ईशान कोण (ऐशानी) विदिक् कहलाती है। इस प्रकार पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ऐशान्य, और उर्ध्व (ऊपर), अधः (नीचे) ये दश (१०) दिशायें बतलायी गयी हैं।

दिशा निर्णय -

आग्नेयी पूर्वदिग्ज्ञेया दक्षिणादिक् च नैऋती।
वायवी पश्चिम दिक् स्यादैशानी च तथोत्तरा।।

अग्निकोण की गणना पूर्व दिशा में, वायु कोण की पश्चिम दिशा में, नैऋत कोण की दक्षिण दिशा में, ईशानकोण की उत्तर दिशा में गणना होती है।

अथ दिशाशूल

नैव पूर्वदिशं गच्छेत् ज्येष्ठायां शनि-सोमयोः।
तथैव दक्षिणा-माशां नैवाजपदभे गुरौ।।
पश्चिमाशां ब्रजत्रैव रोहिण्यां रवि-शुक्रयोः।
कुजे-बुधेऽर्यमर्क्षे च नो ब्रजेदुत्तरां दिशम्।।

ज्येष्ठा नक्षत्र शनि और सोमवार में पूर्व दिशा न जाय, पूर्वभाद्रपदा और गुरुवार में दक्षिण दिशा न जाय, रोहिणी और रवि शुक्रवार में पश्चिम न जाय, उत्तराफाल्गुनी और मंगल बुधवार में उत्तर दिशा न जाय।

दिक्शूलपरिहार

रविवारे घृतं भुक्त्वा सोमवारे पयस्तथा।
गुडं मंगलवारे तु बुधवारे तिलानपि।।8।।
बृहस्पतौ दधि प्राश्य शुक्रवारे यवाँस्तथा।
माषान् भुक्त्वा शनौ गच्छेत् शूलदोषोपशान्तये।।

रविवार में घृत, सोम में दूध, मंगल में गुड़, बुध में तिल, बृहस्पति में दही, शुक्र में जब, शनिवार में उड़द आहार करके यात्रा करै तो शूल का दोष नहीं होता है।

दिशा, वार तथा नक्षत्र दोहद

यात्रा आदि सभी कार्यों में निमित्त, शकुन, लग्न एवं ग्रहयोग की अपेक्षा भी मनोजय अर्थात् मन को वश में तथा प्रसन्न रखना प्रबल है। इसलिए मनस्वी पुरुषों के लिए यत्पूर्वक फलसिद्धि में मन की प्रसन्नता ही प्रधान कारण होता है। मन के प्रसन्न होने पर जो कार्य किया जाता है, वह सफल होता है। जैसा कि नारदपुराण में कहा गया है-

निमित्तशकुनादिभ्यः प्रधानं हि मनोदयः।

तस्मान्मनस्विनां यत्नात्फलहेतुर्मनोजय।।

जिसे जिस वस्तु की विशेष चाह होती है, जिसकी प्राप्ति से मन प्रसन्न हो जाता है, वह उसका 'दोहद' कहलाता है। पूर्व दिशा की अधिष्ठात्री देवी चाहती है कि लोग घृतमिश्रित अन्न खायँ। रविवार का अधिपति चाहता है कि लोग रसाला (सिखरन-मिसिरी और मसाला मिला हुआ दही) खायँ। इसी प्रकार अन्यवारादि में भी जानना चाहिए। दोहद भक्षण करने से उस वार आदि का दोष नष्ट हो जाता है। इसलिए नारदपुराण में दिशा, वार तथा नक्षत्र आदि का दोहद बतलाते हुए कहा गया है कि यदि राजा घृतमिश्रित अन्न खाकर पूर्व दिशा की यात्रा करे, तिलचूर्ण मिलाया हुआ अन्न खाकर दक्षिण दिशा को जाय और घृतमिश्रित खीर खाकर उत्तर दिशा की यात्रा करे, तो निश्चय ही वह शत्रुओं पर विजय पाता है।

घृतान्नं तिलपिष्टान्नं मत्स्यानां घृतपायसम्।
प्रागादिक्रमशो भुक्त्वा याति राजा जयत्यरीन्।।

इसी प्रकार रविवार को सज्जिका, मिसिरी और मसाला मिला हुआ दही, सोमवार को खीर, मंगलवार को काँजी, बुधवार को दूध, गुरुवार को दही, शुक्रवार को दूध तथा शनिवार को तिल और भात खाकर यात्रा करे, तो शत्रुओं को जीत लेता हैं।

सज्जिका परमान्नं कांचकं च पयो दधि।
क्षीरं तिलोदनं भुक्त्वा भानुवारादिषु क्रमात्।।

नक्षत्र दोहद बतलाते हुए वहाँ कहा गया है कि अश्विनी मे कुल्मा... (उडद का एक भेद), भरणी में तिल, कृत्तिका में उड़द, रोहिणी में गाय व दही, मृगशिरा में गाय का घी, आद्र्रा में गाय का दूध, आश्लेषा में खीर, मघा ... नीलकण्ड का दर्शन, हस्त में षाष्टिक्य (साठी धान्य) के चावल का भात, चित्रा ... प्रियंगु (कँगनी), स्वाती में अपूप (मालपूवा), अनुराधा में फल (आम, केला आदि), उत्तराषाढ़ में शाल्य (अगहनी धान्य का चावल), अभिजित में हविष्य श्रवण में कृशरान्न (खिचड़ी), धनिष्ठा में मूँग, शतभिषा में जौ का आटा, उत्तरभाद्रपद में खिचड़ी तथा रेवती में दही-भात खाकर राजा यदि हाथी, घोड़े, रथ या नरयान (पालकी) पर बैठकर यात्रा करे, तो वह शत्रुओं पर विजय पाता है और उसका अभीष्ट सिद्ध होता है।

अथ तारा विचार

जन्मभाद्दिनभं यावत् संख्यैव नवतष्टिता।

तारा तत्राद्यपंचाद्रित्रिसंख्या न शुभप्रदाः।।

जन्म नक्षत्र से दिन नक्षत्र पर्यन्त गिनकर जो संख्या हो उसमें नौ का भाग देने से जो शेष बचे वही तारा होती है। उनमें 1, 3, 5, 7, वीं तारायें शुभ नहीं होतीं अर्थात् 2, 4, 6, 8, 9, वीं तारायें शुभ हैं।।

उदाहरण-जैसे बाबू ''शिवशंकर'' चौधरी को पुनर्वसु नक्षत्र में पश्चिम दिशा की यात्रा करनी

है तो यहाँ नाम के आद्य अक्षर (शि) के अनुसार जन्मनक्षत्र शतभिषा हुआ, इसलिए शतभिषा से दिन के नक्षत्र (पुनर्वसु) तक गिनने से 11 हुए इनमें 9 का भाग देने से 2 बचा अर्थात् दूसरी तारा हुई दूसरी शुभ है इसी प्रकार और भी समझना।

अथ तारा नाम

जन्माख्य सम्पद्-विपदः क्षेमप्रत्यरि-साधकाः।
वध-मैत्रा-तिमैत्रा-ख्यास्तारा नामसदृक्फलाः।।

जन्म, सम्पत् विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध, मैत्र, अतिमैत्र, ये तारायें अपने 2 नाम तुल्य फल देती हैं।

विशेष

प्रथमे च द्वितीये च पर्यये प्रत्यरिः शुभः।
जन्मतारा विवाहादौ मांगल्ये च शुभा स्मृता।।

प्रथम और द्वितीय आवृत्ति की प्रत्यरि 5वीं तारा शुभ है, और जन्म की तारा तीनों आवृत्ति की विवाहादि शुभ कार्य में शुभ हैं।

दुष्ट तारा की शान्ति

प्रत्यरौ लवणं दद्यात् शाकं दद्यात् त्रिजन्मसु।
गुडं विपत्तितारायां वधे च तिलकांचनम्।।

(आवश्यक कार्य में) प्रत्यरि (5) तारा में लवण दान करै, जन्म (1) तारा में शाक, विपत् (3) तारा में गुड़, और बध (7) तारा में तिल और सुवर्ण दान करै तो शुभ होता है।

अथ चन्द्रविचार

जन्मराशिं समारभ्य या संख्या चन्द्रभावधिः।
चन्द्रस्तत्संख्यको ज्ञेयस्तथा च तत्फलं वदेत्।।

जन्मराशि से इष्ट दिन की चन्द्र राशि पर्यन्त गिनने से जो संख्या हो तत्संख्यक चन्द्रमा समझना और तदनुसार उसका फल कहना।

अथ चन्द्रफल

आद्ये चन्द्रे शुभं ज्ञेयं मनस्तोषं द्वितीयके।
तृतीये धनसम्पत्तिश्चतुर्थे कलहागमः।।

पंचमे ज्ञानवृद्धिः स्यात् षष्ठे धान्यधनागमः।
सप्तमे राजसम्मानमष्टमे प्राणसंशयः।।
नवमे धर्मलाभः स्यात् सिद्धिस्तु दशमे भवेत्।
एकादशे जयो नित्यं द्वादशे सर्वथा क्षतिः।।

1 प्रथम चन्द्र में शुभ, 2 में मानस तुष्ट, 3 में धन सम्पत्ति, 4 में कलह (लड़ाई), 5 में ज्ञान की वृद्धि, 6 में धन धान्य प्राप्ति, 7 में राजा से सम्मान, 8 में प्राणसंशय, 9 में धर्मलाभ, 10 में सिद्धि, 11 में जय लाभ और 12वें चन्द्रमा में सर्वथा हानि होती है।

चन्द्रमा जानने का उदाहरण-जैसे बाबू ''जगन्नाथ'' चौधरी को रोहिणी नक्षत्र वृषराशि के चन्द्रमा में पूर्व दिशा की यात्रा करनी है तो नामाद्यक्षर (ज) के अनुसार जन्मराशि मकर हुई मकर में इष्ट दिन के वृष पर्यन्त गिनने से 5 संख्या हुई तो 5वां चन्द्रमा सिद्ध हुआ पांचवां चन्द्रमा का फल ज्ञान की वृद्धि है इसलिए शुक्लपक्ष में पांचवां चन्द्रमा शुभ हुआ ऐसे ही सर्वत्र जानना।

विशेष

कृष्णपक्षे द्वितीयस्तु पंचमो नवमोऽशुभः।
कृष्णे बलवती तारा शुक्ले पक्षे बली शशी।।

कृष्ण पक्ष में 2, 5, 9वें चन्द्र अशुभ है। कृष्ण पक्ष में तारा बलवती होती है और शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बली होता है।

राशिवश से पूर्वादि दिशाओं में चन्द्रमवास

मेषे च सिंहे धनुषीन्द्रभागे वृषे सुतायां मकरे च याम्ये।
कुम्भे तुलायां मिथुने प्रतीच्यां कर्कालिमीनेषु तथोत्तरायाम्।।
मेष सिंह धनु पूरब चन्द्र, दक्षिण कन्या वृष मकरन्द।
घट तुल मिथुन पश्चिमाधीन, उत्तर कर्कट वृश्चिक मीन।।

चन्द्रमा का वर्ण और फल

अलौ-मेष-सिंहेऽरुणोयुद्धकारी-सितोगोवणिककर्कटर्क्षेषु सिद्धिः।
धनु-र्मीन युग्मेषु पीतःशशी श्रीर्धटस्त्रीमृगाख्येषु कृष्णोभयं च।।

मेष, सिंह, वृश्चिक में चन्द्रमा अरुण (लाल) वर्ण और युद्ध कारक होते हैं, वृष, कर्क तुला में स्वेत वर्ण और सिद्धिदायक होते हैं मिथुन, धन मीन में पीत, वर्ण और लाभदायक होते हैं तथा कन्या मकर कुम्भ में कृष्ण वर्ण और भयकारक होते है।

सम्मुख आदि चन्द्र का फल

संमुखे चार्थलाभः स्पाद् दक्षिणे सुखसंपदः।
पृष्ठे च शोकसन्तापौ वामे चन्द्रे धनक्षतिः।।

सम्मुख चन्द्रमा में धनलाभ, दक्षिण (दाहिने) भाग में सुख और सम्पत्ति, पृष्ठ दिशा के चन्द्रमा में शोक और सन्ताप और वाम चन्द्र में धनक्षति होती है।

अथ घात-चन्द्र-तिथि-वार-नक्षत्र

जन्मेन्दु-नन्दार्क-मघाश्चमेषे वृषे शनिः पंचम-हस्त-पूर्णाः।
स्वाती च युग्मे नवचन्द्रभद्राः कर्केऽनुराधा-बुध-युग्म-भद्राः।।
सिंहे जया षड्रविजश्च मूलं पूर्णा-शनिर्दिक्-श्रवणः स्त्रियां च।
गुरु-त्रि-रिक्ताःशतभं तुलायां नन्दालिके रेवती-सप्त-शुक्राः।।
चापे चतुःशुक्र-जया-भरण्यो मृगेऽष्टमो रोहिणि भौम-रिक्ताः।
कुम्भे जयार्द्रा गुरु शम्भु घातो झषे भृगुश्चान्त्य भुजंगपूर्णाः।।

प्रथम चन्द्र, नन्दातिथि, रविवार, मघानक्षत्र ये भेष राशि के घातक हैं। इसी प्रकार वृष राश्यादिके घातचन्द्र आदि समझना स्पष्टार्थ-नीचे चक्र देखें-

अथ स्त्रीघातचन्द्र

मही-नाग-शैलांक-वेदाग्नि-तर्काः कराशाशिवाः पाण्डवाश्चित्रभानुः।
कुरंगीदृशां घातचन्द्रास्त्व-जादेर्नृनार्योः समं घात तिथ्यादिकं च।।

मेष आदि राशिवाली स्त्री के क्रम से 1, 8, 7, 9, 4, 3, 6, 2, 10, 11, 5, 12, ये घात चन्द्र होते हैं तथा तिथि, वार नक्षत्र ये पुरुष स्त्री के समान ही घातक होते हैं।

विशेष

तीर्थ-यात्रा-विवाहान्नप्राशनो - पनयादिषु।

सर्वमांगल्यकार्येषु घातचन्द्रं न चिन्तयेत्।।

तीर्थयात्रा विवाह अन्नप्राशन उपनयन, आदि सभी मंगलकार्य में घातचन्द्र का दोष नहीं है।

युद्धै चैव विवादे च कुमारी पूजने तथा।

राजसेवाप्रयाणादौ घातचन्द्रं विवर्जयेत्।।

युद्ध में विवाद में कुमारी पूजन में राजसेवा में तथा यात्रादि में घातचन्द्र वर्जित है।

अथ दुष्टचन्द्रादि शान्ति

चन्द्रे शंख1 च तारासु2 लवणं तण्डुलास्तिथौ।

धान्यं दुष्टर्क्षवारे च दद्याल्लग्ने तिलांस्तथा।।

दुष्टचन्द्र में शंख, दुष्टतारा में लवण, अशुभ तिथि मेंर चावल तथा अशुभ नक्षत्र और वार में धान्य और अनिष्ट लग्न में तिल दान करके आवश्यक कार्य करे।

अथ योगिनीवास

पूर्वस्यां योगिनी ज्ञेया नवभ्यां प्रतिपद्यपि।

अग्निकोणे तृतीयायामेकादश्यां तथैव च।।

त्रयोदश्यां च पंचम्यां दक्षिणस्यां शिवा स्मृता।

द्वादश्यां च चतुर्थ्यां च नैऋत्यां चैव योगिनी।

चतुर्दश्यां च षष्ठ्यां च पश्चिमायां च योगिनी।

सप्तम्यां पूर्णिमायां च वायव्यां पार्वती समृता।।

दशम्यां च द्वितीयायामुत्तरस्यां शिवप्रिया।

ऐशान्यां च तथाऽष्टम्यां दर्शे च योगिनी स्मृता।।

प्रतिपदा और नवमी में पूर्व दिशा में, 3, 11 में अग्निकोण में, 5, 13 तिथि में दक्षिण में, 12, 4 में नैऋतकोण में, 14, 6 में पश्चिम में पूर्णिमा, सप्तमी में वायुकोण में, 10-2 में उत्तर में, और अष्टमी अमावस्या में ईशानकोण में योगिनी का वास है।

अथ योगिनीफल

सुखदा योगिनी वामे पृष्ठे वांछितदायिनी।

दक्षिणे धनहन्त्री च सम्मुखे मरणप्रदा।।

यात्रा में वाम भाग में योगिनी सुख देती है पृष्ठभाग में वांछित पदार्थ देती है। दाहिनें योगिनी पड़े तो धन को नाश करती है, संमुख पड़े तो मरण देती है।

अथकालवास

शनौ शुक्रे गुरौ ज्ञे च भौमे सोमे रवौ क्रमात्।

पूर्वादिषु दिशास्वत्र कालवासे निगद्यते।।

शनि में पूर्व में, शुक्र में अग्निकोण में, बृहस्पति में दक्षिण, बुध में नैरृत कोण, मंगल में पश्चिम, सोम में वायुकोण और रविवार में उत्तर दिशा में काल रहता है।

अथ राहुनिवास

धनुरलिमकरार्के राहुरास्ते च पूर्वे, सघटसफरमेषे दक्षिणे दिग्विभागे।

वृषमिथुनकुलीरे पश्चिमस्थश्च कालो, हरियुवतितुलायामुत्तरे सैंहिकेयः।।

वृश्चिक धन मकर के सूर्य में पूर्व, कुम्भ मीन मेष के सूर्य में दक्षिण, वृष मिथुन कर्क के सूर्य में पश्चिम तथा सिंह कन्या तुला के सूर्य में उत्तर दिशा में राहु वास (काल) रहता है।

सम्मुखे दक्षिणे राहौ स्त्री यात्रां परिवर्जयेत्।

गृहारम्भप्रवेशौ च सम्मुखे चैव वर्जयेत्।।

सम्मुख दक्षिण राहु में स्त्री यात्रा न करै और गृहारम्भ गृह प्रवेश केवल सम्मुख राहु (काल) में त्याग करै।

यात्रा में शुभ नक्षत्र

अश्विनी रेवती ज्येष्ठा पुष्यो हस्तः पुनर्वसुः।

मैत्रं मृगशिरो मूलं यात्रायामुत्तमाः स्मृताः।।

अश्विनी, रेवती, ज्येष्ठा, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा, मूल ये यात्रा में उत्तम है।

यात्रा में अशुभ नक्षत्र

भरणी कृत्तिका ऽश्लेषा विशाखा चोत्तरात्रयम्।

मघाऽऽर्द्रा चाशुभा ज्ञेयास्तथा चान्याश्च मध्यमाः।।

भरणी, कृत्तिका, श्लेषा, विशाखा, तीनों उत्तरा, मघा, आर्द्रा, ये यात्रा में अशुभ है। और उपरोक्त से शेष मध्यम है।

अथ सर्वदिग्गमनार्ह नक्षत्र

कराश्विनीचान्द्रघनिष्ठमैत्रैः पौष्णामराचार्य चतुभुजैश्च।

प्रयाति सर्वां ककुभं मनस्वी नरः कृतार्थो गृहमेति भूयः।।

हस्त, अश्विनी, मृगशिरा, घनिष्ठा, अनुराधा, रेवती, पुष्य, श्रवण इन सर्वदिग्द्वार नक्षत्रों में सब दिशाओं में जाने से मनुष्य कृतकार्य होकर सकुशल घर आता है।

यात्रा में विहित लग्न

कन्यायां मिथुने लग्ने मकरे च तुलाधरे।
यात्रा चन्द्रबले कार्या शकुनंच विचारयेत्।।

कन्या, मिथुन मकर तुला इन लग्नों में चन्द्रमा का बल देखकर यात्रा करै और शकुन विचार करे।

यात्रा में वर्ज्य

जन्मतारेष्टमे चन्द्रे संक्रान्तौ सूर्यगे विधौ।
भद्रागण्डान्तरिक्तासु षष्ठ्यां नैव व्रजेत्क्वचित्।।
द्वादश्यामपि चाष्टम्यां न गच्छेत्प्रस्थितोऽपि सन्।
जन्ममासे न गन्तव्यं राज्ञा विजयमिच्छता।।

जन्मतारा, अष्टम चन्द्र, संक्रान्ति दिन (उपलक्षण से मासांत और मासादि दिन) अमावस्या, भद्रा, गण्डान्त, रिक्ता और षष्ठी में कदापि यात्रा न करै, तथा द्वादशी अष्टमी और जन्म मास में प्रस्थान करने पर भी विजय चाहने वाला यात्रा न करै।

लग्नशुद्धि

केन्द्रत्रिकोणद्विगताश्च यौम्यास्तृतीयलाभारिगताश्च पापाः।
एवं यदि स्याद् गमने नरस्य तदार्थसिद्धिः पुनरागमश्च।।

शुभग्रह केन्द्र (1/4/7/10) त्रिकोण (5/9) और 2 इन स्थानों में हो और पापग्रह 3, 11, 6, इन स्थानों में हो तो ऐसे लग्न में यात्रा करने से अर्थसिद्धि सहित भवन में सकुशल आता है।

अथ सर्वांकज्ञान

तिथिं वारंच नक्षत्रमेकीकृत्य त्रिधा पुनः।
द्वित्रि-चतुर्भिः गुणितं रस-सप्ताष्ट-भाजितम्।।
आदि शून्ये भवेद्धानिर्मध्यशून्ये दरिद्रता।
अन्त्यशून्ये भवेन्मृत्युः सर्वांकी विजयी भवेत्।।

शुल्कपक्षकी प्रतिपदा से तिथि संख्या, रव्यादि-दिन संख्या और अश्विनी से नक्षत्र संख्या जो हो सबके योग करके 3 जगह धरै और क्रम से 2, 3, 4 से गुणा करके 6, 7, 8 से भाग देने से प्रथम स्थान में शून्य हो तो हानि, मध्य में शून्य हो तो दरिद्रता, अन्त्य में शून्य बचे तो मृत्यु होती है और तीनों जगह अंक बचे तो विजयी होता है यह युद्धयात्रा में विचार करना चाहिए।

कुम्भकुम्भांषकौ त्याज्यौ सर्वथा यत्नतो बुधैः।
तत्र प्रयातुर्नृपतेरर्थनाशः पदे पदे।।

कुम्भ लग्न और कुम्भ के नवांश यात्रा में अवश्य त्याग करै क्योंकि उसमें यात्रा करने से पद पद में अर्थनाश होता है।

त्र्यहं क्षीरं च पंचाहं क्षौरं सप्तदिनं रतम्।
वर्ज्यं यात्रादिनात् पूर्वमशक्तस्तद्दिनेऽपि च।।

यात्रा दिन से तीन दिन पूर्व दूध, 5 दिन पूर्व क्षौर और सात दिन पूर्व मैथुन त्याग करै ऐसा न हो सके तो यात्रा दिन में तो अवश्य त्याग करे।

सम्मुखे दक्षिणे शुक्रे युद्धयात्रां विवर्जयेत्।
रेवत्यादेर्मृगं यावदन्धः शुक्रो न दोषकृत्।।

सम्मुख और दक्षिण शुक्र में युद्धयात्रा न करे, परंच रेवती से मृगशिर पर्यन्त शुक्र अन्ध रहते हैं उनमें सम्मुख शुक्र दोष कारक नहीं होते हैं।।

यात्रा में प्रशस्त लग्न

दिग्द्वारभे लग्नगते प्रशस्ता यात्रार्थदात्री जयकारिणी च।
हानिं विनाशं रिपुतो भयं च कुर्यात्तथा दिक्प्रतिलोमलग्ने।।

दिग्द्वार राशि (''मेष सिंह धनु पूर्व चन्द्र'' इत्यादि) लग्न में यात्रा प्रशस्त है और धन जय को देने वाली होती है और पृष्ठ लग्न में (जैसे मेष लग्न में पश्चिम दिशा जाने में) हानि, धननाश और शत्रु से भय होता है।

समयफल

उषःकालो विना पूर्वां गोधूलिः पश्चिमां विना।
विनोत्तरं निशीथः स्याद्याने याम्यां विनाऽभिजित्।।

उषः काल में पूर्व दिशा में न जाय, तथा गोधूलि में पश्चिम न जाय, अर्धरात्रि में उत्तर न जाय और अभिजित (मध्याह) में दक्षिण न जाय।

सम्मुखस्थः शशी हन्ति दोषं तिथिभवारजम्।
सर्वे दोषा विनश्यन्ति मनश्शुद्धिर्यदा नृणाम्।।

यदि चन्द्रमा सम्मुख रहे तो तिथि नक्षत्र वार सम्बन्धी सब दोष नाश हो जाते है। और यदि मनःशुद्धि हो तो सब दोषों का नाश होता है।

उपरोक्त विषय का विचार

पुरात् पुरे यदैकस्मिन् दिने यात्राप्रवेशकौ।
तदा तु योगिनीशूलप्रतिशुक्रान्न चिन्तयेत्।।

यदि एक ही दिन में अपने स्थान से यात्रा करके गन्तव्य स्थान में पहुँच सके तो दिक्शुल योगिनी संमुख शुक्र आदि का विचार नहीं करना चाहिए।

सर्वारम्भ लग्नशुद्धि

सर्वकर्माणि कार्याणि शुभे लग्ने शुभांशके।
त्रिलाभारिगतैः पापैः शुभैः केन्द्रत्रिकोणगैः।।

शुभ राशि के लग्न में शुभ राशि के नवांश में पापग्रह 3, 6, 11 स्थान में, तथा शुभग्रह 1, 4, 7, 10, 5, 9 स्थान में हो तो सब कार्य का आरम्भ करना शुभ है।

अथ सर्वारम्भमुहूर्त

व्ययाष्टशुद्धोपचये लग्नगे शुभदृग्युते।
चन्द्रे त्रिषड् दशायस्थे सर्वारम्भः प्रसिद्धति।।

जन्मराशि या जन्मलग्न से उपचय (3, 6, 10, 11) राशि लग्न में हो और द्वादश तथा अष्टमस्थान शुद्ध (ग्रहवर्जित) हो और चन्द्रमा 3, 6, 10, 11 इन स्थान में हो तो सभी कार्य का आरम्भ शुभ होता है।

बोध प्रश्न -

1. दिशाओं की संख्या कितनी कही गयी है।

   क. १०   ख. ४   ग.१६   घ.१८

2. रविवार को किस दिशा में दिशाशूल होता है।

   क. उत्तर   ख.दक्षिण   ग. पश्चिम   घ. पूर्व

3. मंगलवार का दिशाशूल परिहार किसके सेवन से होता है।

   क. गूड़   ख. दूध   ग. तिल   घ. घी

4. उर्ध्व एवं अध: ये किसके प्रकार है।

   क. दिक् के   ख.छाया के   ग. अग्रा के   घ. चरखण्ड के

5. निम्न में उपचन स्थान कौन सा है।

   क. २,५,८,११ ख. ३,६,१०,११ ग. १,४,७,१० घ. कोई नहीं

6. उत्तर दिशा की यात्रा किस वार में वर्जित है।

   क. मंगल ख. बुध ग. दोनों घ. दोनों नहीं

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि दिक्शुद्धि से तात्पर्य है – दिशा शुद्धि। यात्रा काल में किस दिशा में गमन करना चाहिए, किसमें नहीं। इसका शुद्धि –अशुद्धि विवेक आम जनमानस के ज्ञानार्थ ऋषियों ने अपने तपोबल के आधार पर बतलाया है।

पूर्व दक्षिण के बीच अग्निकोण (आग्नेयी) कहलाती है, दक्षिण पश्चिम के मध्य निऋति कोण (नैऋती), पश्चिम उत्तर के मध्य वायुकोण (वायव्यी), और उत्तर पूर्व के बीच ईशान कोण (ऐशानी) विदिक् कहलाती है। इस प्रकार पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ऐशान्य, और उर्ध्व (ऊपर), अधः (नीचे) ये दश (१०) दिशायें बतलायी गयी हैं। अग्निकोण की गणना पूर्व दिशा में, वायु कोण की पश्चिम दिशा में, नैऋत कोण की दक्षिण दिशा में, ईशानकोण की उत्तर दिशा में गणना होती है। ज्येष्ठा नक्षत्र शनि और सोमवार में पूर्व दिशा न जाय, पूर्वभाद्रपदा और गुरुवार में दक्षिण दिशा न जाय, रोहिणी और रवि शुक्रवार में पश्चिम न जाय, उत्तराफाल्गुनी और मंगल बुधवार में उत्तर दिशा न जाय। दिशाशूल का परिहार बताते हुए आचार्य कहते है कि रविवार में घृत, सोम में दूध, मंगल में गुड़, बुध में तिल, बृहस्पति में दही, शुक्र में जब, शनिवार में उड़द आहार करके यात्रा करै तो शूल का दोष नहीं होता है। यात्रा आदि सभी कार्यों में निमित्त, शकुन, लग्न एवं ग्रहयोग की अपेक्षा भी मनोजय अर्थात् मन को वश में तथा प्रसन्न रखना प्रबल है। इसलिए मनस्वी पुरुषों के लिए यत्पूर्वक फलसिद्धि में मन की प्रसन्नता ही प्रधान कारण होता है। मन के प्रसन्न होने पर जो कार्य किया जाता है, वह सफल होता है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

दिक् – दिशा। ये १० होती है।

अग्नि कोण - पूर्व एवं दक्षिण का कोण

वायव्य कोण – उत्तर एवं पश्चिम का कोण

उर्ध्व – उपर

अध: – नीचे

विदिशा – चार कोण को विदिशा के रूप में जानते है।।

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ग
3. क
4. क
5. ख
6. ग

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्तचिन्तामणि – यात्राप्रकरण
2. नारद संहिता – यात्राध्याय
3. प्रश्नमार्ग – यात्राप्रकरण
4. वृहद्वकहड़ाचक्र – अवधबिहारी त्रिपाठी।

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. वशिष्ठ संहिता
2. भृगु संहिता
3. पूर्वकालामृत
4. योगयात्रा

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दिक्शुद्धि से आप क्या समझते है।
2. यात्रा काल में दिशा शुद्धि का ज्ञान कैसे करते हैं।
3. दिशाशूल का विचार कैसे किया जाता है।
4. दिशाशुद्धि का महत्व प्रतिपादित कीजिये।

इकाई - 4 त्रिविधयात्रा में शुद्धि विचार

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 त्रिविध यात्रा परिचय

4.4 त्रिविध यात्रा में शुद्धि विचार

4.5 सारांश

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -205 के तृतीय खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – त्रिविध यात्रा में शुद्धि विचार। इससे पूर्व आपने यात्रा में शुद्धि से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'त्रिविध यात्रा में शुद्धि' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

कतिपय आचार्यों द्वारा यात्रा के त्रिविध भेद बतलाये गये हैं। उन त्रिविध यात्राओं में शुद्धि का विचार कैसे करते है। इसका वर्णन इस इकाई में किया जा रहा है।

आइए इस इकाई में हम लोग 'त्रिविध यात्रा में शुद्धि' के बारे में जानने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- त्रिविध यात्रा को परिभाषित कर सकेंगे।
- त्रिविध यात्रा में शुद्धि के अवयवों को समझा सकेंगे।
- 'त्रिविध यात्रा में लगने वाले शुद्धि-अशुद्धि के कारणों को समझ लेंगे।
- यात्रा में कृत्याकृत्य को जान लेंगे।

4.3 त्रिविध यात्रा में शुद्धि विचार

त्रिविध यात्रा से तात्पर्य है – तीन प्रकार से की गयी यात्रा। पूर्व के इकाईयों में आपने दो मुख्य यात्रा के प्रकार सामान्य, विजयपरक यात्रा का अध्ययन कर लिया है। तीसरा यात्रा प्रयोजन के अनुसार होता है। जिस कार्य के उद्देश्य से यात्रा की जा रही हो, उसमें सफलता मिलेगी या नहीं। यह होता है प्रयोजनोद्देश्य यात्रा। यात्रा में मुख्यत: तिथि, वार, नक्षत्र एवं लग्न की शुद्धि देखी जाती है। पुन: उनका विविध योगों के आधार पर यात्रा के लिए मार्ग का विधान बतलाया गया है। त्रयंक और पंचकशुद्धि से सम्बन्धित यात्रा का भी उल्लेख पूर्वकालामृत में मिलता है। आइए सर्वप्रथम यात्रा करने की विधि, और प्रस्थान विधि को समझते है। पुन: त्रयंक और पंचकशुद्धि का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

यात्रा करने की विधि

नारदपुराण में यात्रा करने की विधि का निर्देश करते हुए कहा गया है कि प्रज्वलित अग्नि में

तिलों से हवन करके जिस दिशा में जाना हो, उस दिशा के स्वामी को उन्हीं के समान रंगवाले वस्त्र, गन्ध, तथा पुष्प आदि उपचार अर्पण करके उन दिक्पालोंर के मन्त्रों द्वारा विधिपूर्वक पूजन करे। फिर अपने इष्टदेव और ब्राहमणों को प्रणाम करके ब्राहमणों से आशीर्वाद लेकर राजा को यात्रा करनी चाहिए।

हुताशनं तिलैर्हुत्वा पूजयेत् दिगीश्वरम्।
प्रणम्य देवभूदेवानाशीर्वादैर्नृपो व्रजेत्।।
यद्वर्णवस्त्रगन्धाद्यैस्तन्मन्त्रेण विधानतः।।

वहाँ यात्रा के समय दिक्पालों के स्वरूप औ ध्यान की विधि भी दी गयी। विशेष जिज्ञासु जन नारदपुराण का अवलोकन करें।

प्रस्थान रखने की विधि

नारदपुराण में बतलाया गया है कि यदि किसी आवश्यक कार्यवश निश्चित यात्रा-लग्न में राजा स्वयं न जा सके, तो छत्र, ध्वजा, शस्त्र, अस्त्र या वाहन में से किसी एक वस्तु को यात्रा के निर्धारित समय में घर से निकाल कर जिस दिशा में जाना हो, उसी दिशा की ओर दूर रखवा दे। अपने स्थान से निर्गम स्थान (प्रस्थान रखने की जगह) 200 दण्ड (चार हाथ की लग्गी) से दूर होना उचित है। अथवा चालीस या कम से कम बारह दण्डउ की दूरी होनी आवश्यक है। राजा स्वयं प्रस्तुत होकर जाय तो, किसी एक स्थान में सात दिन न ठहरे। अन्य (राज-मन्त्री तथा साधारण) जन भी प्रस्थान करके एक स्थान में छः या पाँच दिन न ठहरे। यदि इससे अधिक ठहरना पड़े, तो उसके बाद दूसरा शुभ मुहूर्त्त और उत्तम लग्न विचार कर यात्रा करे।

पूर्वकालामृत में वर्णित यात्रा का त्रयंक स्वरूप –

यात्रावारभवासरांश्च मिलितान् स्वस्वादितस्तान् क्रमात्।
कृत्वा द्वित्रिचतुर्गुणान्प्रविभजेत्सप्ताष्टषडिभः क्रमात्।।
शून्येषु त्रिषु रोगभीतिमरणान्याशु प्रयातुः क्रमा-
च्छेषेषु त्रिषु राज्यरत्नपृथीवर्दद्यात्तु त्रयंकस्त्वयम्।।

अर्थात् यात्राकालिक वार नक्षत्र और तिथि को अपने-अपने आदि से (अर्थात् रवि से इष्टवार तक, अश्विनी से इष्ट नक्षत्र तक तथा शुक्ल प्रतिपदा से इष्ट तिथि तक) गणना करके पृथक्-पृथक् तीन स्थानों में रखना चाहिए। तीनों संख्याओं को क्रमशः २,३,४ से गुणाकर गुणनफल को पृथक्-पृथक् क्रमशः ७,८, और ६ से भाग देना चाहिए। यदि तीनों स्थानों में शेष शून्य बचे तो शीघ्र ही यात्रा में रोग,

भय और मृत्यु होती हे। यदि तीनों स्थानों में शेष अंक बचे तो क्रमश: राज्य, रत्न और पृथ्वी का लाभ होता है। इसी को त्रयंक मुहूर्त्त कहते हैं।

यात्रापंचक शुद्धि स्वरूप –

यात्रावारविलग्नधिष्ण्यदिवसान् स्वस्वादितस्सर्वतो
राशीकृत्य दिनार्कदिग्वसुजलेष्वेकैक संख्यां क्रमात्।
क्षिप्त्वा प्राग्धृतमेव तं प्रविभजेदंकैश्च सर्वं ध्रुवं
शेष: प्राक्तन् पंचके बहुधनं शून्ये फलं वक्ष्यते।।

अंगीकारार्थ स्वरूप –

व्याध्यग्निक्षितिपालोरमृतितोभीतिश्च शून्ये क्रमा
देतत्पंचदशादियोजितफलं मृत्योर्भयं सर्वदा।
चोरवधिभयं निशासु दिवसे भूपाग्नि भीर्तिर्भवेद्।
यात्रापंचकशुद्धिरेव गमने संजीवनीया खलु।।

अर्थात् यात्रा समय के वार, लग्न, नक्षत्र और तिथि को अपने-अपने आरम्भ बिन्दु से गणना कर तथा सभी संख्याओं का योग कर पाँच स्थानों में रखना चाहिए। प्रत्येक स्थानों में क्रमश: १५,१२,१०,८,४ को जोड़कर प्रत्येक को ९ से भाग देना चाहिये। यदि पाँचों स्थानों में शेष बचता है तो यात्रा शुभ होती है। पाँचों स्थानों में शून्य शेष रहने पर क्रमश: फल इस प्रकार कहना चाहिए।

प्रथम स्थान में शून्य हो तो – व्याधि
दूसरे स्थान में शून्य हो तो – अग्निभय
तृतीय स्थान में शून्य हो तो – राजभय
चतुर्थ स्थान में शून्य हो तो – चोरभय
पंचम स्थान में शून्य हो तो – मृत्यु भय

होता है। इस प्रकार १५ आदि संख्याओं के योग से उत्पन्न फलों में मृत्यु भय सदैव विचारणीय होता है। चोर और व्याधि भय रात्रि में, राजभय तथा अग्निभय दिन में होता है। यात्रा में जीवन की अभिलाषा वालों को इन पंचक शुद्धियों का विचार अवश्य करना चाहिए।

इस प्रकार यात्राजनित त्रयंक और पंचक शुद्धि का निरूपण किया गया है।

यात्रा में लालाटिक योग

नारदपुराण में कहा गया है कि जिस दिशा में यात्रा करनी हो, उस दिशा का स्वामी ललाटगत

(सामने) हो, तो यात्रा करने वाला लौटकर नहीं आता है। पूर्व दिशा में यात्रा करने वाले के लग्न में यदि सूर्य हो, तो वह ललाटगत मान जाता है। यदि शुक्र लग्न से ग्यारहवें या बारहवें स्थान में हो, तो अग्निकोण में यात्रा करने से, मंगल दशम भाव में हो, तो दक्षिण यात्रा करने से, राहु नवें और आठवें भाव मं हो, तो नैर्ऋत्यकोण की यात्रा से, शनि सप्तम भाव में हो, तो पश्चिम यात्रा से, चन्द्रमा पाँचवें या छठे भाव में हो, तो वायुकोण की यात्रा से बुध चतुर्थ भाव में हो, तो ईशान कोण की करने से ललाटगत होते हैं।

जो मनुष्य जीवन की इच्छा रखता हो, वह इस ललाटयोग को त्याग कर यात्रा करे।

द्वित्रिस्थानगतो जीव ईशान्यां वै ललाटगः।
ललाटं तु परित्यज्य जीवितेच्छुव्र्रजेन्नरः।।

वहाँ यह भी कहा गया है कि लग्न में वक्रगति ग्रह या उसके षड्वर्ग (राशि होरादि) हों, तो यात्रा करने वाले राजा की पराजय होती है। जब जिस अयन में सूर्य और चन्द्रमा दोनों हो, उस समय उस दिशा की यात्रा शुभ फल देने वाली होती है। यदि दोनों भिन्न अयन में हों, तो जिस अयन में सूर्य हो, उधन दिन में तथा जिस अयन में चन्द्रमा हो, उधन रात्रि में यात्रा शुभ होती है। अन्यथा यात्रा करने से यात्री की पराजय होती है।

रवीन्द्वयनयोर्यातमनुकूलं शुभप्रदम्।
तदभावे दिवरात्रौ या यायाद्यातुर्वधोऽन्यथा।

यात्रा में अभिजित् मुहूर्त्त

यात्रा के लिए अभिजित् मुहूर्त्त का कथन करते हुए नारदपुराण का कहना है कि दिन का मध्यकाल = 12 बजे से एक घटी आगे और एक घटी पीछे अभीष्ट फल सिद्ध करने वाला अभिजित् मुहूत्र्त कहलाता है। यह दक्षिण दिशा की यात्रा को छोड़कर अन्य दिशाओं की यात्रा में शुभ फल देता है। इस अभिजित् मुहूत्र्त में तिथि वारादि पंचांग शुभ न हो, तो भी यात्रा में वह उत्तम फल देने वाला होता है।

याम्यादिग्गमनं त्यक्त्वा सर्वकाष्ठासु यायिनाम्।
अभिजित् क्षणयोगोऽयमभीष्टफलसिद्धिदः।।
पंचांगशुद्धिरहिते दिवसेऽपि फलपंदः।।

यात्रा में प्रतिबन्ध

नारदपुराण में कहा गया है कि यदि घर में उत्सव, उपनयन, विवाह, प्रतिष्ठा या सूतक उपस्थित हो, तो जीवन की इच्छा रखने वालों को बिना उत्सव को समाप्त किये यात्रा नहीं करनी चाहिए।

उत्सवोपनयोद्वाहप्रतिष्ठाशौचसूतके।
असमाप्ते न कुर्वीत यात्रां मर्त्यो जिजीविषुः।।
अप्रयाणेर स्वयं कार्या प्रेक्षया भूभुजस्तथा।
कार्यं निगमनं छत्रं ध्वजशस्त्रास्त्रवाहनैः।।
स्वस्थानान्निर्गमस्थानं दण्डानां च शतद्वयम्।
चत्वारिंशद्द्वादशैव प्रस्थितः स स्वयं गतः।।
दिनान्येकत्र न वसेत्सत्पषट् वा परो गतः।
पंचरात्रं च पुरतः पुनर्लग्नान्तरे व्रजेत्।।

वहाँ यह भी निर्देश दिया गया है किर असमय में (पौष से चैत्रपर्यन्त) बिजली चमके, मेघ की गर्जना हो या वर्षा होने लगे तथा त्रिविध (दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम) उत्पात होने लग जाय, तो राजा को सात दिन रात तक अन्य स्थानों की यात्रा नहीं करनी चाहिए।

अकालजेषु नृपतिर्विद्युद्गर्जितवृष्टिषु।
उत्पातेषु त्रिविधेषु सप्तरात्रं तु न व्रजेत्।।

यात्रा में अपशकुन

नारदपुराण के अनुसार तस्करों को यात्रा में शकुनबल से अभीष्ट सिद्धि होती है। इसलिए वहाँ यात्रा में अपशकुन का निर्देश करते हुए कहा गया है कि यात्रा के समय यदि परस्पर दो भैंसों या चूहों में लड़ाई हो, स्त्री से कलेश हो या स्त्री का मासिक धर्म हुआ हो, वस्त्र आदि शरीर से खिसक कर गिर पड़े, किसी पर क्रोध हो जाय या मुख से दुर्वचन कहा गया हो, तो उस दशा में यात्रा नहीं करनी चाहिए।

महिषोन्दुरयोर्युद्धे कलत्रकलहार्तवे।
वस्त्रादेः स्खलिते क्रोधे दुरुक्ते न व्रजेन्नृपाः।।

इसी प्रकार नवीन वस्त्र धारण करने वाले नक्षत्रों का कथन करते हुए कहा गया है कि हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा-ये पाँच नक्षत्र तथा उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, धनिष्ठा और पुनर्वसु नक्षत्र नवीन वस्त्र धारण करने के लिए श्रेष्ठ हैं।

हस्तादिपंचऋक्षाणि उत्तरात्रयमेव च।

अश्विनी रोहिणी पुष्पा धनिष्ठा च पुनर्वसु।
वस्त्रप्रावरणे श्रेष्ठो नक्षत्राणां गणः स्मृतः।।

मुहूर्त्त बतलाने के क्रम में नक्षत्रों के विशेष संज्ञा एवं उनमें करणीय कृत्यों का वर्णन करते हुए गरुडपुराण में कहा गया है कि कृत्तिका, भरणी, आश्लेषा, मघा, मूल, विशाखा तथा पूर्वभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ और पूर्वाफाल्गुनी इन नक्षत्रों को अधोमुखी कहा गया है। इन अधोमुखी नक्षत्रों में वापी, तडाग, सरोवर, कूप, भूमि, तृण आदि का खनन, देवालय के लिए नींवादि के खनन का शुभारम्भ, भूमि आदि गड़ी हुई धन-सम्पत्ति की खुदाई, ज्योतिश्चक्र का गणनारम्भ और सुवर्ण, रजत, पन्ना तथा अन्य धातुओं को प्राप्त करने के लिए भू-खदानों में प्रविष्ट होना आदि अन्य अधोमुखी कार्य इन अधोमुखी नक्षत्रों में करना चाहिए।

कृत्तिका भरण्यश्लेषा मघा मूलविशाखयोः।
त्रीणि पूर्वा तथा चैव अधोवक्त्राः प्रकीर्तिताः।।
एषु वापीतडागादिकूपभूमितृणानि च।
देवागारस्य खननं निधानखननं तथा।
गणितं ज्योतिषारम्भं खनिबिलप्रवेशनम्।।
कुर्यादधोगतान्येव अन्यानि च वृषध्वज।।

इसी प्रकार रेवती, अश्विनी, चित्रा, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा एवं ज्येष्ठा नक्षत्र पाश्र्वमुखी हैं। इन पाश्र्वमुखी नक्षत्रों में हाथी, ऊँट, अश्व, बैल तथा भैंसे को वश में करने का उपाय करना चाहिए अर्थात् इनके नाक आदि में छेद करके छल्ला या रस्सी डालने का कार्य करना चाहिए। खेतों में बीज बोना, गमनागमन, चक्रयन्त्र (चरखी, चरखा, रहट आदि यन्त्र) अथवा रथ एवं नौका का क्रय और निर्माण उक्त पाश्र्ववर्ती नक्षत्रों में करना चाहिए और अन्य पाश्र्व कार्यों को भी इन पार्श्व नक्षत्रों में करना चाहिए।

रेवती चाश्विनी चित्रा स्वाती हस्ता पुनर्वसू।
अनुराधा मृगो ज्येष्ठा एते पाश्र्वमुखाः स्मृताः।।
गजोष्ट्राश्वबलीवर्ददमनं महिषस्य च।
बीजानां वपनं कुर्याद्गमनागमनादिकम्।।
चक्रयन्त्ररथानां च नावादीनां प्रवाहणम्।
पाश्र्वेषु यानि कर्माणि कुर्यादेतेषु तान्यपि।।

इसी क्रम में रोहिणी, आद्र्रा, पुष्य, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद, शतभिष (वारुण) तथा श्रवण-इन नौ नक्षत्रों को ऊध्र्वमुखी कहा गया है। इन नक्षत्रों में राज्याभिषेक और पट्टबन्ध आदि शुभ कार्य करवाने चाहिए। ऊध्र्वमुखी अर्थात् अभ्युदय प्रदान करने वाले अन्य विशिष्ट कार्यों को भी इन नक्षत्रों में कराना प्रशस्त होता है।

रोहिणाद्र्रा तथा पुष्या धनिष्ठा चोत्तरात्रयम्।
वारुणं श्रवणं चैव नव चोध्र्वमुखाः स्मृताः।।
एषु राज्याभिषेकं च पट्टबन्धं च कारयेत्।
ऊध्र्वमुखान्युच्छितानि सर्वाण्येतेषु कारयेत्।।

इसी प्रकार शुभाशुभ तिथियों का कथन करते हुए दग्धयोग, औत्पातिक योग, विष्कुम्भ, सिद्धि आदि योगों का कथन करते हुए उसमें करणीयाकरणीय कृत्यों का कथन किया गया है।

वलक्षपक्षे प्रतिपत्यप्रयाणे भंगप्रदा वा निधनप्रदा वा।
यातुर्मनोभीष्टकरा द्वितीया सम्पूर्णयात्रा फलदा तृतीया।।

शुक्ल प्रतिपदा के दिन यात्रा करने या पूछने वाले की यात्रा भंग होती है अथवा मृत्यु होती है। द्वितीया तिथि जाने वाले के मन को अभीष्ट फल देती है। जबकि तृतीया तिथि सम्पूर्ण यात्रा को शुभ देने वाली होती है।

तिस्रोऽपि रिक्तास्तिथयः प्रयातुर्मृत्युप्रदाश्चार्थविनाशदा वा।
यशस्करी भूरिधनप्रदा च या पंचमी मृत्युकरी च षष्ठी।।

तीनों रिक्ता तिथियां, नवमी, एवं चतुर्दशी में यात्रा करने वाले को कलह या मृत्यु प्रदान करती हैं अथवा मान को नष्ट कर देती हैं। यश देने वाली अनेक प्रकार से धन देने वाली पंचमी तिथि होती है जबकि षष्ठी मृत्यु देने वाली होती है।

सप्तमी विजयदा तथाऽष्टमी शोकदुःखभयदामयप्रदा।
सर्वदुःखशमनी यशस्करी लाभदा च दशमी निरन्तरम्।।

सप्तमी तिथि विजय देने वाली तथा अष्टमी तिथि शोक, दुःख, भय तथा रोग देने वाली होती है। सम्पूर्ण दुःखों का शमन करने वाली यश प्रदान करने वाली तथा निरन्तर लाभ देने वाली दशमी तिथि होती है।

पशुप्रदा मानकरी सुगन्धरक्ताम्बरानेकशुभप्रदा स्यात्।
एकादशी चित्रमृगप्रभूतधान्याकराद्युत्तमवस्तुदा स्यात्।।

पशु को प्रदान करने वाली, मान देने वाली, सुगन्धित वस्तु, लाल वस्त्र तथा अनेक शुभ प्रदान करने वाली एकादशी तिथि होती है। विचित्र मृग, बहुत अधिक धान्य करने वाली, उत्तम वस्तु भी देने वाली होती है।

भूरिभूतिनाशिनी भूरिधर्महारिणी।
भूरिभीतिदायिनी द्वादशी प्रभंगदा।।

बहुत अधिक सम्पत्ति को नष्ट करने वाली, और अधिक धर्म का हरण करने वाली तथा बहुत अधिक भय को देने वाली, यात्रा को नष्ट कर देने वाली द्वादशी तिथि होती है।

त्रयोदशी सुभोगदा विपक्षपक्षनाशिनी।।
विनाशदाथ पूर्णिमा यशःक्षयं करोति वा।।

त्रयोदशी तिथि सुन्दर भोग देने वाल, विपक्ष के पक्ष को नष्ट कर देने वाली होती है जबकि पूर्णिमा तिथि विनाश देने वाली तथा यश को क्षय करने वाली होती है।

सितेतराद्यवासरो विभूतिसौख्यभोगदः।
सितेतरे जघन्यके फलप्रदाश्च वासराः।।

कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि विभूति और सुख देने एवं ऐश्वर्य देने वाली होती है। जबकि कृष्ण के अतिरिक्त तिथि जघन्य फल प्रदान करने वाली होती है।

सुरेज्यदैत्येज्यशशीन्दुजानां वाराश्च वर्गाः शुभदाः प्रयाणे।
आदित्यभूसूनुशनैश्चराणां वाराश्च वर्गा न शुभप्रदाः स्युः।।

बृहस्पति, शुक्र, चन्द्रमा एवं बुध का दिन हो और इन्हीं ग्रहों का वर्ग भी हो तो यात्रा करने पर शुभ होता है। जबकि सूर्य, मंगल एवं शनिवार अथवा उनका वर्ग यात्रा में शुभ फल नहीं देते।

पौष्णद्वयादित्यकरेज्यमित्रविष्णिवन्दुवस्वाहंभानि यानि।
श्रेष्ठानि यात्रासु नवैव तानि मुक्त्वा त्रिपंचादिमसप्तभानि।।

रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, हस्त, पुष्य, अनुराधा, श्रवण, मृगशिरा तथा धनिष्ठा, ये नौ नक्षत्र श्रेष्ठ हैं, अपने जन्म नक्षत्र से तीसरा, पांचवा एवं सातवां नक्षत्र छोड़कर यात्रा श्रेष्ठ शुभ देने वाली होती है।

तिस्रोत्तरा वारुणनैर्ऋतेन्द्रपूर्वात्रयब्राह्मदशैव भानि।
मध्यानि कष्टान्यनिलानलेशद्विदैवचित्राहिमघान्तकानि।।

तीनों उत्तरा, शतभिषा, मूल, ज्येष्ठा, तीनों पूर्वा और रोहिणी ये दस नक्षत्र यात्रा में मध्यम कहे गये हैं। जबकि कृत्तिका स्वाती, विशाखा, चित्रा, आश्लेषा, मघा तथा भरणी यात्रा में कष्ट देने वाले नक्षत्र कहे गये हैं।

पुरुहूतदिशं पुरन्दरक्र्षे नेयाद्याम्यादिशं त्वजांघ्रिधिष्ण्ये।
जलनाथदिशं पितामहक्र्षे शूलाख्यान्यथ सौम्ययमक्र्षे।।

पूरब दिशा में ज्येष्ठा नक्षत्र में तथा दक्षिण दिशा में पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में नहीं जाना चाहिए। शतभिषा नक्षत्र, रोहिणी नक्षत्र में पश्चिम दिशा में और भरणी नक्षत्र में तथा शूल नामक योग में उत्तर दिशा में यात्रा कष्टदायक होती है।

तुहिनकिरणमन्दवारे शक्रदिशं न च व्रजेद्गुरौ च याम्यायाम्।
रविसितदिने प्रतीच्यां सौम्यदिशं ज्ञारयोश्च वारशूलाः स्युः।।

सोमवार एवं शनिवार के दिन पूरब दिशा में नहीं जाना चाहिए। गुरुवार के दिन दक्षिण दिशा में नहीं जाना चाहिए। रविवार एवं शुक्रवार के दिन पश्चिम दिशा में तथा बुध मंगल को उत्तर दिशा में दिकशूल होता है।

मेषादिमीनपर्यन्तं पश्चिमादिप्रदक्षिणम्।
चन्द्रकण्टकमित्याहुर्गमनं कार्यनाशनम्।।

मेष राशि से मीन राशि तक पश्चिम आदि प्रदक्षिणा क्रम से चन्द्रमा को कंक कहा गया है। इसमें गमन करने से कार्य नष्ट होता है।

शूलाख्यानि च धिष्ण्यानि शूलसंज्ञाश्च वासराः।
यायिनां मृत्युदाः शीघ्रमथवाऽश्वादिहानिदाः।।

शूल नामक नक्षत्रों में शूल संज्ञा दी गयी है। उस वार में यात्रा करने वाली यात्री का शीघ्र ही घोड़े आदि की हानि अथवा मृत्यु हो जाती है।

पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु वह्निधिष्ण्यान्निरन्तरम्।
सप्तसप्तक्रमेणैव दिग्द्वाराख्यानि भानि वै।।

पूर्व आदि चारों दिशाओं में कृत्तिका आदि नक्षत्र क्रमशः सात-सात के क्रम से दिकद्वार के नक्षत्र कहे गये हैं।

न लंघ्यः परिघो दण्डस्त्वाग्निवायुदिगाश्रितः।
पुष्यार्काश्विनमैत्राणि सर्वदिग्द्वारकाणि च।।

परिघ एवं दण्ड नामक योगों में अग्निकोण एवं वायुकोण का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। अर्थात् यात्रा नहीं करनी चाहिए। पुष्य, हस्त, अश्विनी एवं अनुराधा सर्वदिकद्वार नक्षत्र कहे गये है।

सर्वदिक्ष्वपि यातॄणां सर्वकामार्थदानि च।
पूर्वादिदिक्षु मेषाद्याः क्रमाद्दिग्द्वारराशयः।।

सम्पूर्ण दिशाओं में यात्री के लिए ये नक्षत्र सम्पूर्ण कामनाओं एवं अर्थ को देने वाले होते हैं। पूर्व आदि दिशाओं में मेष आदि के क्रम से दिकद्वार राशियां कही गयी हैं।

सर्वदिक्षु प्रशस्तोऽपि पुष्यः सर्वार्थसाधकः।
प्रतीच्यां गमने त्याज्यः सौख्यसंपदमिच्छता।।

सम्पूर्ण दिशाओं में श्रेष्ठ तथा सभी धनों का साधक पुष्य नक्षत्र कहा गया है किन्तु पश्चिम दिशा में यात्रा करने पर सुख एवं सम्पत्ति की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को पुष्य नक्षत्र का त्याग करना चाहिए।

दिग्द्वारराशयः सर्वे तद्दिग्यातुर्जयप्रदाः।
तद्वर्गाश्च तदंशाश्च लग्नाधिपस्तथाविधः।।

दिकद्वार राशियों में उनकी दिशा में जाने पर विजय मिलती है। उसके वर्ग में अथवा उनके अंश में लग्नेश भी यदि उस प्रकार से हो तो जय देने वाला होता है।

एकोऽपि चक्रगः खेटो लग्नस्थश्चारिराशिगः।
नीचस्थो वा तदंशस्थो यात्राकाले विनाशदः।।

एक भी चक्र में गया हुआ ग्रह लग्न में स्थित हो या जल राशि में, नीच स्थान में स्थित हो या उस अंश में स्थित हो तो यात्रा के समय विनाश देने वाला होता है।

यात्रायां यस्य वा शुक्रः संमुखो दक्षिणस्थितः।
करोति बहुधा नाशं बुधश्चेन्निधनप्रदः।।

यात्रा में जिसका शुक्र सामने या दक्षिण दिशा में स्थित हो तो वह अनेक प्रकार से नाश करता है। यदि बुध भी हो तो अवश्य ही मृत्यु प्रदान करता है।

दिगीश्वरा भास्करशुक्रभौमराहार्किचन्द्रज्ञसुरार्चिताः स्युः।
दिगीश्वरे यत्र ललाटसंस्थे यात्रा न कार्या न च सन्निवेशः।।

सूर्य, शुक्र, मंगल, राहु, शनि, चन्द्रमा, बुध तथा बृहस्पति क्रमशः दिशाओं के स्वामी होते हैं। दिशा का स्वामी जहाँ ललाट भाग में स्थित हो तो उसमें यात्रा नहीं करनी चाहिए न प्रवेश करना चाहिए।

राशीनेकं द्वाविनाक्रान्तराशेरप्रादक्षिण्यान्न्यसेद्दिग्विदिक्षु।
यद्दिग्राशौ लग्नगे संमुखत्वे तद्दिग्यातुर्मृत्युदस्तद्दिगीशः।।

एक राशि दो के बिना आक्रान्त राशि में प्रदक्षिण क्रम में प्रत्येक दिशाओं और कोणों में न्यास करें। यदि अग्र राशि में लग्न में गये हुए ग्रह सन्मुख हो तो उस दिशा में गमन से दिशा के स्वामी के अस्त होने पर मृत्यु होती है।

प्रयाणसमये यस्य विद्युन्नीहारवृष्टयः।
अकालजा भवन्त्येते सदा भंगकरा मृशम्।।

जिसके यात्रा के समय में बिजली, कोहरा अथवा वर्षा हो रही हो तो अकाल में हुए ये सदा यात्रा भंग करने वाले होते हैं।

शुभाशुभनिमित्तानि ह्युत्पातशकुनानि च।
यात्राकाले नृणां तेषां निधनायाधनाय च।।

शुभ-अशुभ लक्षणों का उत्पात और शकुन यात्राकाल में मनुष्यों के लिए मृत्यु देने वाले या धनरहित करने वाले होते हैं।

वस्तूनां च शुभानां च पूर्वोक्तानां च वीक्षणम्।
प्रयाणसमये यस्य तस्य भंगो भवेत्तदा।।

पूर्व में कहे गये शुभ वस्तुओं का अवलोकन करके यदि प्रस्थान किया जाय तो दुर्योग भंग हो जाते हैं।

यात्रायां शकुनं यस्य यदि प्रावेशिकं भवेत्।
शोकदुःखं भवेत्तस्य गदो भवति निश्चयात्।।

जिसकी यात्रा में शकुन प्रावेशिक हो तो शोक, दुःख उसे प्राप्त होता है अथवा निश्चित ही रोगी हो जाता है।

पूर्वं प्रवेशिकं भूत्वा पश्चात्प्रास्थानिकं भवेत्।
सुखेन सिद्ध्यते कार्यं विपरीतं प्रवेशने।।

पहले प्रवेशिक होकर पुनः प्रास्थानिक होना चाहिए। ऐसा करने पर विपरीत योग में भी प्रवेश करने पर कार्य आसानी से सिद्ध हो जाता है।

केन्द्रत्रिकोणगैः सौम्यैस्त्रिभवारिगतैः परैः।
अलग्नरिपुचन्द्रेण यात्राभीष्टफलप्रदा।

केन्द्र और त्रिकोण में गये हुए सौम्य ग्रह अथवा तीसरे, छठें या ग्यारहवे में स्थित में हो तो लग्न को छोड़ करके चन्द्रमा शत्रु स्थान में हो तो यात्रा मनवांछित फल देने वाली होती है।

यात्रा लग्नस्य केन्द्रेषु शून्येषु शुभखेचरैः।
निष्फलं गमनं तस्य जारजातस्य पिण्डवत्।।

यात्रा लग्न से यदि केन्द्र में कोई भी शुभग्रह न हो अथवा केन्द्र शुभग्रहों से रहित हो तो जैसे जार-जात का पिण्ड होता है उसी प्रकार यात्रा निष्फल हो जाती है।

त्रिकोणे द्वित्रिराशौ वा शून्ये यस्य शुभग्रहैः।

निष्फला तस्य यात्रा स्यान्मिथ्यावादस्य वाग्यथा।।

जिस यात्री के त्रिकोण या दो-तीन राशियों में शुभग्रह न हो तो मिथ्यावादी की वाणी जैसे व्यर्थ हो जाती है वैसे इसकी भी यात्रा निष्फल हो जाती है।

यस्मिन्वारे दुर्मुहूर्तलग्नं भंगप्रदं नृणाम्।

रुक्प्रदं वारदोषं च तस्मात्तत्त्रितयं त्यजेत्।।

जिस वार में दुष्ट मुहूर्त या दुष्ट लग्न हो तो वह मनुष्यों की यात्रा को निष्फल बना देता है। रोग प्रदान करने वाला वार होता है। इसलिए वार, मुहूर्त एवं लग्न तीनों के अशुभ होने पर त्याग कर देना चाहिए।

जीवे वा वज्रयोगोऽयं यातुः शत्रुविनाशकृत्।।

अधिमित्र के घर में स्थित बुध, शुक्र या बृहस्पति यदि लग्न में स्थित हो तो यह वज्र नामक योग होता है। जो यात्रा करने वाले के शत्रु का विनाश करता है।

अधिमित्रांशगे सौम्ये सिते वाथसुरार्चिते।

लग्नगे मित्रयोगोऽयं शत्रूणां सन्धिकृत्सदा।।

अधिमित्र के नवांश में स्थित होकर बुध, शुक्र या गुरु लग्न में स्थित हो जायें तो यह मित्र नामक योग होता है जो शत्रुओं से मेलजोल या मित्रता कराता है।

अधिमित्रगृहे स्वाधिमित्रांशस्थे भृगोः सुते।

गुरौ चानन्दयोगोऽयं सौम्ये चानन्ददः सदा।।

अधिमित्र के घर में अथवा अपने अधिमित्र के नवांश में स्थित शुक्र, गुरु या बुध हो तो यह आनन्द नामक योग होता है और यह यात्री को सदैव आनन्द देने वाला होता है।

स्वोच्चगे लग्नगे सौम्ये शुक्रे वा देवपूजिते।

अमृतो नामयोगोऽयं यातुरायुःप्रदः सदा।।

अपने उच्च स्थान में गये हुए गुरु, शुक्र या बुध लग्न में स्थित हो तो यह अमृत नामक योग होता है यह यात्री के लिए सदैव आयु प्रदान करने वाला होता है।

उच्चगे लग्नसंस्थेषु बुधे वाऽथ गुरौ सिते।

शभसंज्ञो महायोगो यायिनां शुभदः सदा।।

उच्च स्थान में गया हुआ बुध, गुरु या शुक्र लग्न में स्थित हो जायें तो यह शुभ नामक महायोग होता है। जो यात्री को सदैव सुख देता है।

स्वोच्चे स्वोच्चांशगेर सौम्ये लग्नगे वा भृगोः सुते।
आये वा कीर्तियोगोऽयं यायिनां श्रीप्रदः सदा।।

अपने उच्च या अपने उच्चांश में बुध या शुक्र लग्न में गये हो अथवा लाभ स्थान में स्थित हो तो यह कीर्ति नामक योग होता है। यह यात्री को सदैव लक्ष्मी देने वाला होता है।

शुभग्रहे द्वये लग्नसंस्थे वा त्रितयेऽपि वा।
योगोऽतियोगसंज्ञोऽयं विजयोऽखिलभूप्रदः।।

यदि दो शुभग्रह अथवा तीन शुभग्रह लग्न में स्थित हो तो इस योग को अतियोग संज्ञा दी गयी हैं यह सम्पूर्ण पृथ्वी देने वाला तथा विजय देने वाला होता है।

त्रिषष्ठलाभगेष्वेषु रविमन्दकुजेषु च।
पूर्णचन्द्र महायोगः पूर्णराज्यप्रदः सदा।।

तीसरें, छठें या लाभ स्थान में सूर्य, शनि या मंगल स्थित हो तो यह पूर्ण चन्द्र नामक महायोग होता है। जो सदैव पूर्ण राज्य को देने वाला होता है।

यत्रैकादशगे चन्द्रे भानौ वा प्रबले शुभे।
अभयो नाम योगोऽयं भवत्यरिविनाशकृत्।।

जिसके ग्यारहवें स्थान में प्रबल हो करके चन्द्रमा या सूर्य स्थित हो तो इसे अभय नामक योग कहते हैं। यह सम्पूर्ण शत्रुओं का विनाश करने वाला होता है।

परिघदण्डचक्रलक्षण –

अग्नेयानिलकोश्च विलिखेदेकां च रेखां चतु
ष्कोणे प्राग्लिखिते प्रसिद्धपरिघादण्डाख्यचक्रे शुभे।
तत्प्रागादिषु सप्तसप्तगमने वह्न्यादिततारालिखे।
दष्टाविंशति संख्ययैव परिघादण्डो न लंघ्योऽध्वगैः।।

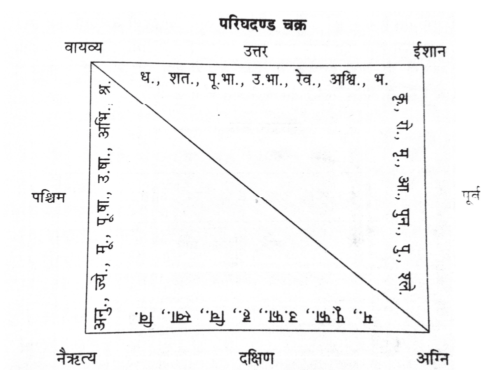

नक्षत्रराशियों का दिग्द्वार निर्णय –

यत्काष्ठास्थितभानि यानि गमने द्वाराणि तस्या दिश:
प्राक्चक्रे विहितस्य पुष्यदिनकृन्मित्राद्यतारास्सदा।
सर्वद्वारे शुभास्सुखार्थपशुदा: प्रागादिमेषादयो
दिग्द्वाराख्यगृहा: प्रदक्षिणविधावेकैकशोऽनर्थदा।।

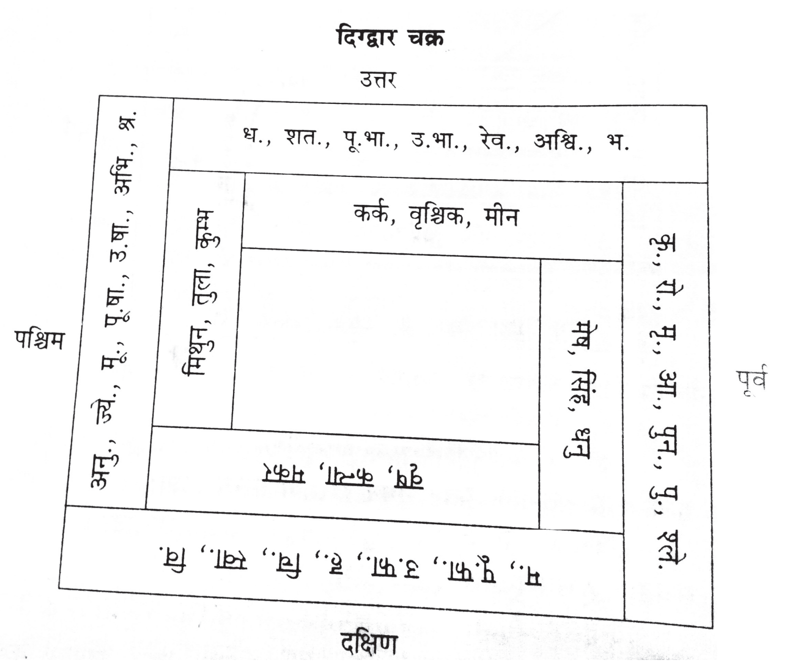

जिस दिशा में जो जो नक्षत्र है उस दिशा के वे दिग्द्वार नक्षत्र कहे जाते हैं। दिग्द्वार नक्षत्रों में तत्संबंधी दिशाओं में यात्रा करना शुभ होता है। पुष्य, हस्त, अनुराधा और अश्विनी नक्षत्रों में सभी दिशाओं में यात्रा शुभ होती है। इन्हें सर्वदिग्द्वार नक्षत्र कहा जाता है।

बोध प्रश्न

1. त्रिविध यात्रा से तात्पर्य है।

   क. ३ प्रकार की यात्रा ख. २ प्रकार की यात्रा ग. ४ प्रकार की यात्रा घ. कोई नहीं

2. यात्रा में पंचकशुद्धि विचार में कितने प्रकार के विचार किये गये हैं।

   क. २ ख. ३ ग. ४ घ. ५

3. जिसके ग्यारहवें स्थान में प्रबल हो करके चन्द्रमा या सूर्य स्थित हो तो इसे कौन सा योग कहते हैं।

   क. अभय ख. भय ग.काल घ. सुख

4. यदि दो शुभग्रह अथवा तीन शुभग्रह लग्न में स्थित हो तो इस योग को क्या कहते है।

   क. दुर्गम ख. अति ग. अभय घ. महायोग

5. महायोग नामक योग का क्या फल है।

   क. सदा विजय ख. हार ग. भीषण हार घ. विजय

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि त्रिविध यात्रा से तात्पर्य है – तीन प्रकार से की गयी यात्रा। पूर्व के इकाईयों में आपने दो मुख्य यात्रा के प्रकार सामान्य, विजयपरक यात्रा का अध्ययन कर लिया है। तीसरा यात्रा प्रयोजन के अनुसार होता है। जिस कार्य के उद्देश्य से यात्रा की जा रही हो, उसमें सफलता मिलेगी या नहीं। यह होता है प्रयोजनोद्देश्य यात्रा। यात्रा में मुख्यत: तिथि, वार, नक्षत्र एवं लग्न की शुद्धि देखी जाती है। पुन: उनका विविध योगों के आधार पर यात्रा के लिए मार्ग का विधान बतलाया गया है। त्रयंक और पंचकशुद्धि से सम्बन्धित यात्रा का भी उल्लेख पूर्वकालामृत में मिलता है। आइए सर्वप्रथम यात्रा करने की विधि, और प्रस्थान विधि को समझते है। पुन: त्रयंक और पंचकशुद्धि का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

नारदपुराण में यात्रा करने की विधि का निर्देश करते हुए कहा गया है कि प्रज्वलित अग्नि में तिलों से हवन करके जिस दिशा में जाना हो, उस दिशा के स्वामी को उन्हीं के समान रंगवाले वस्त्र, गन्ध, तथा पुष्प आदि उपचार अर्पण करके उन दिक्पालोंर के मन्त्रों द्वारा विधिपूर्वक पूजन करे। फिर अपने इष्टदेव और ब्राहमणों को प्रणाम करके ब्राहमणों से आशीर्वाद लेकर राजा को यात्रा करनी चाहिए।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

त्रिविध – तीन प्रकार का

आगमन - आना

पंचक – ५ प्रकार

त्रयंक – तीन प्रकार

अग्नि – आग

विदिशा – चार कोण को विदिशा के रूप में जानते है।।

त्रिषष्ठ – ३ और ६

पूर्णचन्द्र – पूर्णिमा का चन्द्रमा

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. घ
3. क
4. ख
5. क

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि – यात्राप्रकरण
2. नारद संहिता – यात्राध्याय
3. प्रश्नमार्ग – यात्राप्रकरण
4. वृहद्वकहड़ाचक्र – अवधबिहारी त्रिपाठी।

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. वशिष्ठ संहिता
2. भृगु संहिता
3. पूर्वकालामृत
4. योगयात्रा

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. त्रिविध यात्रा से क्या तात्पर्य है।
2. त्रिविध यात्रा में शुद्धि विचार कैसे करते है।
3. यात्रा में शुद्धि विचार की क्यों आवश्यकता है।
4. त्रिविध यात्रा में दिशाशुद्धि के विभिन्न अवयवों का प्रतिपादन कीजिये।

इकाई - 5 यात्रा काल में भाव फल

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 यात्रा काल में भावफल परिचय

5.4 यात्रा काल में भाव फल विचार

5.5 सारांश

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.9 सहायक पाठ्यसामग्री

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -205 के तृतीय खण्ड की पाँचवीं इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – यात्राकाल में भावफल। इससे पूर्व आपने यात्रा में दिक्शुद्धि से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'यात्राकाल में भावफल' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

जन्मकुण्डल्यां भावानां फलं भावफलं कथ्यते। सूर्यादि समस्त ग्रहों का यात्राकाल में भावफल बतलाया गया है। यात्रा ज्ञान के अन्तर्गत हमें उक्त विषय का भी ज्ञान करना चाहिए।

अत: आइए इस इकाई में हम लोग 'यात्राकाल में भावफल विचार' के बारे जानने का प्रयास करते है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- भावफल को परिभाषित कर सकेंगे।
- यात्रा में सूर्य एवं चन्द्रमा के भावफलों को समझा सकेंगे।
- यात्रा में मंगल, बुध एवं गुरु ग्रह के भावफलों को समझ लेंगे।
- यात्रा में शुक्र एवं शनि ग्रह का भावफल बता सकेंगे।

5.3 यात्रा काल में भाव फल परिचय

यात्रा काल में तिथि, नक्षत्र, वार, लग्न, दिशा आदि शुद्धि के साथ-साथ ग्रहों के भावफल का भी उल्लेख हमें मिलता है। भावानां फलं भावफलम्। हम जानते है कि कुण्डली में द्वादश भाव होते हैं। उन द्वादश भावों में यात्रा के समय ग्रहों के स्थित होने पर क्या भावफल होगा। इसका विचार प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आपको बताया जा रहा है। पहले द्वादश भावों की संज्ञा को जान लिजिए –

लग्नाद्भावा: क्रमाद्देहकोशधानुष्कवाहनम्।
मन्त्रोऽरिमार्ग आयुश्च हृदव्यापारानमव्यया:।।

अर्थात् १. देह या शरीर, २. कोश, ३. पराक्रम ४. वाहन, ५. मन्त्र, ६. शत्रु ७. यात्रा, ८. आयु, ९. हृदय, १०. व्यापार, ११. लाभ और १२. व्यय। ये लग्न से आरम्भ कर क्रम से बारह भावों के नाम होते हैं।

अब यहाँ आपके ज्ञानार्थ 'प्रश्नमार्ग' ग्रन्थानुसार यात्राकाल में भावफलों का वर्णन किया जा रहा है –

यात्रायां तनुमृत्युशत्रुषु विधुं कृष्णे च खाम्ब्वस्तगं।
शुक्रं शत्रुमदागमेषु धिषणं रन्ध्रक्षत्रभ्रातृषु।।
पापा न षट् विक्रमाम्बरभवेष्वभ्रे च राह्वर्कजौ
रिष्फस्थान्नखिलान् ग्रहानशुभदान् प्रोवाच वाचस्पतिः।।

अर्थात् यात्रा लग्न में शुक्लपक्ष का चन्द्रमा लग्न, अष्टम तथा छठें भाव में नहीं होना चाहिए। साथ ही अन्य शर्तों का भी क्रमशः उल्लेख करते है –

- शुक्ल चन्द्र १०,४,४,७ में न हो।
- शुक्र ६,७,१०,१ भावों में न हो।
- गुरु ३,८,१० भावों में न हो।
- पाप ग्रह ३,६,१०,११ को छोड़कर अन्यत्र न हों।
- राहु-शनि दशम भाव में न हों।
- कोई भी ग्रह बारहवें भाव में नहीं होना चाहिए।

उक्त परिस्थितयों में यात्रा करने से अशुभ फल होता है। अतः यात्रा के समय इनका ध्यान रखना चाहिए।

अब सभी ग्रहों का भावफल का वर्णन करते है। सर्वप्रथम सूर्य ग्रह का यात्रालग्न में भावफल रणदीपिका के अनुसार यहाँ प्रतिपादित किया जा रहा है।

5.4 यात्रा में भाव फल विचार

यात्रा लग्न में सूर्य ग्रह का भावफल –

सन्तापशोकगदविकर्नकृद्युतमेऽर्कः।
कल्यार्थमानबलहानिकरो द्वितीये।।
हेमान्नविद्रुममणिक्षितिदस्तृतीये।
वैराग्यबन्धुकलहारतियश्चतुर्थे।।
पुत्रापदं सुतगृहेऽध्वनि चार्थसिद्धिं
षष्ठेऽभिवांछितफलाप्तिमरिक्षयं च।
द्यूने कलत्रकलहं धनसंक्षयं च ।
मृत्युंकरोति निधने सहितारुजं वा।।
धर्मं हिनस्ति नवमे सविताऽर्थदश्च

कृत्वा वियत्यविदितं श्रमकर्मदाता।।
रत्नागमं तु भृगुलाभगत: करोति
कृत्वाप्ययं व्ययगत: कुरुतेऽर्थमन्यम्।।

यदि यात्रालग्न के प्रथम भाव में लग्न में ही सूर्य स्थित हो तो रोग, शोक, सन्ताप तथा बाधा उत्पन्न करता है। यदि यात्रालग्न से द्वितीय भाव में सूर्य हो तो कलह, मानहानि, बलहानि तथा धनहानि होती है। यदि तृतीयस्थ सूर्य हो तो स्वर्ण, अन्न, मूँगा, मणि तथा भूमि को देने वाला होता है। चतुर्थ का सूर्य वैराग्य देता है तथा बन्धुजनों से कलह कराता है, मन में बेचैनी बनी रहती है। पंचमस्थ सूर्य सन्तान को कष्ट तथा यात्रा से धनलाभ होता है। षष्ठस्थ सूर्य से शत्रुनाश तथा मनोकामना सिद्ध होती है। सप्तमस्थ सूर्य से धन की हानि तथा स्त्री से कलह होता है। अष्टमस्थ सूर्य बीमारी तथा मृत्यु देता है। नवमस्थ सूर्य धर्म की हानि तथा धन लाभ कराता है। दशम भाव में यात्रालग्न का सूर्य अज्ञात कर्म एवं श्रम का फल प्रदान करता है। यात्रा लग्न से ११ वें भाव में स्थित सूर्य रत्नलाभ तथा भृगुलाभ कराता है। द्वादशवें भाव का सूर्य धनहानि कराता है।

यात्राकुण्डली में चन्द्र ग्रह का भाव फल

लग्ने शशिकलकविशोककरो च
स्त्रीवस्त्रान्नरत्नसुहृदात्मज: कुडुम्बे।
दुश्चिक्यगोयुवतिरत्नधनप्रदाता।
बन्ध्वाप्तिद: सुहृदि तत्क्षयदश्च कृष्णे:।।
अर्थप्रदस्तनयग: सुतशोकदश्च।
मित्रारितां प्रकुरुते न सुखश्च षष्ठे।।
अस्तेऽर्थभूयुवतिदोर्थविनाशदोऽणु।।
श्चन्द्रोऽष्टमे निधनशोककर: प्रयातु।।
प्रत्येति नाशु नवमे कुरुते च कार्यं।
क्षीणोऽत्ययं वियति वृद्धिकरोऽयथा स्थे।।
ऐश्वर्यसौख्यधनलाभमुपैति लाभे
क्लेशक्षयव्ययभयानि न रिप्फयाते।।

यदि यात्रालग्न में चन्द्रमा हो तो कलह तथा दु:खकारक होता है। द्वितीय भाव में स्त्री, वस्त्र, अन्न तथा रत्न का लाभ देता है। तृतीय भाव में स्त्री रत्न तथा धन देता है। चतुर्थ भाव में मित्रलाभ, वधुलाभ

कराता है, परन्तु कृष्ण पक्ष का होने पर इन सब का हानि करता है। पंचम भाव चन्द्रमा पुत्र तथा धन देता है परन्तु कृष्णपक्ष का सन्तति की हानि करता है। छठें भाव का चन्द्रमा मित्रों को भी शत्रु बना देता है तथा सुख का अभाव करता है। सप्तम भावस्थ चन्द्र भूमि एवं स्त्री का लाभ देता है परन्तु दुर्बल होने पर अर्थहानि करता है। आठवाँ चन्द्र यात्रा करने वाले को मृत्युतुल्य कष्ट तथा दु:ख पहुँचाता है। नवमस्थ चन्द्र यदि यात्राकुण्डली में हो तो यात्री शीघ्र वापसी नहीं होता है। परन्तु उस का उद्देश्य सफल होता है। दशम का चन्द्र दुर्बल होने पर धनहानि होती है। यदि बलवान हो तो धर्म बढ़ाता है। ग्यारहवाँ चन्द्रमा ऐश्वर्य, सौख्य तथा धन का लाभ देता है।

भौम भाव फल –

लग्ने विषाग्निरुधिरागमशस्रबाधां
भिन्द्याद्बलं धनगतोऽर्थकरश्च पश्चात्।
दुश्चिक्यगोयुवतिरत्नधनाम्बराप्तिं
बन्धुक्षयारिभयदो हिबुके महीज:।।
पुत्रापदं क्षितिसुत: कुरुते सुतस्थ:।
शत्रुप्रणाशमचिरादरिग: करोति।।
अर्थक्षयानरिगदादुनमस्तसंस्थो
बन्ध्वर्थनाशगदमृत्युभयानि मृत्यौ।।
धर्मं न साधयति धर्मगतो महीज:।
शस्तोऽम्बरे न शुभद: कथित: परैश्च।।
लाभेऽर्थसिद्धिविभवागमद: प्रयातु:।
वित्तक्षयं बहु करोति गतश्च रिप्फे।।

यदि यात्रा लग्न में मंगल स्थित हो तो विष, अग्नि एवं शस्त्र से बाध होती है तथा रक्स्राव होता है। यात्रालग्न से द्वितीय भाव में मंगल हो तो बल की हानि होती है, पश्चात् धनलाभ होता है। तृतीयस्थ भौम स्त्री, धन रत्न तथा वस्रों की प्राप्ति कराता है। चतुर्थ का मंगल बान्धवों तथा मित्रवर्ग का क्षय कराता है। शत्रु से भय उत्पन्न होता है। पंचम भाव का मंगल सन्तान को कष्टकारक होता है। छठा भौम शत्रुओं का नाश करता है। सप्तमस्थ भौम धन हानि, रोग, शत्रुप्रकोप आदि से कष्ट देता है। अष्टम भाव का भौम बन्धुओं की हानि करता है। रोगभय तथा मृत्युभय होता है। यात्रालग्न से नवम भाव का

मंगल धर्म की साधना नहीं होने देता है। दशम भाव में मंगल शुभा होता है, कुछ विद्वानों के मत से शुभ नहीं होता। एकादश भाव में स्थित भौम यात्रा में धनलाभ कराता है, वैभव की वृद्धि करता है। बारहवें भाव का मंगल यात्रा करने वाले को बहुत अधिक धनहानि देता है।

बुध भाव फल –

लग्ने कीर्णिसुखार्थलब्धिविजयान् प्राप्नोति वित्तं धने
सोत्कण्ठं स विरागमेति सहजे कामान् लभेताखिलान्।
पाताले शयनान्नपानविभवान् पुत्रागमं पंचमे।
षष्ठे यात्यरिबन्धुतां शशिसुते क्लेशश्च यातुर्भवेत्।।
जायास्थे प्रवरांगनाम्बर धनप्राप्तिर्बुधे कल्प्यते।
केचित्क्लेशमुशन्ति नैधनगते शंसन्ति केचित्शुभम्।।
धर्मे धर्मविवृद्धिरम्बरगते सिद्धिर्भवेदीप्सिता।।
विद्यार्थाप्तिरयत्नोऽथ परतो रिप्फश्च वाच्यो व्ययः।

यात्रालग्न में बुध की स्थिति सुख तथ धन का संचय कराती है तथा विजय देती है। द्वितीय भाव का बुध धनदायक होता है, कभी धनप्राप्ति चाहने पर होती है कभी बिना चाहे भी हो जाती है। तृतीयस्थ बुध से सभी मनोकामनायें पूरी होती हैं। चतुर्थ भाव के बुध से शयनसुख, भोजन, पेय पदार्थ तथा वैभव की प्राप्ति होती है। पंचम भाव का बुध पुत्रदाता होता है अर्थात् पुत्र से प्रसन्नता मिलती है। छठें भाव में बुध शत्रु से सन्धि कराता है तथा क्लेशकारक भी होता है। यात्रालग्न से सातवें भाव का बुध श्रेष्ठ स्त्रियों की प्राप्ति, वस्त्राभूषण तथा धन की प्राप्ति कराता है। अष्टम भावगत बुध की कुछ विद्वान प्रशंसा करते हैं तथा कुछ उसे अशुभ बताते है। नवम भाव का बुध धर्म की वृद्धि करता है। दशम भाव का बुध धर्म की वृद्धि करता है। दशम भाव का बुध मनोवांछित सफलता देता है। एकादश भाव का बुध बिना प्रयास के धन तथा विद्या की प्राप्ति कराता है। द्वादश भाव का बुध के समय यात्रा करने से धन का अतिव्यय होता है।

गुरु भाव फल –

कीर्णिलग्ने चार्थ लब्धिर्द्वितीये दुश्चित् कास्थेक्षु श्रमाप्तिः सुखाढये।
पातालस्थे धर्मताश्चाभिमानः कार्यं सिध्यत्यात्मजस्थेऽप्यसाध्यम्।
षष्ठे जीवे शत्रुरायाति वश्यं केचित्प्राहुः वश्यतां याति शत्रोः।

विन्दत्यस्तेऽरिः स्वयोषायशंसि मृत्यौ प्राणान् हन्त्यथान्ये जगुर्नः।।
पुत्रोत्पत्तिः धर्मवृद्धिश्च धर्मे जीवे कर्मण्यर्थसिद्धिर्यशश्च।
लाभे जीवे वांछितं याति सिद्धिं रिप्फं प्राप्ते क्लिश्यतेऽनेकदुःखैः।।

यदि यात्रालग्न युद्धयात्रा का लग्न में गुरु हो तो कीर्णि होती है। कीर्णि का अर्थ प्रसार या फैलाव होना है। अस्तु लग्न के गुरु के यात्रा करने वाले की ख्याति चारो ओर फैलती है। द्वितीयस्थ गुरु से धनप्राप्ति होती है। तृतीय भाव का गुरु यात्रा में थकान उत्पन्न करता है, जिससे उब तथा उकलाहट होती है। चतुर्थ भाव के गुरु में धार्मिक कार्यो में रूचि तथा अभिमान होता है। पंचम भाव के गुरु से कठिन कार्य मे असाधारण सफलता प्राप्त होती है। यदि युद्धयात्रा के लग्न से छठे स्थान में गुरु हो तो शत्रु वश में होता है। अन्य विद्वानों के अनुसार स्वयं यात्री शत्रु के फन्दे में फँस जाता है। यदि गुरु सप्तम भाव में हो तो प्रसिद्धि होती है, धन की तथा यश की प्राप्ति होती है। अष्टमस्थ गुरु के कारण पुत्रसुख मिलता है तथा धर्मकार्य सम्पन्न होते है। नवम भाव का गुरु से मनोवांछित सफलता मिलती है, धन तथा यश की प्राप्ति होती है। ग्यारहवाँ गुरु साफल्य देता है। बारहवाँ गुरु अनेक प्रकार के दुःख एवं क्लेश देता है।

शुक्र भाव फल –

वेश्यार्थाम्बरमाल्यभोजनसुखप्राप्तिर्विलग्ने भृगौ।
लाभोऽर्थे सहजेन सीदति गतः प्राप्नोति चेष्टां श्रुतिम्।
पाताले सुहृदागमः सुतगृहे स्थानार्थमानाप्तयः।
षष्ठे शत्रुपराभवा रतिशुचस्त्वन्येऽन्यथाजगुः।।
दत्वा स्त्रीधनमस्तगस्वविषयव्युच्छित्तिदो भार्गवः।
कार्यं साधयतेऽष्टमेऽथ नवमे क्षिप्रं करोतीप्सितम्।।
स्वार्थं कर्मगतः प्रभूतधनदो लाभे जयार्थप्रदः।
शश्वद्द्वादशगः श्रमं प्रकुरूते शस्तोऽरैर्द्वादशे।।

यात्रालग्न में शुक्र वस्त्राभूषण, गन्ध-माल्य, भोजन, सुख तथा वेश्यादि की प्राप्ति कराता है। द्वितीय भाव का शुक्र धन का लाभ कराता है। यदि यात्रालग्न से तृतीय भाव में शुक्र स्थित हो तो शरीर में स्फूर्ति रहती है, शोक थकान नहीं आती है। खोई हुई वस्तु या तो प्राप्त हो जाती है या उसके सम्बन्ध में कोई सूचना मिल जाती है। यदि शुक्र चतुर्थ भाव में हो तो मित्रों एवं बान्धवों से सम्बन्ध सुदृढ़ होते हैं। पंचम भाव के शुक्र से यात्रा में स्थान, पद एवं धन का लाभ होता है तथा सम्मान प्राप्त होता है। यदि यात्रालग्न

से छठें भाव में शुक्र हो तो शत्रुओं से कष्ट होता है, दु:ख मिलता है परन्तु अन्य मत से शत्रु नष्ट होते हैं तथा सुख की प्राप्ति होती है। सप्तम भाव का शुक्र प्रारम्भ में स्त्री, धन, वस्राभूषणों की प्राप्ति कराता है परन्तु अन्त में इनसे वियोग भी होता है। अष्टम भाव का शुक्र सफलतादायक होता है। नवम भाव का शुक्र हो तो शीघ्र ही मनोवांछित कार्य सम्पन्न होता है। यात्रालग्न से दशम भाव का शुक्र प्रभूत मात्रा में धन आदि का लाभ तथा कार्य में सफलता करता है। ग्यारहवाँ शुक्र स्थायी विजय देता है। बारहवें भाव में स्थित शुक्र कुछ विद्वानों के अनुसार अधिक परिश्रम कराता है, परन्तु अन्यों के अनुसार द्वादश शुक्र शुभ होता है।

शनि भाव फल –

बन्धुवधश्चार्कसुते विलग्ने धनेऽर्थहानिं लभते।
शुचंच शत्रोर्बलं हन्ति गतस्मृति चेच्चतुर्थगे तु।।
नार्थप्रसिद्धि: सुतभेऽर्कपुत्रे रिपुं रिपुस्थे स जयत्ययत्नात्।
उत्साहभंगोऽक्षिरुजश्च कामे विषाग्निशस्रादिवधोऽष्टमस्थे।।
धर्मे न धर्मं लभते सुखं वा न निवृत्ति: कर्मफलंच खस्थे।
एकादशस्थे जयवित्तलाभौ मन्देऽन्त्यगेनार्थमुपैति यात:।।

यदि यात्रालग्न में शनि बैठा हो तो बन्धुहानि का सूचक होता है, किसी प्रिय व्यक्ति का वियोग होता है। द्वितीय भाव का शनि धनहानि कराता है। तृतीय भाव का शनि शत्रुपक्ष के बल को नष्ट करता है। यात्रालग्न से चौथे भाव का शनि व्यक्ति को गुमनाम कर देता है, उसकी सुधि कोई नहीं लेता। यदि यात्रालग्न से पंचम भाव में शनि हो तो प्रत्येक कार्य को असफल करता है। छठा शनि बिना प्रयास के शत्रुओं पर विजय दिलाने वाला होता है। सप्तम भाव का शनि उत्साह भंग करता है तथा नेत्रों में पीड़ा करता है। विष, अग्नि, अस्र-शस्र आदि से घाव तथा मृत्यु होती है- यदि यात्रालग्न से शनि आठवें स्थान में होता है। नवम भाव के शनि से धर्म तथा सुख दोनों की प्राप्ति होती है। यदि यात्रालग्न से दशम भाव में शनि हो तो किये हुए परिश्रम का फल नहीं मिलता जिससे यात्रा से वापसी भी संभव नहीं होती। ग्यारहवें भाव का शनि शत्रु पर विजय तथा धनलाभ प्रदान करता है। यदि द्वादश भाव में शनि हो तो यात्रा करने वाले का काम नहीं बनता है।

यात्राकुण्डली में ग्रहों का प्रकीर्णफल –

प्रायो जगु: सहजशत्रुदृशाय संस्था:।

पापा: शुभं सवितृजं परिहृत्य खस्थम्।।
सर्वत्रगा: शुभफलं जनयन्ति सौम्या
हित्वाऽस्तसंस्थममरारिगुरुं जिगीषो
सौम्योऽपि जन्मनि न यश्शुभवृष्टिदाता
स्थानं न तस्य शुभदं व्रजतो विलग्ने।
पापो विश: शुभफलं प्रकरोति पुंस:।।
स्थानं विलग्नगतिमिष्टमुशन्ति तस्य।

यदि पापग्रह तीसरे, छठे, दसवें तथा ग्यारहवें भाव में स्थित हों जिनमें शनि दशम को छोड़कर अन्यत्र ३,६,११ में हो तो शुभ फल प्राप्त होता है। दशम भाव में शनि शुभ फल नहीं देता है। शुभ ग्रह दशम भाव में शुभ फल प्रदान करता है परन्तु शुक्र सप्तम भाव में शुभ फल नहीं देता है। जिसकी जन्मकुण्डली में जो शुभ ग्रह शुभप्रद स्थिति में न हो वह शुभ ग्रह यदि यात्रालग्न में स्थित हो तो वह यात्रा में शुभ फल नहीं देता है। इसी प्रकार किसी जन्मकुण्डली में पापग्रह शुभफलदायी हो परन्तु वह यात्राकुण्डली के लग्न में बैठा हो तो वह भी शुभ फल देता है।

दशागोचरादि फल –

दशाधिपस्य य: शत्रुर्न जन्मनि बलान्वित:।
न गोचरे स शुभद: स हि सौम्योऽप्यनिष्टद:।।
य: साम्प्रतं शुभफलो यश्च जन्मनि वीर्यवान्।
दशापतेरतिसुहृत् पापोऽपीष्टप्रदो हि स:।।
निजरिपुजन्माधिपतीन्नीचस्थतरणिलुप्तकिरणो वा
लग्ने वा षष्ठे वा तिष्ठति यदि शोभना यात्रा।।

यात्रा समय जिस ग्रह की विंशोत्तरी दशा चल रही हो वह ग्रह यदि जन्मकुण्डली में दुर्बल हो तथा वर्तमान गोचर में भी वह ग्रह अशुभ हो, यदि वह ग्रह यात्रा लग्न में स्थित हो तो अनिष्ट फल देनेवाला होता है। परन्तु जो ग्रह यात्राकालीन गोचर में बली हो, जन्मकुण्डली में भी बलवान हो तथा वर्तमान विंशोत्तरी दशा के भुक्तिपति का अतिमित्र हो तो भले ही वह पाप ग्रह क्यों न हो वह यात्रालग्न में बैठकर शुभ फल ही प्रदान करेगा। यदि यात्रा करने वाले राजा या सेनाध्यक्ष आदि के शत्रु की जन्मराशि का स्वामी युद्धयात्रा के समय अस्तंगत, नीच होकर यात्रालग्न में या उसके छठें भाव में बैठा हो तो

यात्रा शुभफलदायक होती है। यथा - यात्रा करने वाले युद्धयात्री के शत्रु व्यक्ति की जन्मकालीन चन्द्रराशि तुला है, उसका स्वामी शुक्र यदि सूर्य के साथ ७ अंश से कम अन्तर पर हो या कन्याराशि में नीच का हो या अधिशत्रु की राशि में होकर यात्रालग्न में हो तो शुभ फल करेगा।

मुहूर्त्तचिन्तामणि में प्रतिपादित ग्रहों के भावफल विचार –

केन्द्रे कोणे सौम्यखेटा: शुभा: स्युर्याने पापास्त्रयायषट्खेषु चन्द्र:।
नेष्टो लग्नान्त्यारिरन्ध्रे शनि:खेऽस्ते शुक्रो लग्नेत नगान्तयारिरन्ध्रे।।

अर्थात् यात्राकालिक लग्न से केन्द्र और त्रिकोण १,४,७,१०,५,९ भावों में सभी शुभ ग्रह यात्रा में शुभफलदायक होते हैं। सभी पापग्रह ३,११,६,१० उपचय भावों में शुभफलदायक होते हैं। चन्द्रमा लग्न, द्वादश, षष्ठ और अष्टम भावों में अशुभ फलदायक, तथा शनि दशम भाव में, तथा शुक्र सप्तम भाव में अशुभ फलदायक होता है। लग्न का स्वामी ग्रह ७,१२,६,८ भावों में अशुभ फलदायक होता है।

बोध प्रश्न -

1. कुण्डली में भावों की संख्या कितनी होती है।
   क. १२ ख.१४ ग.१६ घ.१८
2. जन्मकुण्डली में यात्रा का विचार किस भाव से करते है।
   क. ५ ख. ६ ग. ७ घ. ८
3. यदि यात्रालग्न के प्रथम भाव में लग्न में ही सूर्य स्थित हो क्या उत्पन्न करता है।
   क. रोग ख. शोक ग. बाधा घ. सभी
4. यात्रा लग्न से ११ वें भाव में स्थित सूर्य क्या फल देता है।
   क. रत्न लाभ ख. आयु वृद्धि ग. अशुभ घ. पुत्र लाभ
5. यात्रा कालिक कुण्डली के द्वितीय भाव में चन्द्रमा क्या फल देता है।
   क. स्त्री ख. वस्त्र ग. अन्न घ. सभी
6. यात्राकालिक दशम भाव का शनि क्या फल देता है।
   क. शुभ ख. अशुभ ग. धन लाभ घ. लाभ

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि भावानां फलं भावफलम्। तनु भाव अर्थात् शरीर भाव से लेकर व्यय पर्यन्त १२ भाव होते हैं। यदि यात्रालग्न के प्रथम भाव में लग्न में ही सूर्य स्थित हो तो रोग, शोक, सन्ताप तथा बाधा उत्पन्न करता है। यदि यात्रालग्न से द्वितीय भाव में सूर्य हो तो कलह, मानहानि, बलहानि तथा धनहानि होती है। यदि तृतीयस्थ सूर्य हो तो स्वर्ण, अन्न, मूँगा, मणि तथा भूमि को देने वाला होता है। चतुर्थ का सूर्य वैराग्य देता है तथा बन्धुजनों से कलह कराता है, मन में बेचैनी बनी रहती है। पंचमस्थ सूर्य सन्तान को कष्ट तथा यात्रा से धनलाभ होता है। षष्ठस्थ सूर्य से शत्रुनाश तथा मनोकामना सिद्ध होती है। सप्तमस्थ सूर्य से धन की हानि तथा स्त्री से कलह होता है। अष्टमस्थ सूर्य बीमारी तथा मृत्यु देता है। नवमस्थ सूर्य धर्म की हानि तथा धन लाभ कराता है। दशम भाव में यात्रालग्न का सूर्य अज्ञात कर्म एवं श्रम का फल प्रदान करता है। यात्रा लग्न से ११ वें भाव में स्थित सूर्य रत्नलाभ तथा भृगुलाभ कराता है। द्वादशवें भाव का सूर्य धनहानि कराता है। यदि यात्रालग्न में चन्द्रमा हो तो कलह तथा दु:खकारक होता है। द्वितीय भाव में स्त्री, वस्र, अन्न तथा रत्न का लाभ देता है। तृतीय भाव में स्त्री रत्न तथा धन देता है। चतुर्थ भाव में मित्रलाभ, वधुलाभ कराता है, परन्तु कृष्ण पक्ष का होने पर इन सब का हानि करता है। पंचम भाव चन्द्रमा पुत्र तथा धन देता है परन्तु कृष्णपक्ष का सन्तति की हानि करता है। छठें भाव का चन्द्रमा मित्रों को भी शत्रु बना देता है तथा सुख का अभाव करता है। सप्तम भावस्थ चन्द्र भूमि एवं स्त्री का लाभ देता है परन्तु दुर्बल होने पर अर्थहानि करता है। आठवाँ चन्द्र यात्रा करने वाले को मृत्युतुल्य कष्ट तथा दु:ख पहुँचाता है। नवमस्थ चन्द्र यदि यात्राकुण्डली में हो तो यात्री शीघ्र वापसी नहीं होता है। परन्तु उस का उद्देश्य सफल होता है। दशम का चन्द्र दुर्बल होने पर धनहानि होती है। यदि बलवान हो तो धर्म बढ़ाता है। ग्यारहवाँ चन्द्रमा ऐश्वर्य, सौख्य तथा धन का लाभ देता है।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

भाव – जन्मकुण्डली में १२ भाव होते है।

देहस्थ - लग्न भाव में स्थित

रिपु – शत्रु

नवमस्थ – भाग्य स्थान में स्थित

यथाशीघ्र – जितनी जल्दी हो सके।

मृत्युतुल्य – मृत्यु के समान

भावस्थ - भाव में स्थित

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ग
3. घ
4. क
5. घ
6. ख

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि – यात्राप्रकरण
2. प्रश्नमार्ग – यात्राध्याय
3. नारदसंहिता – यात्राप्रकरण
4. वृहद्वकहड़ाचक्र – अवधबिहारी त्रिपाठी।

5.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. वशिष्ठ संहिता
2. भृगु संहिता
3. पूर्वकालामृत
4. योगयात्रा

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. यात्राकाल में सूर्य एवं चन्द्रमा का भावफल लिखिये।
2. मंगल ग्रह का भाव फल लिखिये।
3. भावफल से क्या तात्पर्य है। स्पष्ट कीजिये।
4. गुरु, शुक्र एवं शनि ग्रहों का भावफल लिखिये।
5. गोचर फल लिखिये।
6. मुहूर्त्तचिन्तामणि के अनुसार भावफल लिखिये।